तरुतले

(भाग-3)

(मानव सेवा संघ के प्रवर्तक स्वामी श्री शरणानंद जी महाराज से संबंधित सामग्री का संकलन)

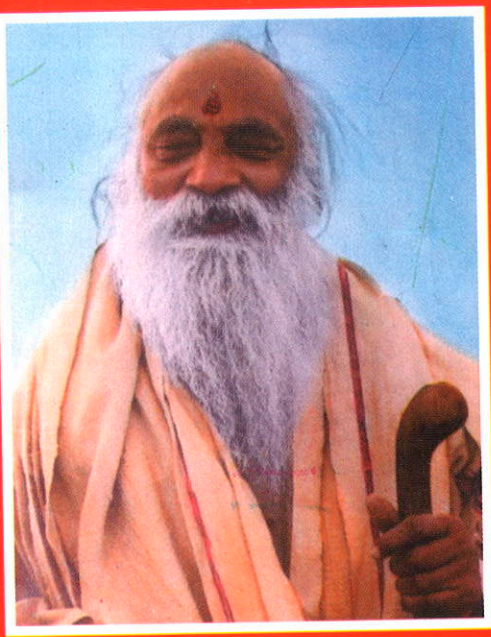

शरणानंद जी कहते थे कि एक नये लोक का निर्माण हो रहा है, क्योंकि अहं का इतना अभाव पहले किसी दार्शनिक का नहीं हुआ

–स्वामी रामसुखदास

प्राकृत भारती पुष्प - 300

तरुतले

(भाग 3)

(मानव सेवा संघ के प्रवर्तक स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज
से संबंधित सामग्री विविध रूपों में संकलित)

संकलन

शांतिस्वरूप गुप्ता

संपादक

कन्हैयालाल लोढ़ा

रामबल्लभ अग्रवाल

प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर

करनाल मानव सेवा संघ, करनाल

प्रकाशक:

दवेन्द्रराज मेहता
संस्थापक एवं मुख्य संरक्षक,
प्राकृत भारती अकादमी
13-ए, गुरु नानक पथ, मेन मालवीय नगर,
जयपुर-302017
दूरभाष : 0141- 2524827

करनाल मानव सेवा संघ,
सेवाधाम, कर्णपार्क,
करनाल - 132001
दूरभाष : 0184- 2254415

प्रथम संस्करण : 2011

मूल्य : 60/- रुपये

© प्रकाशकाधीन

ISBN No. 978-93-81571-04-0

लेजर टाइप सेटिंग
प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर

मुद्रक:
एस. एच. फाईन आर्ट प्रैस
सी-325, घोसियान मोहल्ला, करनाल
दूरभाष : 0184-2254069, 94167-97767

तरुतले (भाग 3) / शांतिस्वरूप गुप्ता/2011

प्रकाशकीय

मुझे यह जानकारी दी गई है कि प्राकृत भारती अकादमी द्वारा प्रकाशित **'तरुतले'** के पहले व दूसरे भाग को जनता ने बहुत पसंद किया तथा इसकी मांग अनवरत बढ़ती जा रही है। इसीलिए इन दोनों भागों के अनेक संस्करण प्रकाशित करने पड़े हैं।

दूसरी ओर, मुझे इस बात का हर्ष है कि स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज द्वारा प्रस्तुत किया गया दर्शन व साहित्य मुमुक्षुजनों के मार्गदर्शन व उनकी ज्ञान-पिपासा को शांत करने व जीवन में समाधान प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम बनता जा रहा है। आपके जीवन संबंधी संस्मरण व मार्गदर्शन अंतःकरण को ठेठ तक छूजाने वाले हैं, जीवंत हैं, हृदयतल में गहरे पैठ जाते हैं। इसीलिए इन संस्मरणों को सुधीजनों की सेवा में प्रस्तुत करने का हमारा दायित्व बनता है।

महावीर उद्यान पथ, बजाजनगर, जयपुर में प्रकांड विद्वान श्री कन्हैयालाल लोढ़ा के सान्निध्य में सघन वृक्षों की छांह में प्रकट होने वाले नित नव संस्मरणों व स्वामीजी के जीवन संबंधी दर्शन व साहित्य संकलन का भार श्री शांतिस्वरूप गुप्ता ने उठा रखा है। पर्याप्त सामग्री एकत्रित हो जाने पर उसको **'तरुतले'** के इस तीसरे भाग में प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है सुधीजन इसका लाभ उठायेंगे।

प्रकाशन कार्य में करनाल मानव सेवा संघ के सहयोग के लिए आभारी हूँ।

देवेन्द्रराज मेहता
(संस्थापक एवं मुख्य संरक्षक)
प्राकृत भारती अकादमी
जयपुर

भूमिका

सुप्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक श्री लक्ष्मणदास माहेश्वरी का एक दिन फोन आया —

''शांतिस्वरूपजी ! मैं आभारी हूँ आपका कि आपने मुझे **'तरुतले'** के दो भाग पढ़ने के लिए दिए। पिछले 15 दिनों में मैंने इन्हें 2 बार पढ़ा है। 4 वर्षों से जिस दुःख व अभाव से मैं पीड़ित था उससे लगभग पूरी तरह से मुक्त हो गया हूँ। वर्तमान में दुःख रहित जीवन जीने की बात मेरी समझ में आ गई है। मिलूंगा तब और बात करेंगे।''

यह सुनकर मन में मुझे अत्यंत प्रसन्नता व समाधान की अनुभूति हुई। 4 वर्ष पूर्व भाभीजी के निधन के पश्चात् 70 वर्षीय माहेश्वरी साहब खोये-खोये से रहते थे—बातों-बातों में कभी-कभी अपनी अकेलेपन की पीड़ा सुनाते भी थे। **'तरुतले'** ने आपके चित्त को विश्राम प्रदान किया—यह परम संतोष का विषय है। इस पुस्तक के विषय में इसी प्रकार की सकारात्मक टिप्पणियां मुझे और भी सुधीजनों से सुनने को मिलीं।

तो मैंने माना कि **'तरुतले'** प्रकाशन का कार्य चलता रहना चाहिए। मैंने संस्मरण एकत्र करने का काम जारी रखा। कुछ पाठकों का आग्रह था कि संस्मरणों के साथ शरणानंदजी व मानव सेवा संघ के दर्शन व साहित्य के विषय में और भी जानकारी मिलेगी तो समाधान होगा। मैंने इस तीसरे भाग में सामग्री को 7 भागों में वर्गीकृत किया है। आशा है मुमुक्षुजनों को लाभ होगा।

मेरे संकलन का संपादन व उसे सुव्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने का कार्य श्री कन्हैयालाल जी लोढ़ा व श्री रामबल्लभ जी अग्रवाल ने करने की कृपा की। इसके लिए उनके प्रति हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

– शांतिस्वरूप गुप्ता

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	शीर्षक		पृष्ठ सं.
I.	**जीवन-झाँकी एवं सम्मतियाँ**		13
1.	प्रज्ञाचक्षु, वीतराग, क्रांतिकारी संत के जीवन की एक झांकी	प्रोफेसर देवकी जी	15
2.	स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज कुछ बोध प्रसंग	स्वामी श्री अखंडानंदजी महाराज	21
3.	तो पूरा काया पलट ही होजाता	जयप्रकाश नारायण	30
4.	एक संत अलबेला :स्वामी शरणानंद	प्रो. केसरी कुमार	33
5.	एक महापुरुष की सन्निधि में	अद्वैत चैतन्य	44
6.	स्वामीजी से मैंने क्या पाया?	रघुकुल तिलक	49
7.	महामानव की सन्निधि	गिरिवरचरण अग्रवाल	54
8.	मेरे परम पूज्य स्वामीजी	स्वामी प्रेममूर्ति	59
9.	मानवता के शिल्पकार	जगदीशप्रसाद अग्रवाल	62
10.	महामानव का महाप्रयाण	बाबा श्रीपाद महाराज	67
11.	प्रज्ञाचक्षु की निर्मल प्रज्ञा	उषा	72
12.	करुणा तथा वत्सलता के सिंधु	डॉ. राजेन्द्र पंजियार	80
13.	स्वामीजी महाराज का जीवन — प्रेम की अजस्र धारा	श्रीमती विभा सिंह	82
14.	तो शायद साधना का छोर ही नहीं मिलता	दद्दा भगवतसिंह भदौरिया	88
15.	शरणानंद सुर-तरु की छाया	रामाधार भाई	90
16.	मानवता के मसीहा	शादीलाल वर्मा	93

17. मानव सेवा संघ दर्शन के प्रणेता—विलक्षण संत स्वामी श्री शरणानंद जी महाराज — डॉ. बालकृष्ण कौशिक — 95
18. रे मन नेहचो रक्ख — स्व. ठाकुर केसरी सिंह बारहट — 97

II. **संस्मरण** — 101

1. यह पक्का संत है — दुर्गाप्रसाद राजगढ़िया — 103
2. पहली और अंतिम बातचीत — डॉ. भीकमचंद प्रजापति — 106
3. गंगाजल से अभिषेक — श्री वीतरागजी — 110
4. सिखाने का कैसा अनोखा ढंग! — श्री अवधकिशोर मिश्र — 112
5. दुनियां से बेगरज रहना — मनीष मेहरोत्रा — 115
6. गज़ब है इन संत की अहंशून्यता — कन्हैयालाल लोढ़ा — 118
7. की हुई भूल का परिणाम तो भोगना ही पड़ता है — कन्हैयालाल लोढ़ा — 119
8. यादों के झरोखे से — बंसीधर बिहानी — 120
9. (i) उपदेष्टा मत बनना, प्रवचन मत देना, — डॉ. भीकमचंद प्रजापति — 124
   (ii) लिखो! आवाज आने लग गई — 124
   (iii) इससे बड़ा अन्याय मैं अपने प्रभु के साथ क्या करूंगा कि — 125
10. व्याकुलता एवं प्रिय मिलन — जगदीशप्रसाद अग्रवाल — 127

III. **मानव सेवा संघ का दर्शन और साहित्य** — 131

1. मानव सेवा संघ के प्रवर्तक स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के निर्देश (संत साहित्य के प्रचार-प्रसार एवं संघ की नीति के संबंध में) — 133

2.	जीवन का संदेश (कविता)	स्वामी श्री रामशरणजी महाराज	134
3.	मानव सेवा संघ की विश्व को अद्वितीय देन	कन्हैयालाल लोढ़ा	136
4.	मानव सेवा संघ का दर्शन व साहित्य—कथ्य के सहारे अकथ	कु.गंगा डागा	139
5.	वीतराग संत स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज का दर्शन और साहित्य सबके काम का, आम आदमी के काम का	कन्हैयालाल लोढ़ा	149
6.	स्वामी शरणानंद एवं मानव सेवा संघ का कालजयी, अकाट्य व अपौरुषेय साहित्य	प्रो. केसरीकुमार	151
7.	मानव सेवा संघ का दर्शन दीन बंधु अपने हैं (कविता)	स्वामी श्री रामशरणजी महाराज	155
IV.	**सत्संग निधि व प्रश्नोत्तरी**		157
1.	प्रेमी आशिक के लक्षण		159
2.	रांची में सत्संग	दुर्गाप्रसाद राजगढ़िया	160
3.	ऊपर जैसा दीखता है भीतर वैसा ही है क्या?	शरणानंद दर्शन	163
4.	(i) आत्मरति अथवा प्रभु प्रेम (ii) मूल भूल (iii) परम मंगलकारी आश्वासन	शादीलाल वर्मा	165
5.	प्रश्नोत्तरी		168
6.	संत सौरभ : प्रश्नोत्तरी	शिवस्वरूप माथुर	176
7.	संत सौरभ : प्रश्नोत्तरी	शादीलाल वर्मा	178

8. अपनी मान्यता के लिए सभी स्वतंत्र — संतवाणी — 181

V. संत-जीवन-फुहार व प्रेरक प्रसंग — 185

1. स्वामीजी महाराज की विनोद प्रियता — 187
2. नाराजगी से नाराजगी — बंसीधर बिहानी — 188
3. और मामला शांति व स्नेहपूर्वक सुलझ गया — दामोदर भगेरिया — 199
4. विविध प्रेरक प्रसंग
   - (i) शरीर धारण किए हुए भी मुक्त — 192
   - (ii) दाढ़ीवाले बाबा चने खिलाता रहा — 192
   - (iii) दाता को ही भिक्षा में ले लो — 193
   - (iv) अचूक उपाय — 193
   - (v) उनसे जो पाया — 193
   - (vi) अमोघ आशीर्वाद — 194
   - (vii) रक्षक ही भक्षक बन गए हैं — 194
   - (viii) न जाने किस जन्म का वैर उगाहता है? — 195
   - (ix) उनका अतिथि सत्कार — 196
   - (x) मेरी खुश किस्मती है कि — 196
   - (xi) महाराजजी! आपके साथ धोखा हो रहा है — 198
   - (xii) ऊँचाई नहीं बता सकता मेरी नीचाई जान लो — 201
   - (xiii) देखा! बताने वाला आ गया न!! — 204
   - (xiv) पर दुःख कातरता — 206

VI. सुन्दर मानव सुन्दर समाज एवं नए लोक का निर्माण — 209

1. ब्रह्मलीन दिव्य ज्योति देवकी माताजी — 211

2. स्वामी श्री रामशरणजी महाराज मानव सेवा संघ दर्शन के एक सच्चे व प्रामाणिक पुजारी 217

3. स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज एवं श्री बाला सतीमाता (रूपकंवरजी) 226

4. कृष्णप्रिया मुक्तेश्वरी ब्रह्मलीन की कहानी उन्हीं की लेखनी से 231

5. एक नये लोक का निर्माण हो रहा है हरियाणा : नव वृन्दावनधाम की ओर अग्रसर 236

6. मानव सेवा संघ का दर्शन साकार हुआ अण्णा हजारे जी की साधना ने सारी समष्टि को ऊर्जा प्रदान की 243

VII. **विविध** 255

1. मुझे लगा यह अतिशय नीका — स्वामी श्री रामशरणजी महाराज — 257

2. यही मेरा संदेश है — शिवाजी साही — 258

3. संत उद्‌बोधन—उदारता एवं करुणा — संतवाणी — 260

4. संत पत्रावली — 266

5. अमन — स्वामी श्री रामशरणजी महाराज — 269

6. गौ सेवा का अनंत महत्व — स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज — 270

◆◆

किंतु ! पूर्ण समर्पण में???

अच्छा! यह यात्रा आखिर मेरी है, या तुम्हारी?

'यावन्नद्या नदीनाथे नैकान्तिक समर्पणम्।
मामकस्तावकस्ताव दुच्छ्वासो वेति जल्पना॥'

नदीनाथ (समुद्र) में एकांतिक समर्पण होने से पहले तक ही नदी सोचती है, 'मेरी छाती का यह उच्छ्वास मेरा है या तुम्हारा?'

किंतु! पूर्ण समर्पण में???

ॐ

मानव सेवा संघ की प्रार्थना

I

मेरे नाथ!
आप अपनी,
सुधामयी,
सर्व समर्थ, पतितपावनी,
अहैतुकी कृपा से,
सुखी प्राणियों के हृदय में,
सेवा का बल, तथा
दुःखी प्राणियों के हृदय में,
त्याग का बल,
प्रदान करें। जिससे वे
सुख-दुःख के बंधन से
मुक्त हों, आपके,
पवित्र-प्रेम का,
आस्वादन कर,
कृत-कृत्य हो जायं।
ॐ आनंद

II

मेरे नाथ!
आप अपनी,
सुधामयी,
सर्व समर्थ,
पतितपावनी,
अहैतुकी कृपा से
मानवमात्र को,
विवेक का आदर, तथा,
बल का सदुपयोग
करने की सामर्थ्य
प्रदान करें। एवं
हे करुणासागर!
अपनी अपार करुणा से
शीघ्र ही
राग-द्वेषका नाश करें,
सभीका जीवन,
सेवा, त्याग, प्रेम से
परिपूर्ण हो जाय।
ॐ आनंद

मानव सेवा संघ के ग्यारह नियम

(1) आत्म-निरीक्षण अर्थात् प्राप्त विवेक के प्रकाश में अपने दोषों को देखना।

(2) की हुई भूल को पुनः न दोहराने का व्रत लेकर सरल विश्वासपूर्वक प्रार्थना करना।

(3) विचार का प्रयोग अपने पर और विश्वास का दूसरों पर अर्थात् न्याय अपने पर और प्रेम तथा क्षमा अन्य पर।

(4) जितेन्द्रियता, सेवा, भगवच्चिन्तन और सत्य की खोज द्वारा अपना निर्माण।

(5) दूसरों के कर्तव्य को अपना अधिकार, दूसरों की उदारता को अपना गुण और दूसरों की निर्बलता को अपना बल न मानना।

(6) पारिवारिक तथा जातीय सम्बन्ध न होते हुए भी पारिवारिक भावना के अनुरूप ही पारस्परिक सम्बोधन तथा सद्भाव, अर्थात् कर्म की भिन्नता होने पर भी स्नेह की एकता।

(7) निकटवर्ती जन-समाज की यथाशक्ति क्रियात्मक रूप से सेवा करना।

(8) शारीरिक हित की दृष्टि से आहार-विहार में संयम तथा दैनिक कार्यों में स्वावलम्बन।

(9) शरीर श्रमी, मन संयमी, बुद्धि विवेकवती, हृदय अनुरागी तथा अहं को अभिमान-शून्य करके अपने को सुंदर बनाना।

(10) सिद्धि से वस्तु, वस्तु से व्यक्ति, व्यक्ति से विवेक तथा विवेक से सत्य को अधिक महत्व देना।

(11) व्यर्थ-चिन्तन त्याग तथा वर्तमान के सदुपयोग द्वारा भविष्य को उज्जवल बनाना।

I

पावन स्मरण एवं स्मृतियां

सत्संग का अर्थ ही है कि –

"है" का संग

(1)

प्रज्ञाचक्षु, वीतराग, क्रांतिकारी संत के जीवन की एक झाँकी

–प्रोफेसर देवकीजी

बाल-सुलभ उमंगों पर वज्रपात

"स्वामी जी महाराज! आपकी जीवनी क्या है? मैं आपकी जीवनी लिखना चाहता हूँ।"

"मेरी जीवनी लिखोगे! लिख लो—'दु:ख का प्रभाव।'

"महाराज आपका परिचय जानना चाहता हूँ।"

"शरीर सदैव मृत्यु में रहता है और मैं सदैव अमरत्व में, यही मेरा परिचय है।"

जीवनव्यापी सत्य की अत्यन्त मार्मिक तथा सूत्रात्मक अभिव्यक्ति सुनकर प्रश्नकर्त्ता आश्चर्यचकित रह गया, परन्तु बात बिल्कुल सच्ची है। श्री महाराज जी के निकट सम्पर्क में आने वाले साधकों को यह विदित है कि असाधारण प्रतिभासम्पन्न इस बालक में उत्थान की प्रक्रिया प्रारम्भ ही हुई थी घोर विपत्ति से। हमने सुना है कि दस-ग्यारह वर्ष की अल्प आयु में ही उनकी गजब ढ़ाने वाली खूबसूरत आँखे चली गईं। किशोरावस्था के प्रारम्भ में उठने वाली बाल-सुलभ उमंगों पर वज्रपात हो गया।

अविनाशी जीवन की प्राप्ति में मानव मात्र स्वाधीन

वे एक सजग मानव थे। उनके सामने दु:ख आया तो इस प्रश्न को लेकर कि क्या ऐसा भी कोई सुख है जिसमें दु:ख सम्मिलित न हो। इस प्रश्न का यह कल्याणकारी परिणाम निकला कि उनके ज्ञानचक्षु खुल गये, जन्म-मरण का बंधन कट गया, दु:खहारी हरि से अभिन्न मित्रता हो गई।

उनके कोमल हृदय में नित-नव-रस का अनन्त स्रोत उमड़ पड़ा। दुःख-रहित, ज्ञान के प्रकाश से उज्ज्वल और ईश्वरीय प्रेम से लबालब भरा हुआ पूर्ण जीवन पाकर जिन्होंने अपने को कृतकृत्य कर लिया, वे अपने पूर्ण विकसित जीवन-पुष्प के सौरभ को अपने ही तक सीमित नहीं रख सके। घोर पराधीनता से स्वाधीनता की ओर बढ़ने में जीवन का जो रहस्य उनके अनुभव में आया उसको उन्होंने व्यक्तिगत उपलब्धि न मानकर जीवन का सत्य जानकर, जन-कल्याण की भावना से शब्दों के माध्यम से प्रकट करना आरम्भ किया। उन वीर पुरुष के जीवन में, जिन्होंने 'घर-फूंक तमाशा देखा था', साधक-समाज की दुर्दशा से बड़ी गहरी वेदना होती रहती थी। उन परम कारुणिक सन्त के मुख से अनेक बार हमने इन मर्म-भरे वाक्यों को सुना है—

'मनुष्य कुछ बातों में तो पराधीन है ही—जैसे संसार के संयोगजनित सुख-भोग में प्रत्येक व्यक्ति घोर पराधीन है। इसमें स्वाधीनता हो ही नहीं सकती। परन्तु बड़े दुःख की बात है कि अविनाशी जीवन की प्राप्ति में स्वाधीन होते हुए भी वह अपने को पराधीन मान बैठा है। साधक-समाज का यही सबसे काला क्षण है, जब वह योग, बोध और प्रेम से अभिन्न होने में अपने को पराधीन मान लेता है। साधक-समाज के इस भ्रम को मिटाने के लिए उन्होंने भगीरथ प्रयास किया। उनके अनन्त उपकारों को याद कर-करके हम साधकों का हृदय कृतज्ञता से भर उठता है।'

नेत्रहीन शरीर, धन और कुटुम्ब से हीन परिस्थिति, योग्यता-सम्पादन और अध्ययन में निरुपाय, सब प्रकार के बाहरी उपकरणों से वंचित एक ऐसा व्यक्तित्व रचा सृष्टिकर्ता ने कि मानो साधक-समाज के लिए मॉड़ल प्रस्तुत किया—इस सत्य को प्रकाशित करने के लिए कि योग, बोध और प्रेम, जो मानव की वास्तविक माँग है, उसकी पूर्ति के लिए बाह्य उपकरण अपेक्षित नहीं हैं। इस सत्य का जीता-जागता प्रतीक है श्री स्वामी जी महाराज का जीवन।

वह सब अनुपम और अनूठा

उनके सामने दु:ख आया तो उन्होंने दु:ख भोग की बेबसी को स्वीकार नहीं किया। दु:ख का उपयोग किया और दु:ख रहित जीवन पाया। दु:खहारी से उनकी अभिन्नता हो गई, सदा-सदा के लिए दु:ख का अन्त हो गया। यह सब हो गया, कैसे और क्यां ? वे ही जानें। परन्तु जो कुछ उनके जीवन में घटना-चक्र की भाँति घूम गया और परम कल्याणकारी परिणाम निकल आया, उसको एक क्रमबद्ध वैज्ञानिक, दार्शनिक एवं आस्तिक विचारप्रणाली (A Systamatic School of thought) के रूप में प्रकाशित करने की शैली भी श्री महाराज जी की बेजोड़ है। बे-पढ़े-लिखे अनेक सन्त और भक्त हो गये हैं, जिनकी वाणी में हम पाते हैं कि भावाभिव्यक्ति की उपयुक्त भाषा-शैली के अभाव में उनकी अभिव्यक्तियाँ गूढ़ से गूढ़तर और गूढ़तर से गूढतम होती चली गई हैं जो पाठक के लिए रहस्य बनकर रह गई हैं। परन्तु श्री महाराजजी की अभिव्यक्ति के सम्बन्ध में मैं क्या लिखूँ, जिन्होंने सुना और पढ़ा है वे जानते हैं।

उनके विचारों में जो मौलिकता है, भावों में जो विश्वव्यापी आत्मीयता है, युक्तियों में जो अकाट्यता है और अभिव्यक्ति में जो सौष्ठव है, वह सब अनुपम और अनूठा है, फिर भी शैली अत्यन्त सरल एवं प्राञ्जल है। वाणी ऐसी ओजस्विनी है कि वह सीधे हमारे मर्मस्थल का स्पर्श करती है और उसे आलोड़ित कर देती है। श्रोता यदि साधक और जिज्ञासु है, तो प्रभावित हुए बिना रह नहीं सकता।

योग, बोध, प्रेम की ओर उत्तरोत्तर अग्रसर

सब प्रकार के खण्डन, मण्डन और आग्रह से रहित जीवन के सत्य को समझने के लिए उद्धरण एवं प्रमाणों की चर्चा को श्री महाराज जी ने अपने सत्य में संदेह रखने की दुर्बलता का ही परिचायक माना।

इनके सिद्धांत जीवन के प्रयोगों में से निकलते हैं। इनके कर्मयोग, तत्त्वदर्शन एवं परम प्रेम की चर्चा व्यक्ति की वर्तमान दशा से प्रारम्भ होती है और त्याज्य का त्याग तथा ग्राह्य को ग्रहण कराते हुए, साधक को माँग की पूर्ति तक पहुँचा देती है। इनकी वाणी सुनते हुए श्रोताओं को ऐसा लगता था कि वे वक्तव्य के साथ-साथ योग, बोध और प्रेम की ओर उत्तरोत्तर अग्रसर होते जा रहे हैं। उत्थान के इस तात्कालिक आभास में श्री महाराज जी के जीवन का फोर्स काम करता था।

जीवन धन अपने में है

श्री महाराज जी ने अविनाशी से योग, उसका बोध और उससे प्रेम की प्राप्ति को वर्तमान की उपलब्धि बताया। उनके जीवन का यह प्रत्यक्ष सत्य है कि मांग की तीव्र जागृति एवं उसकी पूर्ति युगपद है। उन्होंने कई बार ऐसा कहा कि भाई, ऐसा हो नहीं सकता कि साधक में मांग जग जाय और उसकी पूर्ति तत्काल न हो। मांग की तीव्रता भी कैसी? खूब तेज प्यास लगी हो—ठंडा-मीठा, शीतल-जल हाथ में हो फिर भी साधक में जीवन की मांग इतनी तीव्र हो कि वह कहे कि जल पीऊंगा पीछे और सत्य से मिलूँगा पहले, क्योंकि जल पीने लग जाऊँ और उसी बीच यदि प्राण-पखेरू उड़ जाय, तो जीवन का प्रश्न शेष रह जायेगा। इस प्रकार की तीव्र जागृति में ही मांग की पूर्ति निहित है। ऐसा करके श्री महाराज जी ने देखा है।

एक बार एक अधीर साधक को समझाते हुए स्वयं अपने सम्बन्ध में कहा—शरीर अस्वस्थ था। सिर में दर्द था। ज्वर चढ़ा हुआ था। उल्टी हो रही थी। फिर भी धुन लगी थी—जीवन मिलना चाहिए पहले, कुल्ला करूँगा पीछे। मांग को इस तीव्रता में लक्ष्य से अभिन्नता हो गयी। इतनी शीघ्रता से यह विकास होता है कि मांग की तीव्रता कब अपने उच्चतम बिन्दु पर पहुँची और कब लक्ष्य से अभिन्नता हो गई—दोनों के अन्तर का पता नहीं चलता।

इस तथ्य को श्री महाराज जी ने अनुभव किया था और उसी आधार पर साधक-समाज के समक्ष इस असंदिग्ध सत्य को स्वीकार करने के लिए दृढ़तापूर्वक उद्घोष करते रहे कि तुम्हें जो चाहिए वह **तुम्हीं में विद्यमान है, अभी-अभी। तुम उसकी आवश्यकता अनुभव करो, वह तुम्हीं में प्रगट होगा। जीवन अपने में हैं। जीवनधन अपने में हैं। उनसे अभिन्नता के अखंड़ आनंद एवं नित-नव-रस की प्राप्ति में मानव मात्र सर्वदा स्वाधीन है।**

व्याख्यान नहीं, व्यथा सुना रहा हूँ

यह जीवन का सत्य है। यह सत्य श्री महाराज जी के लिए इतना प्रत्यक्ष है कि वे जब हमारे कल्याण के लिए इस सत्य का प्रतिपादन करने लगते थे तो यह सत्य स्वयं ही जैसे उनकी वाणी के द्वारा झरने लगता था, जो श्रोता में उत्थान का भास कराता था। इसके अतिरिक्त एक बात और है जिसके कारण श्री महाराज जी की वाणी इतनी प्रभावोत्पादिनी हो गयी। अपनी जीवनी बताई उन्होंने—**दुख का प्रभाव।** दुख के प्रभाव को अपनाकर उन्होंने जीवन पाया। दुःख की महिमा वे भलीभाँति जानते थे।

गत अक्टूबर महीने में दिल्ली में सत्संग-समारोह हो रहा था। श्री महाराज जी प्रवचन दे रहे थे। उनकी शारीकि अस्वस्थता का ध्यान रखते हुए मैंने निवेदन किया कि श्री महाराज जी अब विश्राम लीजिये। वे एक क्षण के लिए रुके और कहने लगे कि तुम मुझे रोको मत। जिसको दर्द होता है वह चिल्लाता है, चुप नहीं रह सकता। **मैं व्याख्यान नहीं दे रहा हूँ, अपनी व्यथा सुना रहा हूँ। मानव-जीवन पाकर भी व्यक्ति असफल रह जाय! चिरशांति, जीवन मुक्ति, भगवद्-भक्ति जिसका जन्म-सिद्ध अधिकार है वह मानव अशान्ति और पराधीनता में फंसा रहे—इस बात का श्री महाराज जी को बड़ा दुःख रहता था।** इसी वेदना से व्यथित होकर वे हम लोगों को जीवन की राह बताते थे। इसी कारण जब वे बोलते थे, तो उनकी वाणी के साथ उनके इस सर्व-हितकारी संकल्प का फोर्स लगा रहता था कि

किसी प्रकार मानव में सोई हुई मानवता जग जाय। और आप सभी जानते हैं कि इसी मिशन की पूर्ति के प्रयास में उन्होंने अपने को खपा दिया।

कहके सुनाया, उसे करके भी दिखाया

अपने सर्व दु:खों की निवृत्ति कर लेने के बाद, देहातीत जीवन का आनन्द पा लेने के बाद, परम प्रेमास्पद के पवित्र प्रेम के नित-नव-रस में डूबे रहने पर भी वे हम दु:खी जीवों को भूल नहीं सके। **शरीर सदैव मृत्यु में रहता है, मैं सदैव अमरत्व में हूँ—ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव करने वाला अमरपुरी का वासी अपने प्रेमास्पद के लाड़-प्यार से दुलराया हुआ, प्रेम-रस से भीगा हुआ होकर भी, मृत्यु-पाश में फंसे हुए हम साधकों की पीड़ा को हृदय में पाले रहा। करुणा भरे हृदय से, प्रेमास्पद के नाते आत्मीयता के भाव से, प्रेम-युक्त कर-स्पर्श से हम तापितों, पीड़ितों, मृतप्रायजनों को अमिय रस पिलाता रहा, भटके हुओं को राह दिखाता रहा।**

जिन दिनों उनका लोक-पावन शरीर हमारी दृष्टि से घोर शारीरिक पीड़ा में पड़ गया था, उन दिनों में भी उन महापुरुष ने परपीड़ा को ही प्रधानता दी, हमारे कल्याण की ही बात सोचते रहे। और बार-बार इस तथ्य को दुहराते रहे कि जो पर-पीड़ा से करुणित होता है, उसे व्यक्तिगत दु:ख नहीं भोगना पड़ता। करुणा के रस में अलौकिक शक्ति है। पर-पीड़ा से पीड़ित होने पर जीवन में अनन्त ऐश्वर्य एवं माधुर्य का प्रादुर्भाव होता है। ऐश्वर्य तो इतना कि अपने लिए किसी की आवश्यकता नहीं रह जाती और माधुर्य इतना कि सारा विश्व उसका अपना हो जाता है। और वह स्वयं अपने परम प्रेमास्पद का प्रेमपात्र बनकर उनके दिव्य चिन्मय लीला-विहार में निमग्न रहता है। श्री महाराज जी ने यह कहकर सुनाया और इसे करके दिखाया। यह उनके जीवनी की एक झाँकी है।

□□

(2)

स्वामी श्री शरणानंद जी महाराज
कुछ बोध-प्रसंग

-स्वामी श्री अखण्डानंदजी महाराज

श्री उड़ियाबाबा जी महाराज के आश्रम (वृन्दावन) में बड़े फाटक के ऊपर छत पर, सत्संग हो रहा था। बाबा चौकी पर बैठे थे, शेष सब नीचे। एक युवा सन्त जो नेत्रहीन थे, बाबा के साथ प्रश्नोत्तर कर रहे थे। इस संबंध में दोनों एक ही प्रकार का प्रतिपादन कर रहे थे कि भक्ति-भावना में वेदान्त-विचार और वेदान्त विचार में भक्ति-भावना का मिश्रण नहीं करना चाहिए। बाबा **'विचार'** एवं **'भाव'** शब्द का प्रयोग करते थे और वे नेत्रहीन संत **'विवेक'** तथा **'विश्वास'** शब्द का।

मैं उस समय तक सन्यासी नहीं हुआ था। दोनों के बीच में कुछ बोलता नहीं था। मैं मन-ही-मन श्रीमधुसूदन सरस्वती के **'श्री भक्तिरसायन'** के उस प्रसंग से तुलना कर रहा था, जिसमें द्रुत-चित्त के लिय भक्ति-रस एवं अद्रुत-चित्त के लिए वेदान्त-विचार का अधिकार बतलाया गया है। **यह वैदिक धर्म की विशेषता है कि सबके लिए एक इष्ट, एक मंत्र, एक गुरु और एक ही साधन-पद्धति नहीं होनी चाहिए। अपनी-अपनी योग्यता एवं पात्रता के अनुसार, स्वभाव, रुचि, प्रवृत्ति एवं हृदय में स्थित पूर्वसिद्ध उपासना की वासना के अनुसार भेद होना चाहिए। यह एक ऐसी विलक्षण बात है, जिसे विचक्षण लोग ही समझ सकते हैं। सबको एक ही पंक्ति में हांकना और एक-सा बनाने का प्रयास सर्वथा ही प्रकृति के विरुद्ध है।** उन दोनों महात्माओं के विचार में शास्त्रोक्त भाव की अभिव्यक्ति के लिए एक नयी भाषा, एवं विचार, विवेक एवं विश्वास का नाम दिया और यह मेरे लिए बहुत प्रभावी

सिद्ध हुआ——स्वतंत्र चिन्तन की एक दिशा रूप। वे नेत्रहीन सन्त स्वामी श्री शरणानंद जी महाराज थे। उनके साथ हमारा सम्पर्क वर्षों तक बराबर बना रहा।

दूसरी बार एक प्रश्न था कि क्या ईश्वर की मान्यता के बिना भी सदाचारी एवं जागरुक चिन्तनशील पुरुष यथार्थ रूप में परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है? उस समय मुझे यह मीमांसा बहुत अटपटी लगी, लोक-व्यवहार के लिए अनुपयुक्त तथा लोक-मानस में नास्तिकता के प्रति महत्व बुद्धि का आधान करने वाली। परन्तु, वेदांत के आभास, प्रतिबिम्ब अथवा औपाधिक ईश्वर की अनिवर्चनीयता निश्चय करने के लिए चिन्तन का एक नया, प्रशस्त पथ भी अस्पष्ट रूप से झलकने लगा। दृष्टि-सृष्टिवाद अथवा एक जीवनवाद के महत्वपूर्ण चिन्तन के लिए जैसे कोई नवीन मार्ग मिल गया हो।

इस विषय में भी बाबा एवं स्वामी शरणानंद जी का मत एक सा ही था। बाबा औपनिषद रीति से और स्वामी जी अपने स्वतंत्र चिन्तन की रीति से एक ही निष्कर्ष पर पहुँच रहे थे। आस्तिकता एवं नास्तिकता दोनों ही भाव अथवा विश्वास है। विचार एवं विवेक की कसौटी पर दोनों ही खरे नहीं उतरते। अपना आत्मा या स्वरूप ही एक ऐसा अखण्ड अबाधित सत्य है, जिसमें विचार एवं विवेक के भाव एवं विश्वास की समाप्ति हो जाती है। वह प्रमाण अथवा श्रद्धा का विषय नहीं है। प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, तथा श्रद्धालु, श्रद्धा एवं श्रद्धेय सबका आधारभूत स्वप्रकाश अधिष्ठान है। वह सत्संग भी बड़ा प्रभावी रहा।

अचाह तथा अप्रयत्न

स्वामी श्री शरणानंद जी महाराज, सेठ श्री जयदयालजी गोयन्का के सत्संग में स्वर्गाश्रम आये। उनकी भाषा विलक्षण थी। उसको ग्रहण करने के लिये पहले-पहल कई दिन तक सुनना पड़ता था। स्वामी श्री रामसुखदास जी के साथ उनका विचार-विमर्श होता था। जब

नये-नये शब्दों का प्रयोग करते तो पहले कुछ अद्भुत सा लगता, बाद में विचार करने पर प्राचीन शास्त्रों के साथ उनकी संगति लग जाया करती थी। **'अचाह'** तथा **'अप्रयत्न'** शब्दों का वे प्रयोग किया करते थे। सीधी सी बात है। **'अचाह'** माने निष्कामता। **'अप्रयत्न'** अर्थात् नैष्कर्म्य। **'अचाह'** अन्तःकरण की शुद्धि है और **'अप्रयत्न'** है स्वरूप की सहज स्थिति। व्यवहार में यदि अपनी योग्यता का सदुपयोग दूसरों की सेवा के लिए न किया जायेगा तो वह केवल अपनी सुख, सुविधा एवं भोग का साधन हो जायेगा।

श्री रामसुखदास जी ने मुझे बताया कि स्वामी श्री शरणानंदजी जी का चिंतन बहुत ही सूक्ष्म एवं गम्भीर है। प्रत्येक बात को वे स्वयं चिंतन के द्वारा अपनी भाषा में अभिव्यक्ति देते हैं। विचार करके देखने पर वह कहीं भी शास्त्र के विरुद्ध नहीं मिलती। **हां तो—सेवा से भोग, योग हो जाता है। अचाह से हृदय शुद्ध होता है और अप्रयत्न से सहज स्थिति होती है।** बात सोलहों आने यथार्थ है। यहां सेवा ही धर्म है। इस प्रकार धर्म, निष्कामता एवं सहज स्थिति की संगति बैठ गयी।

विलक्षण निस्पृहता

स्वामी जी किसी जाति-पांति, संप्रदाय, वर्ण, आश्रम आदि का नाम नहीं लेते थे। **वे मानव के लिए मानवता का प्रतिपादन करते थे।** मानव में जो आनुषंगिक विकार आ गये हैं, उनके निवारण के लिए प्रयास करना चाहिए एवं सहज मानवता का विकास तथा प्रकाश होना चाहिए। इसके लिए संकीर्ण विचारों एवं भावनाओं का परित्याग तथा उदात्त एवं उदार विचारों का उल्लास होना चाहिए। इसी अभिप्राय से उनके मार्गदर्शन में साधकों ने मानव सेवा संघ नाम की संस्था बनायी। इस संस्था को स्वामी जी का पूर्ण सहयोग प्राप्त था, परन्तु वृन्दावन के संस्था के भवन में तो वे ठहरते तक नहीं थे। श्री आनन्दमयी मां के आश्रम में ठहरा करते थे। **उनकी निःस्पृहता और त्याग विलक्षण था।**

उनका पूर्वाश्रम नाम, ग्राम या जाति का मुझे पता नहीं। वे इनकी चर्चा भी नहीं करते थे। हां, इतना अवश्य ही ज्ञात है कि वे बीसवीं शताब्दि के आरम्भ में जन्मे थे। और दस वर्ष की आयु होते-होते नेत्रहीन हो गये थे। पहले उन्हें अपनी नेत्रहीनता की ग्लानि-ग्लानि अवश्य हुई, परन्तु बाद में महात्माओं के सत्संग से वह जाती रही। उनका मन भगवान् के भजन में लगने लगा। और पढ़ाई-लिखाई न होने पर भी महात्मा के चिन्तन की दिशा में उनकी प्रज्ञा स्वतः अग्रसर होने लगी। हमने स्वयं देखा और अपने कानों से सुना था कि कोई कैसा भी प्रश्न करे, वे तत्काल उस प्रश्न का निरसन कर देते थे। उनकी सूझ-बूझ इतनी प्रखर थी कि वे प्रश्न के शब्द सुनते ही समझ जाते थे कि प्रश्नकर्त्ता किस नासमझी या भूल के कारण यह प्रश्न कर रहा है। तत्क्षण वे उस भूल पर चोट करते और प्रश्न ही कट जाया करता था। **उनकी बुद्धि तर्क-तर्कश एवं तर्क-कर्कश भी थी। किसी का तर्क-वितक उनके समक्ष टिक नहीं पाता था।** इसके साथ उनका हृदय इतना भावपूर्ण एवं कोमल था कि भगवच्चर्चा करते-करते वे भावमग्न हो जाते और नेत्रों से अश्रुधारा का प्रवाह एवं कण्ठ गद्गद् हो जाया करता था। उनकी वाणी का स्वर भी बदल जाता था।

असहाय का सहारा

एक बार मैंने उनके श्रीमुख से एक कथा सुनी थी। किसी राजपरिवार में एक माता थी। उसके सगे-सम्बन्धी मृत्यु के ग्रास हो गये। माता के पास एक मकान तथा एक बैल था। बैल का नाम था 'सर्बू'। माता उसी की सेवा करती और उसी के द्वारा जो खेती से अन्न प्राप्त होता, उससे निर्वाह करती। परन्तु उसके दूर के सम्बन्धियों को यह भी सहन नहीं होता था। वे चाहते थे कि यह मकान इससे छीन लें। किसी दिन वे लोग अपने कर्मचारियों के साथ, माता को मकान से निकालने के लिए चढ़ आये। माता का कोई सहायक नहीं था। वह अपने बैल 'सर्बू'

के पास जाकर रोने लगी कि—चलो 'सर्बू' अब तो रहने की जगह भी नहीं रही। तभी बैल की आंखें क्रोध से लाल-लाल हो गयीं और बड़े भयंकर रूप से अपने सींग आगे करके अखाड़ता और हंकाड़ता हुआ उन गुण्डों पर टूट पड़ा। जब तक वे लोग वहाँ से चले नहीं गये, वह मकान की परिक्रमा करते हुए दौड़ता रहा। किसी को सींग से, किसी को लात से, किसी को धक्के से मार-मारकर भगा दिया या घायल कर दिया। फिर तो डर के मारे कोई पास नहीं आया।

वह 'सर्बू' बैल नहीं था, उसमें सर्वेश्वर भगवान् का आवेग हो गया था। भगवान् एक असहाय, अनाथ की रक्षा कैसे करते हैं, इसका वर्णन करते-करते स्वामी जी भावमग्न हो जाते थे, अश्रुपात होने लगता था। सचमुच विश्वास में कितनी शक्ति है, इसको साधारण लोग नहीं जानते हैं। विश्वास ही मनुष्य जीवन का आधार-स्तम्भ है।

क्रोध-विरोध क्यों?

क्रोध एवं क्षोभ की व्यर्थता पर चर्चा के समय उन्होंने सुनाया था कि वे कहीं अकेले यात्रा कर रहे थे। हाथ में डण्डा था। पीछे से बैलगाड़ी आयी, धक्का लगा, वे गिर पड़े। मन में गाड़ीवान के प्रति क्रोध भी आया, क्षोभ भी हुआ कि मैं नहीं देखता हूं तो क्या हुआ, वह तो देखता है। गांव के किसी व्यक्ति ने गाड़ीवान को भला-बुरा भी कहा, डांटा-डपटा भी। परन्तु, जब स्वामी जी आगे बढ़े तो किसी पेड़ से टकरा गये और गिर पड़े। कहते थे कि उस समय मन में आया कि अब करो क्रोध। इस दुर्घटना का तो कोई विशेष कर्ता ही नहीं है। जो सबका कर्ता है, वही इसका कर्ता है। वस्तुतः जो अपने को कर्ता मानता है, वही दूसरे को कर्ता मानता है। यह सब तो प्रभु की लीला है—चाहे जो हो जाय। जो किया जाय, जो कहा जाय—सब प्रभु की ओर से ही आता है। क्रोध-विरोध का कोई कारण नहीं है।

शरणागत वत्सलता

स्वामी जी ने ही सुनाया था—वे अपने कुछ भक्तों के साथ उत्तराखण्ड की यात्रा कर रहे थे। उन दिनों यात्रा पैदल ही होती थी। मार्ग में स्वामी जी का स्वास्थ्य बिगड़ गया। दो-चार दिन तक तो भक्तगण उनकी सेवा में रहे। फिर धीरे-धीरे एक-एक करके अपनी यात्रा पूरी करने के लिए चले गये। वे बेचारे पहाड़ी मार्ग में कब तक उनका साथ देते। स्वामी जी अकेले रह गये। थोड़े दिनों में उनका स्वास्थ्य अच्छा हो गया। अपना डण्डा और कमण्डलु लेकर उन्होंने अकेले ही यात्रा की। एक नेत्रहीन व्यक्ति का एकाकी हिमालय की यात्रा करना कैसा होगा। न खड्डे में गिरे, न पहाड़ से टकराये और न तो पहाड़ में ठोकर लगी। क्या आश्चर्य है। उनके हृदय में ईश्वर के प्रति कितनी आस्था थी और ईश्वर अपने विश्वासी भक्त की कैसे रक्षा करता है एवं सहायता देता है, यह इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

इसी प्रकार की एक घटना उनके जीवन-परिचय में भी लिखी हुई है। एक बार मथुरा से आगरा जाते समय वे अकेले ही पैदल यमुना के किनारे किनारे जा रहे थे। एक स्थान पर ढ़ाह गिरी। वे पानी में जा पड़े। नदी चढ़ी हुई थी। हाथ की लाठी छूट गयी। तैरना कुछ आता था, पर बिना देखे पता नहीं चला कि किधर की ओर तैरें। शरण्य की याद आयी और उनके भरोसे इन्होंने जल में डूबते हुए शरीर को ढ़ीला छोड़ दिया। तत्काल ऐसा महसूस हुआ, जैसे किसी ने इनको जल में से निकाल कर खुश्की पर डाल दिया। उठने के लिए जब इन्होंने धरती पर हाथ टेका तो एक नयी लाठी हाथ में आ गयी। प्रभु की शरणागत वत्सलता को पाकर इनका हृदय भर आया। उनकी महिमा से अभिभूत, उनके प्यार में मस्त होकर ये उठे, और चल दिये।

अब आप स्वामी जी के कुछ उपदेशों का सार संक्षेप देखें जो मर्मस्पर्शी हैं एवं साधना-पथ के पथिक के लिए हृदयंगम करने योग्य हैं—

हमारी वर्तमान आवश्यकता

वर्तमान परिवर्तनशील जीवन में प्रथम प्रश्न यही है कि हमारी वास्तविक आवश्यकता क्या है? आवश्यकताओं को बिना जाने, बिना माने उसकी पूर्ति के लिए न तो निःसन्देहतापूर्वक साधन का निर्माण कर सकते हैं और न निर्णीत साधन का अनुसरण कर सकते हैं। अब समस्या यह है कि आवश्यकता का निर्णय कैसे हो? इसका निर्णय वर्तमान में करना होगा। उसके लिए अपनी वर्तमान दशा का अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक है—और रुचि, योग्यता और आवश्यकता का ज्ञान ही वर्तमान दशा का अध्ययन है।

व्यक्तित्व के अभिमान में आबद्ध प्राणी अप्राप्त परिस्थितियों का ही आह्वान करता रहता है और उसी को अपनी मान लेता है। यद्यपि प्रत्येक परिस्थिति सतत परिवर्तनशील है, परन्तु व्यक्तित्व का मोह हमें परिस्थितियों की दासता से मुक्त नहीं होने देता। यह दासता वियोग, हानि तथा अपमान आदि का भय उत्पन्न करती है और भय किसी को भी प्रिय नहीं है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारी वास्तविक आवश्यकता सभी परिस्थितियों से अतीत जीवन की है। इसमें प्रवेश करने के लिए योग्यता, सामर्थ्य और रुचि के अनुरूप साधन-निर्माण करना होगा।

कोई भी इच्छा आवश्यकता को मिटा नहीं पाती, क्योंकि आवश्यकता उसकी है, जिससे जातीय तथा स्वरूप की एकता है और इच्छा उसकी है, जिससे केवल मानी हुई एकता है। अतः

आवश्यकता पूर्ति के लिए अनिवार्य हो जाता है कि इच्छाओं का अन्त कर दिया जाय। इच्छाओं का त्याग याने—माने हुए संबंधों का त्याग। यदि विवेक-पूर्वक देह भाव का त्याग कर दिया जाये तो बड़ी ही सुगमतापूर्वक माना हुआ **'मैं'** और **'मेरा'** मिट जाता है, जिसके मिटते ही असंगतापूर्वक नित्य-योग स्वतः प्राप्त होता है। शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि आदि सभी से अपनी भिन्नता का अनुभव हो जाता है। वस्तु और व्यक्ति की कामनाएँ मिट जाती हैं और उनके मिटते ही वास्तविक आवश्यकता जागृत होती है, जो अपनी पूर्ति में आप समर्थ है। व्यक्तित्व का मोह गल जाने पर तो **'हम'** और **'संसार'** का भेद मिट जाता है, फिर अपने पास मन, बुद्धि आदि भी नहीं रहते हैं। **वे सब उस अनन्त से अभिन्न हो जाते हैं, जो वास्तविक आवश्यकता है।**

विवेक और प्रीति से ही वास्तविक आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है, अन्य किसी प्रकार से नहीं। विवेक और प्रीति श्रम नहीं हैं, अपितु स्वाभाविक विभूतियां हैं, जो उस अनन्त की अहैतुकी कृपा से मिली है। हम उनकी दी हुई विभूति से ही उन्हें प्राप्त कर सकते हैं। वास्तव में वे हमसे देश-काल की दूरी पर नहीं हैं, और न ही उन्होंने हमारा त्याग किया है। बल्कि हम ही उनसे विमुख हुए हैं। **परन्तु देखिए उनकी कृपा, कि विमुखता को मिटाने के लिए हमें प्रीति और विवेक प्रदान किया। विवेक से अस्वाभाविक इच्छा की निवृत्ति और प्रीति से स्वाभाविक आवश्यकता की पूर्ति स्वतः हो जाती है। अतः जीवन में असफलता के लिए कोई स्थान ही नहीं रहता है।**

कर्तव्य-जीवन : जीवन-विज्ञान

प्राकृतिक विधान के अनुसार पर-हित में ही अपना हित-निहित है। यह जीवन का अनुभूत सत्य है। जब हम दूसरों के काम आते हैं,तभी हमारा काम बनता है। इस दृष्टि से प्राप्त वस्तु, योग्यता सामर्थ्य के द्वारा सर्वदा ही दूसरों के हित में रत रहना आवश्यक है। पर इस रहस्य को वे ही जान पाते हैं, जिन्होंने निज-ज्ञान के प्रकाश में कर्तव्य-विज्ञान के रहस्य को विधिवत अनुभव किया है। **कर्तव्य परायणता से ही सुन्दर समाज का निर्माण होता है और कर्तव्य का ही उत्तरपक्ष योग है।** योग में ही बोध तथा प्रेम निहित है, जो सर्वतोमुखी विकास का मूल है। इस दृष्टि से कर्तव्यनिष्ठ होकर योगवित् होना अनिवार्य है। **योग मानव जीवन का वह मौलिक तत्व है, जिसके बिना मानव संज्ञा ही सिद्ध नहीं होती।**

आज काल्पनिक विभाजन स्वीकार कर मानव मानवता से विमुख हो गया है और हिंसक जन्तुओं से भी क्रूर हो गया है। **ऐसी भयंकर परिस्थिति में अपने में सोई हुई भावना को जगाना है, जो एकमात्र कर्तव्य-पालन अर्थात् दूसरों के अधिकारों की रक्षा से ही सम्भव है। इतना ही नहीं दूसरों के अधिकारों की रक्षा में ही अपना अधिकार सुरक्षित है। जो मानव इस सत्य को स्वीकार कर लेता है, वह बड़ी सुगमतापूर्वक सदा-सदा के लिए राग-द्वेष से रहित होकर त्याग तथा प्रेम के द्वारा सभी के लिए उपयोगी हो जाता है और यही मानव जोवन का उद्देश्य है।**

□□

('आनन्द बोध' से साभार)

(3)

तो पूरा काया-पलट ही हो जाता

-जयप्रकाश नारायण

परम पूज्य स्वामी शरणानन्दजी महाराज ने सन् 1952 ई. में गीता जयन्ती के पावन अवसर पर मानव सेवा संघ की स्थापना की थी। इस वर्ष गीता-जयन्ती के पुनीत दिवस पर मानव सेवा संघ अपने जीवन के पच्चीस वर्ष पूरे कर छब्बीसवें वर्ष में प्रवेश कर रहा है।

स्वामीजी एक सच्चे प्रभु-प्रेमी एवं मानव सेवी थे। उनसे मिलने का अवसर कई बार मुझे मिला और सदा ही उनकी सहज प्रियता और सरल हृदयग्राही, मनोग्राही विचार से प्रभावित हुआ। ता. 15-02-1973 को पटना में ही करीब एक घंटे तक उनसे बातें हुई थीं और मैंने उनसे अनुरोध भी किया था कि यदि वे बिहार को कुछ अधिक समय देते तो इस प्रान्त का बड़ा कल्याण होता।

स्वामीजी कहते थे कि मनुष्य अपने विचार में जिसको बुराई समझे उससे रहित हो जाय और निरभिमान भाव से अपनी सामर्थ्य के अनुरूप समाज की सेवा करे। मनुष्य को ऐसा समझना चाहिये कि जो कुछ भी उसे प्राप्त है वह समाज की सेवा के लिए साधन-रूप है। **अपने लिये मानव के जीवन में स्वाधीनता की माँग होनी चाहिए जो स्वाश्रयिता से ही संभव है।** स्वामीजी के इन विचारों में जीवन का सत्य ही निखर आता है और इस पथ पर चलने वाले के जीवन में अन्तर्द्वन्द्व नहीं होता। स्वाधीनता की माँग से भय का नाश होता है और आत्म बल का उदय होता है। मनुष्य को अपने सत्य पर चलते रहने की प्रेरणा और शक्ति मिलती है। स्वामी जी के विचारों में किसी मत का, किसी दर्शन का खंडन नहीं है, हाँ! असत्य का खंडन अवश्य है।

स्वामीजी परम भगवद्भक्त थे। परन्तु उनमें भगवान को मनवाने का भी आग्रह नहीं था। उनकी दृष्टि से सच्चे भौतिकवादी, अध्यात्मवादी और आस्तिकवादी में कोई विरोध हो ही नहीं सकता। सच्चा भौतिकवादी वही है जो भूतमात्र की सेवा अपने जीवन का लक्ष्य मानता है। जो भूतमात्र से प्रेम करेगा, क्या वह किसी को हीनभाव से देख सकेगा या किसी की हानि चाहेगा? इसी प्रकार, अध्यात्मवादी सभी में अपनी ही आत्मा का दर्शन करेगा और आस्तिकवादी अपने प्रिय प्रभु के नाते उसकी सृष्टि की सेवा ही अपने जीवन का एकमात्र कर्तव्य मानेगा। स्वामीजी के विचारों में क्रान्ति- जीवन का पूर्ण दर्शन और प्रक्रिया है। यदि हम जीवन के इस सत्य को अपना पाते तो पूरा काया-पलट ही हो जाता।

मैंने, युवकों के सामने, समाज के सामने सम्पूर्ण क्रांति का विचार और कार्यक्रम रखा है। वह स्वामीजी के विचारों से भिन्न नहीं है, बल्कि स्वामीजी की दृष्टि अपनाने से ही सम्पूर्ण क्रांति संभव है। जब मैं बिहार संघर्ष में जुटा हुआ था, तब स्वामीजी ने शरीर त्याग करने के एक मास पूर्व दिनांक 26-11-1974 को जनता के नाम एक संदेश दिया था जिसकी एक प्रति मुझे भी भेजी थी। उसमें उन्होंने कहा था :

''गुजरात और बिहार के बालकों की हत्या का मुझ पर ऐसा गहरा प्रभाव हुआ है कि गुजरात और बिहार की जनता-जनार्दन ईमानदार और निष्पक्ष होकर, ईमानदार सरकार का चुनाव करे, जिससे प्रजातंत्र सरकार जनता की आवाज का आदर करे और प्रजा और राष्ट्र में आत्मीयता स्थापित हो। यही मेरी सर्व-समर्थ प्रभु से प्रार्थना है। वह प्रजातंत्र सरकार नहीं हो सकती, जो प्रजा की आवाज का अनादर करे और वह प्रजा

निर्जीव है जो ऐसी सरकार का शासन स्वीकार करे। असहयोग हमारे नेता का अचूक अस्त्र है, जो सदा ही सब पर विजयी हो सकता है। इस सत्य को हम लोगों ने आँखों से देखा है।''

''कोई भी प्रजातंत्र नेता जाति का, पार्टी का, प्रान्त का नहीं होता, अपितु जनता मात्र का अपना होता है। ऐसे लोगों को वोट दिया जाय। किसी भी शक्तिशाली सरकार को अपनी बेईमानी सुरक्षित रखने के लिए अध्यादेश (Ordinance) बनाने का अधिकार न रहे। प्रत्येक पार्टी के सदस्य को अपनी पार्टी के असत्य के विरुद्ध आवाज उठानी चाहिए। सत्य मानव का स्वधर्म है, पार्टी का नहीं।''

''बेईमान होकर खाना, पीना, आराम से रहना महान पाप है, और ईमानदारीपूर्वक बड़ी से बड़ी कठिनाईयों का सामना करते हुए, भूखा-नंगा रहना, मर जाना भी महान् पुण्य है।''

आज स्वामीजी सशरीर हमारे बीच नहीं है। परन्तु उनके विचार, उनका दर्शन और उनका क्रान्तिकारी जीवन हमारे पास थाती के रूप में है, जिनसे हम सदा प्रकाश और शक्ति पा सकते हैं। स्वामीजी के महाप्रयाण के पुण्य पर्व के अवसर पर मैं अपनी श्रद्धांजलि उनकी पुण्य-स्मृति में भेंट करता हूँ, उनके विचारों में अपनी आस्था व्यक्त करता हूँ, तथा मानव सेवा संघ की रजत जयन्ती के शुभ अवसर पर मैं भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि वे हमें सत्य को देखने की दृष्टि और उस पर चलने की शक्ति प्रदान करें।

□□

(मानव सेवा संघ - रजत जयन्ती स्मारिका से साभार)

(4)
एक संत अलबेला
स्वामी शरणानंद

–प्रो. केसरी कुमार

राँची प्रवास की एक सुबह देखा कि एक व्यक्ति बंगले में खाट पर पौढ़े हैं। गेरुआ स्वल्पवस्त्र, यूनानी डील-डौल, बड़ा माथा, बिखरे केश, अधपकी दाढ़ी, सुकरात सी आकृति पर लावण्यशेष चेहरा, प्रज्ञाचक्षु, पर राजीवलोचन। मैं समझ गया कि ये, भारतीय-स्वाधीनता-आन्दोलन में कभी सुर्खियों में आने वाले स्वामी शरणानंद जी हैं जिनकी प्रतीक्षा उद्विग्नमन देवकी जी (अब संन्यासिनी, तब रांची महिला कॉलेज की प्रोफेसर) कर रही थीं और जिनके बारे में सुनसुनकर मैं सोचा करता था कि प्रेमचन्द ने 'रंगभूमि' में जिस सूरदास को परिकल्पित किया है है उसमें ये ही तो पूर्वाशित नहीं हो गए हैं?

विज्ञान का एक छात्र उलझा था। शायद भगवान् पर बात चली थी।
स्वामी जी—'जब तुम काम कर रहे होते हो तब तुम्हारा मन कहाँ रहता है?'
छात्र—'काम में।'
स्वामी जी—'और जब काम में नहीं लगे होते हो तब?'

छात्र चुप। वातावरण निःशब्द। अचानक स्वामी जी जोर से हँसे और हँसते हुए बोले—'लो, हम बता देते हैं, भगवान् में।' तत्काल छात्र में भी प्रतिक्रिया हुई—'मैं भगवान् में विश्वास नहीं करता। वह नहीं हैं?'

स्वामी जी फिर जोर से हँसे, उठ बैठे और हँसते हुए ही बोले—'हाँ, वह नहीं भी है। भला, नहीं में उसके सिवाय और कौन हो सकता है?' विज्ञान छात्र के काम नहीं आ रहा था। वह मर्माहत हो गया किन्तु तब

तक स्वामी जी उसके हाथों को अपने हाथों में लेकर झकझोरते हुए और उनपर कुछ रखते हुए कह रहे थे—

'भैया! तुम ईमानदार हो। ईमानदार बने रहो, बस काम बन जाएगा, तुम्हारा भी और समाज का भी। भगवान् से मेरा तो व्यक्तिगत नाता है। लो, बासी पूरी और आचार खालो, एक व्यापारी दे गये थे।'

तब मेरी बारी आयी। देवकी जी ने धीरे से कहा—'भइया, आकर बैठे हैं।' और, स्वामी जी बच्चों की तरह उछल पड़े—'केसरी भइया! कहाँ हो भाई, कब से बैठे हो? और मैं उनकी फैली बांहों में था। वे केश, माथा, कपाल, आंख, नाक, कान, ठुड्डी, गरदन, छाती, बाँह, सब टटोल रहे थे। पोर-पोर, जैसे कोई प्रतिमूर्ति बनानी हो और कहते जा रहे थे—'दोस्त, गांधी जी की नजर वकीलों पर थी, हमारी नजर प्रोफेसरों पर है।'

क्रांति व आन्दोलन में भेद

तभी एक वृद्ध वकील साहब आये जो रांची में गांधीजी के आतिथेय थे और जिन्हें रांची वाले प्यार से नगर-पिता कहते थे। आते ही बोले—'स्वामी जी! मन अब तक न मरा। कोई ऐसी चाबुक बताइये जिससे मार-मार कर इसे खत्म कर दें।' स्वामी जी—'गाँधीजी का मेज़बान होकर भी आप मारने की बात करते हैं। बलपूर्वक मारने की जितनी चेष्टा करेंगे, मन उतना ही प्रबल होगा। घृणा से आसक्ति बढ़ती है, वह उसका ही तो अपर पार्श्व है। मन आपका होता तो बात नहीं मानता? वह तो अपनी राह जाएगा। अरे भाई! गांधी जी का अमोघ अस्त्र है असहयोग। मन से असहयोग कीजिए। उसे अपनी राह जाने दीजिए। उसके साथ न चलिए। जुलूस में तो आप चले ही होंगे। अब मन के जुलूस को देखते रहिए। शामिल न होइए। बस मजा आ जायेगा। मुश्किल यह है कि आप चाहते हैं क्रांति और करते हैं आन्दोलन।'

इस बिन्दु पर, वकील साहब को, जो रुआँसे से हो गये थे, थोड़ा

सहारा मिला और वे आगे सरकते हुए बोले—'महाराज! आन्दोलन और क्रांति तो एक ही चीज है। आन्दोलन न करेंगे तो क्रांति होगी कैसे?' स्वामी जी—'नहीं महाराज! आन्दोलन है बलपूर्वक अपनी बात दूसरों से मनवाना और क्रांति है खुद को बदलकर दूसरों पर प्रभाव को होने देना। आप करते हैं आन्दोलन और चाहते हैं कि क्रांति हो जाए। आप चाहते हैं कि दूसरे बदल जायें और आप बदलें ही नहीं। यह नहीं होगा। आप नहीं बदलें और मन बदल जाय, यह नहीं होने वाला है?' बात राजनीति का छोर छूते-छूते फिर मन पर आ गयी। थोड़ी देर सन्नाटा रहा जिसे भंग करते हुए स्वामी जी ही बोले—'पर भाई, आप हैं पढ़े-लिखे लोग और मैं ठहरा आठवीं तक पढ़ा क्या, बेपढ़ा अंधा। बात न रुचे तो स्वीकार न कीजिए।'

यह मन है क्या?

बात निशाने पर लगी और वकील साहब ने कुछ आजीजी से पूछा—'महाराज, यह मन है क्या?' स्वामी जी—'मन भोगे हुए का और जो भोगना चाहते हैं उसका प्रभाव है। मन भुक्त-अभुक्त के प्रभाव के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। भोग के प्रभाव का नाम मन, भोग के परिणाम का नाम शोक, भोग की रुचि का नाम बुराई है। अब आप ही सोचिए कि जिसका कारण मौजूद है उसका नाश, कारण के रहते, होगा?' फिर मेरा नाम लेते हुए बोले—'केसरी भाई! तुम तो साहित्य के प्रोफेसर हो। भक्त साहित्य में पढ़ा होगा कि राधा बेमन की हो गयीं। क्यों? क्योंकि उन्होंने अपने सारे संकल्प कृष्ण को समर्पित कर दिये। और हमारा हाल है कि हम सारे संकल्प अपने लिए रखते हैं और चाहते हैं कि मन भी दखल न दे?'

यह सब कुछ मुझे इतना ताजा, इतना मौलिक लगा कि मैं लगभग आतंकित हो गया। कुछ कह न सका। बात यह थी कि तब तक संन्यासियों और आध्यात्मिक, धार्मिक संस्थानों के प्रति मेरी धारणा निर्विकल्प संदेहरहित आस्था की बन नहीं पायी थी।

स्वामी जी कुछ दिन ही रहे। मैं सतर्कतापूर्वक वार्ता या विवाद से कतराता और हाँ-ना में बातचीत करता रहा। जाते-जाते उन्होंने कहा—'केसरी भाई! तुम बहुत चुप रहते हो पर भीतर से चुप रहो तब तो बात बने?'

स्वामी जी चले गये पर उनकी बात लग गयी। भीतर कुछ झन्न-सा हुआ, जैसे दर्पण टूट गया हो। भीतर इतने प्रश्न, शंकाएँ, आकांक्षाएँ, प्रतिक्रियाएँ और बाहर सतर्क चुप्पी—यह निरर्थक अर्जित तनाव। नहीं! मैं सहज जीवन का प्रतिनिधित्व नहीं करता। ओंदी लकड़ी जैसे आग से छूकर धुँआने लगी।

कुछ दिनों बाद मुझे पेचिश की शिकायत हुई। बहुत आँव आता और फिर एक शीतलहर नाभि से उठकर छाती तक आने लगी। हाथ-पाँव जैसे ठंड़े पड़ने लगते और मुझे लगता कि मृत्यु में डूब रहा हूँ। सुप्रसिद्ध इतिहास-मर्मज्ञ डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल के भाई श्री उमेश सिंह जायसवाल हमारा होमियोपैथी इलाज कर रहे थे। लहर-प्रकोप और परिणामस्वरूप होने वाले भय के प्रसंग में उन्होंने पूछा—'हमारे एक रोगी को, किसी लट्ठधारी को आते देखकर लगता था कि वह उन्हें ही मारने आ रहा है। क्या आपको भी ऐसा लगता है?' मैंने कहा—'नहीं'। फिर पूछा—'उन्हें किसी की शवयात्रा को देखकर लगता कि लोग उनकी ही लाश ले जाने को इधर आ रहे हैं। क्या आपको भी ऐसा लगता है?' मैंने कहा—'नहीं।' लेकिन उनके जाने के बाद उनके दोनों प्रश्न मन में प्रेत-नृत्य करते रहे। पहले लगा कि मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि वैसा भय लगता है अथवा नहीं, फिर लगा कि नहीं, वैसा ही भय लगता है।

एक दिन तीर-टांगी लिए तेजी से दौड़ते हुए आदिवासी झुंड को देखकर कितना शंकित और उस दिन ताबूत देखकर कितना कातर हो गया था? इसी बीच हमारे पड़ोसी का एक पागल लड़का घर आया। वह

दिन-रात उधम मचाता। कभी हमारे हाते की दीवार पर आ जाता, तरह-तरह की मुद्राएँ बनाता, आँखें मटकाता, आवाजें कसता, कभी दोस्ताने अँदाज से बुलाता और कभी मेरे पास आने को मचलता। मैं और घबड़ा गया। मैं ही उसे अनुकूल क्यों दिखता हूं? क्या मैं भी तो पागल नहीं हो गया? मैंने राँची और पटना के नामी डाक्टरों को दिखलाया और सबने यही कहा कि शारीरिक दृष्टि से कोई बीमारी नहीं है। पर हाल यह था कि महीनों तक सोया नहीं, एक क्षण के लिए भी नहीं, आमरण-सा जागरण।

तभी एक और दिलचस्प घटना घटी। मैंने एक कहानी लिखी थी 'इलाज'। उसे पढ़कर हमारे मित्र और साहबगंज कॉलेज के प्राचार्य शिवचालक राम ने एक पत्र लिखा कि आपकी एक कहानी पढ़ी है जिसमें आपने एक साइकोथेरापिस्ट की चर्चा की है—इसकी अन्तिम घटना बड़ी भयानक है—वह घटना मेरे मन में अब भी घूम रही है। मेरा लड़का भी एक साइकोथेरापिस्ट की खोज में है। पिछले दो महीनों से यह सप्रेस्ड सेक्स से पीड़ित है....। सो मैंने अपने पुत्र को आपके पास भेजा है। आप इसकी उचित चिकित्सा करा दें....। मैं स्वयं फ्लू से पीड़ित हूँ....।

मैंने पत्र पढ़ा। उस लड़के को देखा। उसमें कोई अस्वाभाविकता नजर नहीं आयी पर अब मैं अपने भीतर दमित काम की जड़ें खोजने लगा।

कुल मिलाकर हमारी स्थिति अधन्य थी। आखिर देवकी जी ने एक युक्ति बताई—'आप सोते समय कहिए—मैं स्वस्थ हूँ : मुझे कुछ नहीं चाहिए। संत की कृपा मेरे साथ है।' और मुझे लगा कि मैं भीतर से तोड़ा जा रहा हूँ। नलिन विलोचन शर्मा ने एक कहानी सुनायी थी। उनके पिता विश्वविश्रुत विद्वान् महामहोपाध्याय पंडित रामावतार शर्मा नास्तिक थे। जीवन के शेष काल में, रुग्णावस्था में वे एक बार काशी विश्वनाथ के मन्दिर में गये थे पर मुँह से कुछ कह न सके। मेरी दशा कुछ वैसी ही थी। बिस्तर में जाने पर मैं इतना तो मन ही मन कह पाया कि मैं स्वस्थ

हूँ। यह भी कह गया कि संत की कृपा मेरे साथ है। पर यह कहते न बना कि मुझे कुछ नहीं चाहिए। कई रोज पाठ दुहराया पर यह कहते कभी न बना कि मुझे कुछ नहीं चाहिए।

रोग प्राकृतिक अनुशासन

तब स्वामी शरणानन्द जी स्वयं आ गये। आते ही बोले—'लाओ कागज, लिख लो, इस रोग से मरोगे नहीं। यह प्राकृतिक अनुशासन है, परिवर्तन की आहट है। मंगलमय विधान से आया है, उसे स्वीकार करो भाई....महर्षि रमण के साथ ऐसा ही हुआ। उन्हें लगा कि वे मर रहे हैं। जिज्ञासु थे। सोचा जब मर ही रहे है तब क्यों न देख लें कि मृत्यु कैसे आती है। बस, पाँव फैलाकर सो गये और मृत्यु की राह देखने लगे। पर मृत्यु नहीं आयी।'

दिन भर चहल-पहल। आने-जाने वालों की भीड़। पत्नी राधा भाव विभोर हम भी सबके स्वागत-सत्कार में इस तरह खो गये कि अपनी सुधि न रही। रात को बिस्तर पर जाते ही सोचा कि आज मृत्यु नहीं तो कम से कम यह देखेंगे कि शीत-लहरी ही कैसे आती है। सो, बदन ढ़ीला कर प्रतीक्षा करने लगा। लेकिन वह आई ही नहीं। ज्यों-ज्यों देर होती, मैं उत्फुल्ल होता जाता। उसकी जगह अँगड़ाई, जंभाई आने लगी, मैं निहारने की कोशिश करता और पलकें भारी होती जातीं। और मैं जान ही नहीं पाया कि कब नींद आ गयी—महीनों के बाद की वह नींद कितनी घनी थी।

स्वामी जी कई रोज ठहरे। जिज्ञासुओं की भीड़। बातचीत, प्रश्नोत्तरी, सत्संग, प्रवचन।

जन्म एवं किशोर अवस्था

शरणानन्दजी महाराज का जन्म उत्तर प्रदेश के एक सुखी-सम्पन्न परिवार में हुआ था। कमल से बड़े-बड़े नयन, भरा-पूरा शरीर। माँ-बाप के इकलौते पुत्र होने के कारण बड़े लाड़-प्यार से लालन-पालन हुआ। शिक्षा की अच्छी व्यवस्था

हुई। किन्तु विधि का विधान कुछ और था। किशोरावस्था में ही कमल-सी आँखें, जो दूर से किसी को खींचती थीं, खराब हो गयीं और कुछ दिनों के बाद, जाने किस संयोग से, माता-पिता दोनों का देहान्त एक ही दिन हो गया। इन बातों का उस मेधावी पर इतना प्रभाव पड़ा कि एक दिन उस नेत्रहीन किशोर ने अपने घर का हर दरवाजा खोल दिया, पशु खोल दिये, तिजोरी खोल दी और यह घोषणा करते हुए कि घर-द्वार, धन-दौलत, खेत-खलिहान से अब मेरा कोई सरोकार नहीं, जिसे चाहिए ले ले, घर से बाहर हो गया।

चम्बल तट की गुफा में एकांत साधना

चम्बल की घाटियों में वर्षों तक घोर तपस्या की। चम्बल घाटी की उस गुफा में मैं एक दिन गया था। खिड़कीनुमा उसके छोटे से दरवाजे में अब एक टीन का किवाड़ लगा दिया गया है। भीतर गुफा में रेत बिछी है और दो दीवारों में अड़े हुए बाँस के एक टुकड़े से एक गूदड़ लटका है जो स्वामीजी के उन दिनों की स्मृति धरोहर है। **आबादी से दूर बीहड़ दस्युसंकुल एकान्त में एक अंधा साधक अकेले कैसे रहा, इसकी एक अलग अन्तर्कथा है।** उस बीच सन् 1930 में गांधी जी का नमक सत्याग्रह शुरू हुआ। आन्दोलन चला। उसका संचालक डिक्टेटर कहलाता था। एक डिक्टेटर के गिरफ्तार हो जाने पर उसकी जगह दूसरा डिक्टेटर बनाया जाता था। लेकिन कुछ ही डिक्टेटरों के जेल जाने के बाद नये संचालक का मिलना मुश्किल होने लगा।

स्वतंत्रता संग्राम में कूदे

जब यह समाचार स्वामी जी को मिला तो वे तुरन्त चम्बल की गुफा से बाहर निकल कर स्वतंत्रता-संग्राम में कूद पड़े और उत्तर प्रदेश के आन्दोलन की बागड़ोर सम्भाल ली। यही नहीं, निर्णय कर लिया कि जब तक नमक कानून उठ नहीं जाता गैर कानूनी नमक ही खाएंगे, दूसरा नमक नहीं खायेंगे और झंडा लेकर जत्थे के आगे-आगे चलने लगे। अजीब दृश्य। आगे-आगे यूनानी बनावट और सुकरात की मुखाकृति

वाला मस्ताना अन्धा फकीर और पीछे-पीछे गाती हुई शहीदों की टोली। जहाँ जाते भीड़ लग जाती, संबोधन करते तो लगता कि देवदूत बोल रहा है। सरकार के लिए भारी खतरा। तुरंत गिरफ्तार कर लिए गये।

कारावास की सजा

डिक्टेटर होने के नाते इन्हें बी-क्लास मिलना चाहिए था पर खतरनाक अपराधी मानकर इन्हें सी-क्लास दिया गया। चक्षुहीन होने के कारण इन्हें सरल कारावास मिलना चाहिए था किन्तु इन्हें सख्त सजा दी गयी। जेल में दाल-तरकारी खाते न थे, क्योंकि गैर-कानूनी नमक खाने का व्रत लिया था और जेल में वह मिलने से रहा। तिस पर जेलर ने यह प्रश्न उठाया कि संन्यासी कैदियों को भी जेल में जेल का कुरता और जंघिया पहनना चाहिए। पहले तो स्वामी जी ने विनोद किया कि भाई कपड़े क्यों लेते हो, इन्हीं कपड़ों की वजह से तो लोग मुझे स्वामी जी कहते हैं। लेकिन जब शारीरिक यातना का भय दिया गया तब सौम्य भाव से बोले—'भय क्यो दिखाते हो? जब से संन्यास लिया तभी से शरीर को अपना नहीं समझा।'

जब जबर्दस्ती कपड़े पहनाये गये तो हाथ छूटते ही जंघिया-कुरता उतार दिये और नंगे हो गये। जेलर के आदेश से हाथ-पाँव बाँधे गये, जमीन में घसीटा गया, पीठ छिल गयी फिर भी नंगे ही रहे। तब उन्हें कालकोठरी में नंगे डाल दिया गया। देश भर में इसका विरोध हुआ। अखिल भारतीय संन्यासी मंडल ने देश-व्यापी आन्दोलन छेड़ा। स्वामी जी ने कालकोठरी में खाना-पीना छोड़ दिया, समाधिस्थ हो गये। 21 दिनों के अनशन के बाद उन्हें उनके संन्यासी वस्त्र मिल गये।

मानव सेवा संघ की स्थापना

देश के बँटवारे के समय हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में जो नृशंस नरसंहार हुआ उसे जानकर स्वामी जी रो पड़े, विकल हो गये और सम्प्रदाय-निरपेक्ष समाज के निर्माण के लिये मानव-सेवा-संघ नामक एक संस्था की स्थापना की। उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं जिनमें कुछ के नाम

हैं—मानव की मांग, जीवन दर्शन, जीवन-पथ, मानवता के मूल सिद्धान्त, साधन-तत्त्व, मूक सत्संग और नित्य योग, चित्त-शुद्धि आदि। देश-विदेश की विभिन्न भाषाओं में इनका अनुवाद हुआ।

संविधान-सभा के अध्यक्ष और बाद में भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने भारतीय संविधान के सम्बन्ध में स्वामीजी से चर्चा की थी और स्वामीजी ने कहा था कि संविधान का निर्माण चोटी के वीतराग महानुभावों द्वारा होना चाहिए। **जिसका अर्थ लगाने के लिए बड़े-बड़े विधिवेत्ताओं की सहायता की आवश्यकता होती है उसका निर्माण साधारण लोगों के वश का नहीं। उन्होंने यह भी कहा था कि सरकार को कानून बनाने वाला न होकर सिर्फ उनका पालन करने वाला होना चाहिए, बल्कि सरकार में चोटी के नेताओं को जाना भी नहीं चाहिए क्योंकि यदि ऐसे नेता सरकार में चले जायेंगे तो देश नेतृत्व-विहीन हो जायेगा।**

किन्तु देश अपने ढंग से चलता रहा और स्वामी जी वैरागी जीवन व्यतीत करते रहे और साधनापूत समाज के प्रयोग करते रहे। विनोबा भावे ने स्वामी जी के विचारों से प्रभावित होकर अनेकों बार सर्वोदय कार्यकर्त्ताओं को सम्बोधित और विचार-विमर्श करने के लिए उन्हें आमंत्रित किया।

जयप्रकाश बाबू व स्वामीजी

लोकनायक जयप्रकाश ने भी स्वामी जी से सम्पर्क बनाये रखा। दोनों स्वभाव से क्रांतिकारी। **पर स्वामी जी क्रांति को आन्दोलन से भिन्न मानते थे।** उनकी दृष्टि में आन्दोलन का अर्थ था—'बलपूर्वक दूसरों की बुराई को रोकना।' और क्रांति का अर्थ था—'स्वयं बुराई-रहित होकर दूसरों को प्रभावित होने देना।' अपनी धर्मपत्नी प्रभावती जी की भीषण बीमारी और देश की गिरती हुई दशा से पीड़ित जयप्रकाश जी 15 फरवरी, 1973 ई. को स्वामी जी से मिलने आये। दोनों की वार्ता का एक अंश सुना रहा हूँ—

जयप्रकाश बाबू (व्यथित स्वर में)—'आज समाजसेवी के नाते मैं अनुभव करता हूं कि कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जहाँ भ्रष्टाचार न हो। यह इतना फैल गया है कि इसका इलाज न हो तो न जाने क्या हो जाय?'

स्वामी जी—'क्रांति के बिना परिस्थिति बदलने से कुछ न होगा। हमें ठीक मालूम है, 1930 से 1935 तक हमने नौकरशाही, टैक्स, मशीन आदि का विरोध किया, परन्तु उन्हीं चीजों को हमने, आजादी के बाद, कस कर पकड़ लिया। पर निराश न होना चाहिए। **शरीर का नाश भले ही हो जाए, विचारों का नाश नहीं होगा। वे काम करेंगे। क्रांति आयेगी, चाहे हमारा शरीर रहे या न रहे। क्रांति आयेगी, जरूर आयेगी।**'

जयप्रकाश बाबू—'इसी विश्वास के सहारे ही तो हूँ, नहीं तो मेरे जैसे व्यक्ति को तो इस दिशा में बिल्कुल अंधकार या निराशा ही दीखती है।'

और सच ही अप्रत्याशित रूप से क्रांति आयी। जब बिहार में क्रांति पूरे जोर पर थी, स्वामी जी संघातक रूप से बीमार थे। रुग्ण-शैया से उन्होंने बिहार वासियों के नाम एक सन्देश जारी किया था और जयप्रकाश जी को, जिन्होंने स्वामी जी से बिहार के लिए समय निकालने का आग्रह किया था, उसकी प्रतिलिपि भेजते हुए लिखा था कि बिहार में हो रहे अत्याचार से मैं बहुत दुःखी हूँ। बिहार आने का जी चाहता है। पर शरीर साथ नहीं दे रहा है। किन्तु कोई परवाह नहीं, मन और विचार वहीं रम रहे हैं। **हम हार नहीं मानेंगे तो विजय निश्चित है, शरीर रहे या न रहे।** और सच ही विजय हुई, पर स्वामी जी का शरीर न रहा।

कोई और नहीं कोई गैर नहीं

25 दिसम्बर, 1974 ई. को, जो हिन्दुओं के लिए गीता-जयन्ती दिवस, क्रिस्तानों के लिए बड़ा दिन और मुसलमानों के लिए ईद-उल-

जुहा का दिन था स्वामी जी का स्वर्गारोहण हुआ। उनकी हिदायत के अनुसार उनकी कोई समाधि न बनी। वे व्यक्ति-पूजा के खिलाफ थे। यहाँ तक कि वे अपनी पुस्तकों में अपना नाम भी नहीं देते थे कि कहीं और कभी उनके नाम का हवाला न दिया जाने लगे। पर आज भी उनके कमरे में टंगी तख्ती पर लिखे दो वाक्य—'**कोई गैर नहीं, कोई और नहीं**' अमर सूक्तियों के उस लाड़ले विरल संत की मार्मिक स्मृतियाँ जगा जाते हैं और स्मरणमात्र से मन का मैल छंटने लगता है। सच ही, स्वामी शरणानन्द जी की उचित श्रद्धाञ्जलि उनके विचारों को जीवन में प्रतिष्ठित करना है जिनका सारांश है कि **सेवा, त्याग और प्रेम में मानव-जीवन की पूर्णता निहित है।**

□□

('स्मृतियों में अब भी' से साभार)

अमर फल

अचाह रूपी भूमि में ही मूक-सत्संग रूपी वृक्ष उत्पन्न होता है और संबंध-विच्छेद रूपी जल से उसे सींचा जाता है। वर्तमान परिस्थिति का सदुपयोग ही उस वृक्ष की रक्षा करनेवाली बाड़ है।

उनकी मधुर स्मृति उस वृक्ष का बौर है और अमरत्व ही उस वृक्ष का फल है, जिसमें प्रेमरूपी रस भरपूर है। प्रेम रस से भरपूर अमर फल पाकर ही प्राणी कृत-कृत्य होता है।

◆

(5)

एक महापुरुष की सन्निधि में

–अद्वैत चैतन्य

(श्री अद्वैत चैतन्य महाराज बाल ब्रह्मचारी हैं। आप सद्गुरु स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के संपर्क में सन् 1971 में आए। तत्पश्चात् सदा-सदा के लिए मानव सेवा संघ के प्रति समर्पित हो गए। वर्तमान में मानव सेवा संघ की आजीवन सदस्यता समिति के अध्यक्ष हैं। सारे भारत में भ्रमण करके संघ का संदेश जन-जन तक पहुंचाते हैं। आप जब व्यास पीठ पर बैठते हैं तो आपके श्रीमुख से स्वामीजी महाराज की वाणी का खुलासा सुनने को मिलता है। प्रस्तुत लेख में आपने स्वामीजी महाराज की सन्निधि के अपने संस्मरण प्रस्तुत किए हैं जो साधक जन के काम के हैं।)

मानव समाज को सत् पुरुषों—महत् पुरुषों से सदैव ही प्रकाश एवं मार्ग-दर्शन मिलता रहा है। मानव सेवा संघ के प्रणेता-प्रवर्तक ब्रह्मलीन पूज्यपाद स्वामी श्री शरणानंद जी महाराज एक ऐसे ही महान् पुरुष थे, जिन्होंने अपने उत्कृष्ट प्रेरणादायी विचारों एवं लोकपावन कार्यों द्वारा साधक समाज को जीवन की नई राह दिखाई। उनके व्यक्तित्व में एक ऐसा चुम्बकीय आकर्षण था कि एक बार भी उनके सम्पर्क में आने वाला उन्हें भूल नहीं पाता था।

अलौकिक जीवन प्राप्त इन महान् विभूति का दर्शन मुझे सर्व प्रथम सन् 1971 में वृन्दावन में हुआ। बातचीत में वे प्रांजल हिन्दी का प्रयोग करते थे। उनकी बोलचाल का ढ़ंग बड़ा गरिमापूर्ण था। उनकी सन्निधि में बैठने पर अनिर्वचनीय शान्ति एवं आनन्द की मिठास का अनुभव होता था। चरण स्पर्श करते ही लगता, जैसे वे अपने अन्तर्चक्षुओं से मेरी ओर देख रहे हों।

उन्होंने मेरी शैक्षिक योग्यता, दिनचर्या एवं मेरे जीवन के उद्देश्य के बारे में पूछा। तत्पश्चात् उन्होंने एक पेड़ा मुझे प्रसादस्वरूप दिया और कहा कि इसे मुँह में रख लो। दांत से न खाना, यह धीरे-धीरे घुलता रहे। मधुर रस से भरपूर वह पेड़ा लगभग आधा घण्टे तक मेरे मुँह में घुलता रहा।

कुछ दिनों के पश्चात् श्री स्वामीजी महाराज सत्संग यात्रा हेतु टूर पर रवाना हो गये। उन दिनों भारतीय दर्शन के पाश्चात्य चिन्तकों (इण्डोलौजिस्ट) एवं भारत भ्रमण करके, भारतीय योगियों एवं उनकी अलौकिक शक्तियों पर लिखने वाले पाश्चात्य लेखकों की अनेक पुस्तकें मैंने पढ़ रखी थीं। इस अध्ययन के फलस्वरूप भारतीय योग विद्या के प्रति मेरा आकर्षण उत्पन्न हो गया था। इससे उत्पन्न अधूरी जिज्ञासा एवं सत्य की खोज की मन्द लालसा लिये मैं ऋषिकेश रवाना हो गया। वहां उस समय के प्रख्यात अनेकों महात्माओं, योगियों से विचार-विनिमय करने का सुअवसर मिला।

दैवयोग से मई 1973 में पुनः स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज से रानी कोठी, स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) में भेंट हुई। मेरे द्वारा प्रणाम करते ही तुरन्त उन्होंने पूछा–तुम्हारा योग सिद्ध हो गया? मैंने कहा–नहीं महाराज! वे आत्मीयता के स्वर में बोले–**परिस्थिति परिवर्तन से योग सिद्ध नहीं होता।** मैंने अध्यात्म सम्बन्धी अनेकों जिज्ञासाएँ उनके सम्मुख प्रगट कीं, जिनके बड़े समाधानपरक उत्तर उन्होंने अपनी निजी शैली में दिये। दूसरे दिन मैं फिर उनसे मिलने आया एवं मैंने उनसे दीक्षा लेने की भावना प्रगट की। उन्होंने कहा–'भई! हम तो व्रत दिलाते हैं।' मैं मन में सोचने लगा कि व्रत से क्या होगा, मुझे तो महात्मा जी से दीक्षा चाहिए। लेकिन शायद उन्होंने मेरे मन की बात ताड़ ली। वे गंगा स्नान के लिए चलने लगे, मुझे अपने साथ चलने के लिए कहा। स्नानोपरान्त उन्होंने कहा–गंगा जल हाथ में लो और जोर से बोलो–**शरीर विश्व के काम आ जाय, अहं अभिमान शून्य हो जाय एवं हृदय प्रेम से परिपूर्ण हो जाय।** मैंने इन वाक्यों को यथावत् दोहरा दिया। इसके पश्चात् उन्होंने मुझे साधनरूपा स्वीकृति प्रदान की और

कहा–देखो बेटा! तीन बातों को याद रखना– 1. स्वावलम्बी रहना 2. लक्ष्य को मत भूलना 3. सत्संग करते रहना। इसके बाद व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित कुछ और बातें उन्होंने बताईं।

दीक्षा के पश्चात् उन्होंने मुझे परम पूज्या देवकी माता जी के पास प्रणाम करने व आशीर्वाद लेने के लिए भेजा। पूज्या माताजी ने अपना वात्सल्य स्नेह प्रदान करते हुए मुझे आशीर्वाद प्रदान किया एवं मेरे उज्जवल भविष्य के लिए शुभ भावना प्रगट की। श्री स्वामी जी महाराज ने मुझे वृन्दावन आश्रम जाने का आदेश दिया। यात्रा के पाथेय के लिए पराँठे बनवाये। लेटी हुई मुद्रा में उन्होंने पराँठे का डिब्बा अपने सीने पर रखा और कुछ देर डिब्बे को तबला की तरह बजाते रहे। फिर पूछा–आज कौन सी तिथि है? किसी ने बताया–षष्ठी। स्वामी जी ने कहा–चन्द्रमा की कलाओं की भांति तुम्हारी साधना दिन दूनी–रात चौगुनी बढ़े।

सद्गुरु के आशीर्वाद से आनन्द विभोर होकर मैं वृन्दावन आश्रम पहुँच गया। कुछ दिनों पश्चात् श्री स्वामीजी महाराज भी भ्रमण करते हुए वृन्दावन आश्रम आ गये। उन्होंने श्री हनुमन्तसिंह जी (छोटे दादा जी) को बुलवाया। मेरी ओर संकेत करते हुए स्वामी जी ने छोटे दादा जी से जीवन दर्शन पत्रिका का सम्पादन कार्य मुझे सौंपने का अनुरोध किया। सद्गुरुदेव श्री स्वामी जी महाराज ने मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए कहा–देखो बेटा! सम्पादक का कार्य छोटा मत समझना। भाई जी श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार कल्याण के सम्पादक से ही कितने बड़े महापुरुष हो गये।

एक बार मैंने श्री स्वामीजी महाराज से निवेदन किया कि–महाराज जी! मैं कुछ समय तक यात्रा में आपकी निजी सेवा में रहना चाहता हूँ। मेरी बात सुन कर वे मौन होकर कुछ सोचने लगे। कुछ क्षणों के अन्तराल के बाद बोले– **बड़े वृक्ष की छाँह में छोटा वृक्ष नहीं पनप पाता। मैं चाहता हूँ कि तुम कुछ समय तक मुझसे अलग रहो।** फिर बोले–यात्रा में मेरी सेवा में गृहस्थ साधक रहते हैं। बारी-बारी म सभी को अवसर देता हूँ।

श्री स्वामीजी महाराज ने अगली सत्संग यात्रा पर रवाना होने से पूर्व मुझे बुलाया और कहा–जाओ! राठी जी, हनुमन्त सिंह जी और श्रद्धा माता जी से अनुमति लेकर आओ। इन सभी महानुभावों ने सहर्ष मुझे जाने की स्वीकृति दे दी। दक्षिण भारत और राजस्थान की उस यात्रा में मुझे श्री सद्गुरुदेव की सेवा में रहने पर बहुत कुछ सीखने को मिला।

श्री स्वामीजी महाराज में माँ का वात्सल्य एवं पिता का संरक्षण दोनों ही बातें देखने को मिलती थीं। करुण रस से यदि उनका हृदय ओतप्रोत रहता था, तो प्रसन्नता के क्षणों में खुल कर हँसी-हँसते और आस-पास के सभी व्यक्तियों में उस रस का संचार हो जाता था। लेकिन उनके मन्यु रस को (रौद्ररूप) देखकर अच्छे-अच्छे धैर्यवान लोगों के भी होश फाख्ता हो जाते थे। साधक की कोई भूल मालूम होने पर कोई रू-रियायत न करते। वे भरी सभा में व्यक्ति का पोस्टमार्टम कर देते। यह बात अलग है कि वे बाद में उससे बहुत दुलार करते एवं हृदय से लगा लेते थे। एक बार मैंने मन्द स्वर में स्वामी जी से कहा– महाराज, मुझे आपने कभी एक बार भी डाँट नहीं लगाई। तो लेटे ही लेटे उन्होंने स्मित हास्य के साथ कहा– मेरी एक डाँट में आश्रम के गेट के बाहर भागते नजर आओगे। मेरी डाँट को सहन करना हर एक के वश की बात नहीं है।

जैसा उच्च कोटि का मानव सेवा संघ का दर्शन है, वैसा ही विमल एवं पारदर्शी इसके प्रणेता का जीवन था। मानव सेवा संघ में अपने बाहरी नामरूपात्मक व्यक्तित्व को विलीन कर उन्होंने प्रभु प्रेरणा से एक ऐसी सरल, सुगम, सर्वजन्यग्राह्य एवं क्रान्तिकारी साधन प्रणाली का प्रतिपादन किया, जो युगों-युगों तक मानव समाज का पथ-प्रदर्शन करती रहेगी। दिन में श्री स्वामी जी महाराज के पास मिलने वालों का ताँता लगा रहता था। रात्रि को उनकी पत्र लिखाने की क्लास चलती थी। मैं सोचता, इन सन्त को विश्राम कब मिलता होगा। अक्सर उनके श्रीमुख से हम साधकों को सुनने को मिलता–

राम काज कीन्हें बिना, मोहि कहाँ विश्राम।

एक बार सन्तकुटी में (वृन्दावन आश्रम में) तख्त पर श्री महाराज जी लेटे हुए थे, मैं उनके पास ही बैठा हुआ था। मैंने पूछा–महाराज जी! मुझे क्या करना है? कहने लगे–**करना क्या है? पहले अपना साधन निर्माण करो, फिर दूसरों को कराओ। तुम किसी पद आदि के चक्कर में मत पड़ना। मेरे समान ही फक्कड़ रहना।** इसके बाद वे मौन हो गये। कुछ क्षणों के अन्तराल के बाद स्वयमेव कहने लगे–मेरा काम क्या है? तुम्हें यह विश्वास हो जाय कि जीवन है और वह तुम्हें मिल सकता है, बस। मैंने पूछा–महाराज! जीवन की प्राप्ति हो गई कि नहीं, यह कैसे पता चले? तो कहने लगे–खाना खाकर उठते हो, तो किसी से पूछने जाते हो क्या कि मेरा पेट भर गया कि नहीं? सिद्धि प्राप्त होने पर स्वयं ही विदित हो जायेगा। वे कहते थे–मैं हँसी में भी कभी झूठ नहीं बोलता।

एक बार मैंने पूछा–महाराज! मैं दाढ़ी-केश रखूँ या घोट-मोट करा लूँ? उन्होंने सन्त कबीर का एक दोहा सुना दिया–

साहिब से सांचे रहो, बन्दे से सद्भाव।
चाहे लम्बे केश करो, चाहे घोट मुँड़ाव।।

अन्त में उन्होंने कहा–**जब साधक में अहंरूपी अणु नहीं रहता तब उस अनन्त में भी सामर्थ्य नहीं रहती कि वह उसका परित्याग कर सके।**

उनके स्नेहिल कृपापूर्ण स्पर्श से जीवन को एक नई दिशा मिली। याद आया, कहीं पढ़ा था—भगवान जब जीव पर कृपा दृष्टि करते हैं, तो उसे किसी सत्पुरुष की शरण में पहुँचा देते हैं। ऐसे सद्गुरु स्वरूप महामानव के चरणों में कोटि-कोटि प्रणाम् एवं साक्षात प्रणिपात!! सद्गुरु शरणम्!!!

□□

('जीवन दर्शन' से साभार)

(6)
स्वामीजी से मैंने क्या पाया ?

—रघुकुल तिलक

(राजस्थान के राज्यपाल रहे श्री रघुकुल तिलक उद्‌भट विद्वान एवं जिज्ञासु-वृत्ति के साधक थे। स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के प्रति आपकी निष्ठा एवं श्रद्धा गहन थी। इसीलिए वर्ष 1980 में प्रेम निकेतन आश्रम बाल मंदिर के उद्‌घाटन अवसर पर आश्रम के तत्कालीन प्रबन्धक श्री रामेश्वर जी अग्रवाल ने आपको मुख्य अतिथि के रूपमें आमंत्रित किया।

प्रस्तुत प्रवचन श्री तिलकजी द्वारा उसी अवसर पर दिया गया था। इसमें आपने स्वामीजी के दर्शन का अत्यंत सारगर्भित एवं हृदय-स्पर्शी विवेचन किया है जो प्रत्येक साधक के काम का है।)

आज आपने मुझे यहाँ बाल-मंदिर-भवन का शिलान्यास करने के लिए आमंत्रित किया, यह आपकी महती कृपा है। इसके लिए मैं हृदय से आपका आभार मानता हूँ। इस बहाने से मुझे यहाँ आने का मौका मिला और स्वामीजी का टेप-प्रवचन सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जब स्वामीजी हमारे बीच थे सशरीर, तो मुझे अनेक बार इस आश्रम में आने का मौका मिला, अपने परम मित्र श्रीमदनमोहन वर्माजी के साथ। जब मैं पहले यहाँ था राजस्थान में, सन् 1958 से 1960 तक, तब अनेक बार यहाँ आकर स्वामीजी के चरणों में बैठने का अवसर मिला और फिर यहां आया हूँ आपके निमंत्रण पर। शायद आपका निमंत्रण न मिलता तो बहुत समय तक यहाँ आना नहीं होता। इसमें मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ।

आज शिलान्यास की बात पर एक संस्मरण याद आया स्वामीजी का। तीन-चार वर्ष पूर्व की बात है–ठीक सन् और तारीख तो मुझे याद नहीं है। वाराणसी में इसी प्रकार शिलान्यास का प्रसंग था। वहाँ स्वामीजी के भक्त-महोदय जो एक अवकाश प्राप्त जज थे, भूमि उन्होंने दी थी, उसी भूमि पर शिलान्यास होने वाला था। देवकी बहन शायद उस समय उपस्थित नहीं हो सकी थीं। तो स्वामीजी द्वारा शिलान्यास होनेवाला था, मैं भी वहाँ गया। मैंने उन्हें प्रणाम किया। वे तुरन्त बोले कि, ''**अरे! रघुकुल तिलक यहाँ आया है फिर हमें यहाँ क्यों बुलाया? इन्हीं से करवाते शिलान्यास।**'' **इससे स्वामीजी की उदारता और स्नेह प्रकट होता है।** मैं यह मानता हूँ कि यह शिलान्यास का कार्य आज मैं किसी राज्यपाल की हैसियत से नहीं कर रहा हूँ, बल्कि स्वामीजी के एक विनम्र, अयोग्य अनुयायी की हैसियत से कर रहा हूँ। उनका आशीर्वाद प्राप्त है और मैं मानता हूँ कि उन्हीं के आदेश से यह काम हुआ, इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ। इससे अधिक मैं क्या कहूँ। स्वामीजी का आपने प्रवचन सुना। देवकी बहन का प्रवचन सुना स्वामीजी के विषय में, मैं और अधिक क्या कह सकता हूँ। केवल दो शब्द कहूँगा कि स्वामीजी से मैंने क्या पाया, अपने जीवन में।

नया प्रकाश मिला

मेरे मित्र मदनमोहन जी की कृपा से स्वामीजी से मेरा परिचय सन 1942 में हुआ था – जहाँ तक मुझे याद पड़ता है। उसके बाद अनेक बार स्वामीजी के पास आने का और स्वामीजी के प्रवचन सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जब भी स्वामीजी से भेंट हुई, कोई प्रश्न किया, कोई समाधान चाहा, सदैव ही उनसे नया प्रकाश मिला। जगत के प्रति, जीवन के प्रति, प्रभु के प्रति नई आस्था मिली, यह मैं कह सकता हूँ। **बल्कि मैं तो ऐसा मानता हूँ कि अपने जीवन में जो कुछ मैंने पाया है, जो कुछ आज हूँ, जीवन में वह दो ही व्यक्तियों की देन है–एक महात्मा गाँधी और**

दूसरे स्वामी शरणानंदजी। स्वामीजी के प्रवचन यों समझिये– एक प्रकार की पुण्य सरिता, बहती गंगा के समान थे। उसमें जिसके पास जैसा पात्र हो, वह भर लेता था। बड़ा पात्र हो जिसके पास वह अधिक ले लेता था और छोटा पात्र हो थोड़ा ही ले पाता था। मैंने अपने छोटे से पात्र में स्वामीजी से दो बातें लीं, जिनको पकड़ लिया अपने जीवन में, और निरन्तर कोशिश करता हूँ कि वह मेरे साथ रहें। **पहली बात तो है कि विवेक का आदर करना। स्वामीजी मानते थे कि प्रभु ने मनुष्य को विवेक दिया है और जिसने सत्संग द्वारा, स्वाध्याय द्वारा अपना चित्त शुद्ध कर लिया है, वह विवेक के प्रकाश में चल सकता है। इससे एक प्रकार से जीवन में स्वावलम्बन आता है। हमें किसी सम्प्रदाय की, किसी गुट की आवश्यकता नहीं रहती है। हमारे पास विवेक है और हम इस विवेक के प्रकाश में चल सकते हैं।**

वेद का आधार विवेक है

मुझे याद है मेरठ में एक बार उनका प्रवचन हुआ था – मेरे घर पर स्वामी जी पधारे थे, वहीं उनका प्रवचन था। मैंने पूछा : स्वामीजी! विवेक और वेद में यदि विरोध उत्पन्न हो तो किसको प्रधानता दें? स्वामीजी बोले : विरोध कैसे उत्पन्न होगा? **वेद का आधार भी तो विवेक ही है, तो विरोध कैसे उत्पन्न होगा?** मैंने फिर आग्रह किया और कोई उदाहरण भी दिया। मैंने कहा कि मान लीजिये ऐसा हो कि मेरा विवेक एक ओर चलने को कहता हो और वेद अथवा श्रुति-शास्त्र दूसरी ओर चलने को कहता हो, तो किस ओर चला जाय? तो स्वामीजी बोले कि भाई! **ऐसा है कि विवेक ही प्र'ान है, क्योंकि शास्त्र को, वेद को और श्रुति को हमारे विवेक ही ने स्वीकार किया है, अतः प्रधानता तो विवेक की ही है।** इस बात से मुझे बड़ा बल मिला कि हम अपने विवेक पर भरोसा करके स्वावलम्बी हो सकते है। किसी का सहारा ढूँढने की जरूरत नहीं। **विवेक**

का प्रकाश तो हमारे अन्दर मौजूद है और कहीं से दूसरा प्रकाश ढूँढ़न की आवश्यकता नहीं है।

असत् गया और सत् आया

दूसरी बात, जो मैंने स्वामीजी से सीखी वह यह कि असत् का त्याग करो। वे कहते थे कि यदि आप असत् का त्याग करेंगे तो सत् उसका स्थान ले लेता है स्वतः ही। प्रकृति का विधान ही ऐसा है कि उसमें रिक्त स्थान नहीं रहता है, वैक्यूम नहीं रहता है। **असत्य गया और सत्य आया। तो करना है हमें केवल असत् का त्याग।** असत् क्या है? जिसको आपका अन्तःकरण, आपका विवेक स्वीकार नहीं करता हो। भूल होती है जीवन में, मगर उस भूल को दुहराना नहीं चाहिए। उसको भूल जानते ही त्याग देना चाहिए।

इस पर भी मैंने स्वामीजी से एक प्रश्न किया कि मान लीजिये कि मुझे सत् और असत् का ज्ञान ही नहीं है। जिसको अपने जीवन में असत् का भान ही न हो वह क्या करे? तो बोले कि 'भाई! मनुष्य होगा तो ऐसा नहीं होगा, या तो यह बात पुशओं के जीवन में होगी या देवताओं के जीवन में होगी। मनुष्य के जीवन में तो असत्य रहता ही है, भूल रहती ही है। तो मनुष्य हो तो सत्य भी रहेगा और असत्य भी रहेगा ही, पर असत्य का त्याग करना है।' **तो ये दो बातें मैंने तो पकड़ ली हैं—स्वामीजी की।** और उन पर चलने में पूर्ण सफल हुआ–ये तो दावा करना बहुत कठिन है, मगर मुझे इससे जीवन में बड़ा सहारा मिला।

करने में सावधान, होने में प्रसन्न

तीसरी बात, जिसका संकेत स्वामीजी के प्रवचन में भी हुआ, और देवकी बहन ने भी कहा कि संकल्पपूर्ति का लोभ छोड़ दो। इसको भी मैंने करके देखा–यह मैं आपको कह सकता हूँ। अपना संकल्प नहीं

रखा, और मैंने देखा कि इससे मुझे जीवन में बड़ी शान्ति मिली। एक तो संकल्प-अपूर्ति से जो दुःख होता है उससे मुक्त हो गया और अपने संकल्प से जीवन चलता भी कहाँ है? जीवन तो प्रकृति के विधान से चलता है। संकल्प करके हम दुःखी होते हैं। संकल्प यदि पूर्ण नहीं होता है तो दुःखी होते हैं, पूर्ति होती है तो क्षणिक सा सुख होता है। संकल्प पूर्ति का लोभ हम छोड़ दें और प्रभु के ऊपर छोड़ दें। जैसा होता है उसे स्वीकार लें। स्वामीजी कहते थे कि करने में सावधान और होने में प्रसन्न रहना है **'मा फलेषु कदाचन।'** गीता की बात को सरल भाषा में रख देते थे कि करने में हो सावधान और होने में रहो प्रसन्न। **अब यह एक बहुत बड़ी बात है कि हमको जो कुछ करना है, वह अपने पूर्ण विवेक से, पूर्ण शक्ति से, पूर्ण बुद्धि लगाकर करें और जो कुछ होता है उसको प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करें।** ये बात अपने जीवन में, समझ में आ जाय तो फिर दुःख के लिए कोई स्थान नहीं रहता है, निराशा के लिए कोई स्थान नहीं रहता है। **तो यह बात भी मैंने स्वामीजी से सीखी।**

भू.पू. राज्यपाल, राजस्थान

□□

('जीवन दर्शन' से साभार)

प्रश्न : महाराज! जीवन आनंदमय कैसे बने?
उत्तरः सुखी को देखकर प्रसन्न व दुःखी को देखकर करुणित हो जाओ, जीवन आनंदमय बन जाएगा।

(7)
महामानव की सन्निधि

(i)
ईश्वर विश्वास

—गिरिवरचरण अग्रवाल

स्वामी जी कहा करते थे कि जब वे ईश्वर विश्वास के ठेकेदार बनते हैं, तो जीवन में प्रतिवर्ष उसे अपने ऊपर घटित करना उनके लिए अनिवार्य हो जाता है। इसका अनुभव मुझे 1936 में हुआ। अस्वस्थ होने के कारण मैंने छुट्टी ली और परिवार-सहित गर्मियों में अलमोड़ा रहा। आध्यात्मिक डाक्टर के रूप में स्वामी जी साथ थे। श्री महाराजजी शरीर को तो अपना करके कभी मानते ही नहीं थे। खूनी बवासीर, पित्त की उल्टियाँ तथा सिर का दर्द (माइग्रेन) तो उन्हें अक्सर रहा ही करता था। लेकिन इन सबसे वे तटस्थ थे। दैनिक कार्यक्रम व मुद्रा में इससे कोई अन्तर नहीं आता था।

इलाज मेरे एक मित्र—वहाँ के सिविल सर्जन स्वर्गीय डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद का चल रहा था और वह भी मेरे सन्तोष के लिए। स्वयं वे इस विषय में सर्वथा उदासीन थे। जब मेरी छुट्टी जुलाई के शुरू में खतम होने को आई और चातुर्मास भी शुरू हो रहा था, तो पूज्य स्वामीजी ने कहा कि मैं उन्हें किसी अपरिचित स्थान पर छोड़कर चला जाऊँ, जहाँ पास में पानी की सुविधा हो और मील-दो मील के अन्दर कोई गाँव हो। वे ईश्वर-विश्वास के आधार पर चातुर्मास किसी ऐसे ही स्थान पर व्यतीत करेंगे। मेरा साहस नहीं होता था कि किसी पहाड़ी अपरिचित स्थान पर नेत्रहीन बीमार व्यक्ति को छोड़ दिया जाय। उचित जगह की तलाश में था।

मृत्योला आश्रम, जहाँ कृष्ण प्रेम वैरागी (प्रो. निक्सन) रहते थे, उनके यहाँ उनके संरक्षण में किसी समीप के स्थान पर छोड़ने का विचार आया। मृत्योला से अगाड़ी कुछ मील दूर जागेश्वर नामक स्थान था, जहाँ एक छोटी नदी बहती थी, और शंकराचार्य द्वारा स्थापित कोई मंदिर भी सुना गया था। मालूम हुआ था कि जगह छोटी व एकान्त है। दोनों जगह जाकर निरीक्षण करने का निश्चय किया।

मैं व पूज्य स्वामी जी पैदल एक सुबह निकल पड़े। दूसरे दिन रात तक वापस आने को घरवालों से कह दिया था। एक कम्बल व छाता मेरे पास था और एक ओढ़ने को सूती वस्त्र स्वामीजी के पास था। मृत्योला, जो 12-14 मील पगडंडी से था, शाम को पहुँचे। रात्रि में पूज्य स्वामीजी का कृष्ण प्रेम वैरागी से विचार-विनिमय हुआ। मैंने अपनी समस्या उनके सामने रखी। लेकिन कोई हल नहीं निकला। सुबह उन्होंने एक नौकर से कहा कि हम लोगों को जागेश्वर के रास्ते पर छोड़ आवे। पहाड़ी नौकर ने ऊपर से ही दूर से रास्ता बताया। मैंने उसे छुट्टी दे दी।

मैं घबरा गया

ऊपर-नीचे दो रास्ते जाते थे। मैंने जागेश्वर जाने के रास्ते के बजाय गलत रास्ता पकड़ लिया। जागेश्वर 4-5 मील के अन्दर सुना था। लेकिन हम लोग इससे भी अधिक निकल गये। घना जंगल था। कोई आबादी दूर तक नहीं मालूम होती थी। इतने में जोर की बारिश, आंधी व तूफान आया। हम लोग बिलकुल तर-बतर हो गये। कहीं बचने का स्थान नहीं था। पेड़ टूट-टूट कर गिर रहे थे। जंगली जानवरों की आवाजें आ रही थीं। कोई आदमी दिखाई नहीं देता था। मेरे भीगे कम्बल का बोझा बहुत बढ़ गया था। स्वामीजी के पैरों में कई जोंकें चिपट गई थीं। मैं घबरा गया और स्वामीजी से कहने लगा कि अब जिन्दा लौटकर वापस जाना मुश्किल मालूम होता है।

यही ईश्वर विश्वास है?

उन्होंने डांटा और कहा कि यही ईश्वर-विश्वास है? गलत रास्ते पर हो, वापस चलो। मैं जिद करता था कि रास्ता ठीक है और वापस चलने की भी सामर्थ्य नहीं है। उन्होंने कहा कि पहले कुछ दूर उनके कान में 'नमो नारायण' की धीमी आवाज दूर से सुनाई दी थी, वहाँ तक तो चलो। हम लोग वापस हुए। कुछ दूर बाद एक ऊँचाई पर एक कोठरी दिखाई दी। वहाँ पहुंचने पर पता लगा कि राजा साहिब अल्मोड़ा की कोठी के नौकरों के वहाँ क्वार्टर हैं। राजा साहिब को कोठी पर जाकर खबर की। राजा साहिब निकल कर आये। बड़ी आवभगत की। उन्होंने कहा कि हम लोग गलत रास्ते पर थे। जागेश्वर का मृत्योला से दूसरा ही रास्ता था, यह तो घोर जंगल है। शिकार के लिये उन्होंने वहाँ कोठी बनवा रखी है। उन्होंने कपड़े बदलने को दिए, आग जलवाकर कपड़े सुखवाये। तापने को आग दी। खाना बनवाया व खिलवाया और आराम करने को कहा।

ईश्वर विश्वास का चमत्कार

थोड़ी ही देर बाद तूफान खत्म हो गया, धूप निकल आई। उन्होंने एक नौकर साथ दिया कि हम लोगों को जागेश्वर एक दूसरे छोटे पहाड़ी रास्ते से ले जाकर वहाँ घुमाकर मृत्योला छोड़ आवे। यह सब आकस्मिक मदद भगवत्-कृपा तथा स्वामीजी के ईश्वर-विश्वास का ही चमत्कार था। हम लोग जागेश्वर घूमे। वहाँ भी स्वामीजी को छोड़ने का साहस नहीं हुआ। लौटकर मृत्योला आये और श्री कृष्ण प्रेमजी से सब हाल बताया। जागेश्वर से सीधे अल्मोड़ा जाने का प्रोग्राम था। लेकिन मृत्योला रुकना पड़ा। दूसरे दिन के बजाय हम तीसरे दिन अलमोड़ा पहुंचे। इस कारण घरवाले सभी चिन्तित हो रहे थे।

जब मेरे चलने का दिन बिलकुल समीप आया, तो मैंने अपनी समस्या अपने मित्र, डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद के सामने रखी। उन्होंने हम सबको शाम

की चाय पर बुला रखा था। स्वामीजी साथ थे। उन्होंने मुझसे अलग से पूछा कि तुम्हारे स्वामीजी कुछ चमत्कारी हैं या नहीं? मैंने मना किया और कहा कि सिद्धियों तथा चमत्कारों में उनका विश्वास नहीं है, पर ज्ञान के वे अद्भुत धनी हैं। उन्होंने विश्वास कर लिया और कहा कि वे स्वामीजी को मेरे पास छोड़ जावें। इसके लिए उन्होंने स्वामीजी को अपने पास ठहरने के लिए सबके सामने निमन्त्रण दिया और कहा—बंगला बड़ा है, स्वतंत्र कमरा जिसके साथ ही कमोड वाला बाथरूम है, देंगे। उनकी पत्नी सेवा करेंगी, जो भी भोजन चाहेंगे वह देंगी। उनकी पुत्री स्वामीजी की निजी सचिव का काम करेंगे।

ईश्वर-वीश्वर का नाम व चर्चा उनसे न करना

लेकिन उनकी एक शर्त है, स्वामीजी ने पूछा, क्या शर्त? उन्होंने कहा कि ईश्वर-वीश्वर का नाम व चर्चा उनसे न करना। स्वामीजी बहुत हंसे और कहा कि तब तो डॉक्टर, तुम्हारे यहाँ अवश्य ठहरेंगे। मेरी समस्या हल हो गई। स्वामीजी को डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद के पास छोड़कर चला आया। वे एक सही माने में कर्तव्यनिष्ठ, ईमानदार व सच्चे कर्मयोगी थे। स्वामीजी की व उनकी मित्रता हो गई थी।

लगभग 6 साल बाद उनकी पत्नी का देहान्त हो गया। तब उन्हें अपनी मानसिक शान्ति के लिए स्वामीजी की आवश्यकता अनुभव हुई। उन्होंने मुझे लिखा और मैंने स्वामीजी को पत्र द्वारा निवेदन किया। पूज्य स्वामीजी उनके यहाँ शाहजहाँपुर जाकर कुछ काल रहे। **भगवान की आवश्यकता तो दुःख में ही होती है और तभी उनकी याद आती है। सच्चे नास्तिक को भी आवश्यकता होती है। इस घटना के वर्णन का यही उद्देश्य था।**

शिक्षाप्रद दो चुटकुले इस सम्बन्ध में और उल्लेखनीय हैं—

(i)

मैंने स्वामी जी से एक बार पूछा कि आप पैर क्यों छुआते हैं। उन्होंने विनोदी भाषा में कहा—क्या मेरे बाप के पैर हैं? तात्पर्य स्पष्ट है, वे शरीर को अपना शरीर ही नहीं मानते थे। कोई छूए तो क्या और न छूए तो क्या। वे स्वयं इस विषय में सर्वथा उदासीन थे।

(ii)

एक बार मैं स्वामीजी को एक बाग में स्नान के लिए लिवा ले गया। वे नल के नीचे नहा रहे थे, मैं थोड़ी दूर पर बैठा था। माली बाहर से आया, चिल्लाने और गालियाँ देने लगा। मुझे गुस्सा आया। मैं उसे डांटने लगा। स्वामीजी ने पूछा—क्या बात है?—मैंने कहा गाली दे रहा है। उन्होंने उत्तर दिया—''कहदो, नहीं लेते।'' मुझे हँसी आ गई। माली भी चुप हो गया। घटना का अर्थ निकला कि अगर बुराई का प्रतिकार न किया जाय, तो वह स्वयं शान्त हो जाती है।

उपरिवर्णित सभी घटनाओं से कितना स्पष्ट है कि वे शरीर से कितने असंग थे, ईश्वर पर आपका कितना अटूट विश्वास था और बुराई का प्रतिकार न करने से वह स्वयं शान्त हो जाती है, इस नीति में उनकी कितनी गहरी निष्ठा थी!

□□

लोभ ही दरिद्रता की जननी है

(8)

मेरे परम पूज्य स्वामी जी

–स्वामी प्रेममूर्ति
(पूर्व नाम—श्री हरिराम गुप्त, करनाल)

मई 1953 में बारहवीं कक्षा की परीक्षा के पश्चात् मैं अपने सम्बन्धियों के यहाँ देहरादून गया। उन दिनों रामतीर्थ मिशन आश्रम में एक आध्यात्मिक सम्मेलन हो रहा था। मुझे भी उस सम्मेलन में पहुँचने का सुयोग मिला। वहाँ बड़े-बड़े सन्त, महात्मा, दर्शनाचार्य, प्रकाण्ड पण्डित एवं अनेक गणमान्य महोपदेशक पधारे थे। उनके प्रवचन बहुत ही विद्वत्तापूर्ण, शास्त्रों पर आधारित एवं प्रभावशाली थे।

सम्मेलन के अन्तिम दिवस रविवार 24 मई 1953 को लगभग 11 बजे एक प्रज्ञाचक्षु सन्त को लाकर मंच पर बिठाया गया। मैं श्रोताओं में लगभग सबसे पीछे बैठा हुआ था। परन्तु जैसे ही उन्होंने बोलना शुरू किया, मैं मंच की ओर खिंचता ही चला गया। उनकी वाणी में ऐसा ही अद्भुत आकर्षण था। वे बड़ी ही सादगी और सरलता से जीवन का सत्य उद्घाटित कर रहे थे। मैं उनके विचारों को नोट करने लगा।

पहले सुने सभी व्याख्यान फीके पड़ गये

उनके भाषण में न तो शास्त्रों के प्रमाण थे और न ही किन्हीं महापुरुषों के उदाहरण। वे तो अपने जीवन का अनुभवसिद्ध सत्य ही बोल रहे थे। उस अवसर पर, मेरे पहिले के सुने सभी व्याख्यान फीके पड़ गये। प्रवचन के समाप्त होते ही स्वामी जी को वापिस जाना था। परन्तु श्रोताओं के आग्रह पर दोपहर बाद की बैठक में प्रवचन देना स्वीकार कर लिया, क्योंकि स्वामी जी तो इस सेवा

के लिए ही बने थे। मुझे बीच का समय व्यतीत करना कठिन हो गया कि कब फिर पूज्य स्वामी जी के वचनामृत को पान करने का सुअवसर मिले। इसी बीच मैंने पूछताछ करके पूज्य स्वामी जी की पुस्तक 'सन्त-समागम' खरीद ली थी।

आप जो भी बोलते हैं उससे जीवन की राह मिलती है

मैं परम पूज्य स्वामी जी की पुस्तक व उनकी याद लेकर वापिस करनाल आ गया। यह पुस्तक प्रतिदिन पढ़ता तथा अपने साथियों को सुनाता रहा। पता लगाकर सन् 1954 में फिर उसी आध्यात्मिक सम्मेलन के अवसर पर देहरादून में पूज्य स्वामी जी के दर्शन करने तथा उनकी अमृतवाणी सुनने के लिये पहुँच गया। इसी प्रकार सन् 1955 में बी.ए. की परीक्षा देकर फिर उसी अवसर पर देहरादून पहुँच कर पूज्य स्वामी जी की प्रतीक्षा करने लगा। जब स्वामी जी वहाँ पधारे तो मैंने उनके पास पहुँच कर उन्हें बताया कि मैं पिछले दो वर्षों से आपके सत्संग का लाभ लेने के लिए ही यहां आ रहा हूँ। उन्होंने मुझे प्यार से अपने पास बिठाया और कहा—'बेटा! बताओ, आज क्या सुनना चाहते हो?' मैंने कहा—स्वामी जी, आप तो जो भी बोलते हैं, उसी में आनन्द आता है तथा जीवन की राह मिलती है।

पिछले दो वर्षों में तो मैंने केवल उनकी अमृतवाणी का ही लाभ उठाया था, परन्तु इस बार उनका प्यार पाकर तो मैं कृतकृत्य ही हो गया। मैंने स्वामी जी से प्रार्थना की कि मैं उनके पास आना चाहता हूँ तो उन्होंने अविलम्ब कहा, 'बेटा, जब चाहो गीता भवन, ऋषिकेश में आ जाओ।' मैं अगले दिन ही दो दिन के लिए वहाँ पहुँच गया, पर स्वामी जी के सान्निध्य में सात दिन बीत गये। आगे पढ़ाई के लिए मुझे शीघ्र वापस लौटना पड़ा।

इसके पश्चात् मैं स्वामी जी की जानकारी रखता रहता था और जब भी अवसर मिलता, मैं उनके पास पहुँच जाता और अपने आत्मीय तथा प्रियजनों को उनके सत्संग से लाभान्वित होने के लिए साथ ले जाता।

करनाल में मानव सेवा संघ की स्थापना

सन् 1959 की राम नवमी को स्वर्गीय ला. जगतराम जी के उदार सहयोग से पूज्य स्वामी जी को करनाल लाया गया। उन्हीं की प्रेरणा से करनाल में मानव सेवा संघ शाखा की स्थापना हुई। यहाँ से संचालित सभी विनम्र सेवाओं का श्रेय श्री स्वामी जी महाराज को ही है।

सेवा से साधक का विकास होता है

जब मैं अपने आपको देखता हूँ तो अपने में कुछ नहीं पाता, फिर भी पूज्य स्वामी जी ने मुझे अगाध प्यार दिया है। यह उनकी असीम उदारता है कि 6 नवम्बर 1973 को जब उन्हें हृदय-रोग का आक्रमण हुआ तब मेरे लिए सन्देश लिखवाया—**'हरि आश्रय तथा विश्राम में ही जीवन है। पराश्रय तथा परिश्रम सेवा के लिए उपयोगी हैं, अपने लिए नहीं।'** इसके पश्चात् 16 दिसम्बर 1974 को हृदय-रोग का भयंकर दौरा पड़ा तब भी उन्होंने एक भाई के द्वारा पुनः कहलवाया—**'हरि भाई से कहना कि अपने सेवा-क्षेत्र को बढ़ाते रहें। सारी सृष्टि अपनी है। सेवा से साधक का विकास होता ह।'**

उनकी अमर वाणी सदा ही हमारा पथ-प्रदर्शन करती रहेगी। मैं तो उनका एक नन्हा सा बालक हूँ। प्रभु से मेरी यही प्रार्थना है कि मैं अपने लिए, जगत् के लिये और जगत्पति के लिये उपयोगी बन सकूँ।

□□

(जीवन-दर्शन से साभार)

(8)

मानवता के शिल्पकार

स्वामीजी महाराज का करुणापूरित जीवन

उनसे सीखे कोई—आदमी गढ़ने की कला

– जगदीशप्रसाद अग्रवाल
श्रीधाम, वृन्दावन

हमारे गांव चरथावल में स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज का पदार्पण सबसे पहले ईस्वी सन् 1954 में हुआ था। आर्य समाज के स्वामी श्री अभयदेवजी के आश्रम में आपका प्रवचन था। वहीं आपके दर्शन हुए तथा पहली मर्तबा आपका प्रवचन हुआ। प्रवचन इतना आकर्षक था कि मुझे लगा—स्वामीजी महाराज ने तो मेरे मन के सारे प्रश्नों के उत्तर दे दिए। सारा प्रवचन क्या मेरे ही लिए था? मेरे अन्तर्मन ने उन्हें गुरु स्वीकार कर लिया। नगर के सेठ श्री अशर्फीलालजी के यहां आपका आवास था जहाँ नित्य प्रातः 3 से 4 बजे तक होने वाले मूक सत्संग तथा प्रवचनों में मैंने पूरी तरह से भाग लिया।

स्वामीजी ने की—हमारी सेवा

सन् 1958 में मैं श्री अशर्फीलाल जी के साथ ऋषिकेश सत्संग-समारोह में गया था। स्वामीजी वहां 2 नम्बर गीता भवन में ठहरे थे। 5 दिनों तक आपके प्रवचनों का लाभ लिया। वे वहाँ एक गुफा में बैठकर साधकों के व्यक्तिगत प्रश्नों के उत्तर देते तथा शंका समाधान करते थे। एक दिन स्वतः ही प्रातः हमें अपने साथ गंगा स्नान करने का आदेश दिया। हाथ पकड़-पकड़कर 5-7 मर्तबा गंगा में डुबकियां लगवाईं और हमसे बुलवाया—

मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए
सब कुछ प्रभु का है, केवल प्रभु ही मेरे अपने हैं

इस प्रकार स्वामीजी महाराज ने की—हमारी सेवा। इस घटना के पश्चात् तो वृंदावन आश्रम में होली के अवसर पर होने वाले सत्संग समारोह में मैं प्रतिवर्ष श्री अशर्फीलाल जी के साथ भाग लेता रहा। सन् 1961 में करणवास (यू.पी.) में होने वाले सत्संग समारोह में मैं पूरे माह स्वामीजी महाराज की सन्निधि में रहा। वहां मुझे भी उनके सेवकों में से एक माना जाने लगा। सन् 1970 तक प्रतिवर्ष अगस्त मास में होने वाले सत्संग-समारोह में 30-35 दिन मुझे उनकी सेवा में रहने का सुअवसर मिलता रहा।

मेरे नाम पत्र लिखवा कर भेजा

सन् 1971 में मैं भयंकर रूपसे बीमार पड़ा। जून माह में मेरे सबसे बड़े पुत्र विजेन्द्र का विवाह था। बीमारी के कारण मैं उसमें भाग नहीं ले सका था। पेट के अल्सर व लीवर की खराबी के कारण मैं मरणासन्न स्थिति में था। मेरे छोटे भाई राजेश्वरदयाल ने स्वामीजी के पास जाकर उन्हें मेरी स्थिति बताई। स्वामीजी महाराज ने मुझे खिलाने हेतु एक सेव दी, लेटे-लेटे ही सही, सुंदरकांड़ का पाठ करने का कहा तथा मेरे नाम निम्न पत्र लिखवाकर भिजवाया–

गीता भवन
दिनांक 10-6-1971

मेरे निज स्वरूप, परम स्नेही
प्रभु विश्वासी, प्रियवर

सप्रेम हरि स्मरण तथा बहुत-बहुत प्यार। जीओ, जागो, सदा आनंद में रहो। सब कुछ प्रभु का है और प्रभु तुम्हारे हैं। इस वास्तविकता में विकल्प रहित विश्वास करो और सब प्रकार प्रभु के होकर रहो। उन्हीं की मधुर-स्मृति सहज भाव से होती रहे। स्मृति में ही जीवन है। यह शरणागत

साधकों का अनुभव है। लोक हितकारी पावन शरीर की अस्वस्थता का समाचार सुनकर हृदय करुणित हो उठा। सर्व समर्थ प्यारे प्रभु तुम्हें प्राप्त परिस्थिति के सदुपयोग की सामर्थ्य प्रदान करें जिससे तुम बड़ी ही सुगमतापूर्वक सभी परिस्थितियों से अतीत, अविनाशी, स्वाधीन, रसरूप, चिन्मय जीवन को पाकर सदा के लिए आनंद विभोर हो जाओ।

प्यारे! तुम किसी भी काल में शरीर नहीं हो अपितु अनंत की प्रीति हो। तुम्हें रोग स्पर्श नहीं कर सकता। प्राकृतिक तप के रूप में जो रोग प्रतीत हो रहा है उसे सहर्ष सहन करो और सर्वदा अभय रहो। निश्चिंतता, निर्भयता एवं प्रियता से ही जीवन मिलता है, आवश्यक सामर्थ्य मिलती है—यह प्रभु का मंगलमय विधान है। रोगावस्था में चित्त शांत व प्रसन्न रहना चाहिए। भयहारी हरि तुम्हें सदा के लिए अभय-पद प्रदान करें। अभय होने से स्वतः सामर्थ्य की अभिव्यक्ति होती है, जो रोग निवृत्ति में हेतु है। सेवा के लिए तुम्हें शरीर मिला था जिसका तुमने बड़ी ही ईमानदारी से सदुपयोग किया है और भविष्य में करोगे ऐसा मुझे पूरा विश्वास है। अपने में अपने प्रेमास्पद को पाकर सदा-सदा के लिए आनंद विभोर हो जाओ। रोगावस्था में परिवार, समाज तथा संसार का चिंतन नहीं होना चाहिए। अखंड स्मृति रखनी चाहिए—यही परम औषधि है। इसीसे वास्तविक आरोग्यता प्राप्त होती है। यही प्रभु विश्वासियों का अनुभव है। रोग, भोग की रुचि मिटाने आया है। इस वास्तविकता पर गंभीरता से विचार करो, सफलता अवश्यंभावी है।

इस समय सेवा-परायण मुक्तेजो का शरीर भी काफी अस्वस्थ है। पर चित्त उनका अशांत नहीं है। खुराक नहीं के समान है तो भी उठती-बैठती है। भक्तिमती देवकीजी उसे चम्मच से मौसंबी का रस पिलाती हैं। उससे भी कभी-कभी पेट फूलता है, पर धीरज है। धीरे-धीरे ठीक हो जायेगी। तुम्हारी बीमारी का समाचार सुनकर वह करुणित होने लगीं। उनके लीवर और पेट में भी सूजन है। 99 के लगभग टम्परेचर हो जाता है। दोनों सेवा परायण साधक एक ही रोग से आबद्ध हैं।

भवगत्कृपा का दर्शन करते हुए धीरजपूर्वक समय बीत रहा है। सर्व समर्थ प्रभु अपनी अहैतुकी कृपा से तुम्हें साधननिष्ठ बनाएं। इसी सद्भावना के साथ तुम्हें बहुत-बहुत प्यार। ॐ आनंद।

तुम्हारा
शरणानंद

इसे खिलापिलाकर तगड़ा बनाना

मेरे रोग में काफी सुधार हो गया पर कमजोरी थी। अगस्त में स्वामीजी महाराज ने मुझे वृंदावन बुला लिया और मुक्तेश्वरीजी से कहा—

जगदीश को तुम्हें सौंपे जा रहा हूं। इसे खिलापिलाकर तगड़ा बनाना तुम्हारा काम है। मैं तो 15 दिन के लिए बम्बई जा रहा हूँ। तू मर जाता तो घर छूटता कि नहीं?

स्वामीजी महाराज के बंबई से आने के पश्चात् मैं पूरी तरह से उनकी सेवा में लग गया। एक दिन स्वामीजी के टब स्नान करने के पश्चात् मैं तौलिया से उनका शरीर पोंछ रहा था तो बोले—जगदीश! तू मर जाता तो घर छूटता कि नहीं? मैंने कहा—हां महाराज! छूटता। फिर बोले—जीतेजी नहीं छोडोगे? मेरे से बिना उत्तर लिए स्वतः ही बोले—देखो, तीन साल के भीतर घर छोड़ देना। जीवन सेवा के लिए मिला है भोग के लिए नहीं। इस पर मैं बोला—महाराज आप जानें, मेरे बस की बात नहीं है। फिर पूछा—तेरा छोटा बच्चा कितने वर्ष का है। मैंने कहा 11 साल का। तो बोले—3 से 5 साल की अवधि रखलो। तब तक वह 16 वर्ष का हो जाएगा। फिर चिंता की कोई बात नहीं है। मैं चुप हो गया। बात आई गई हो गई।

मैं तो सदा के लिए वृदावनवासी हो गया

5 जुलाई 1974 को मैं श्री अशर्फीलाल जी के साथ चरथावल से स्वामीजी महाराज के पास ऋषिकेश गया था। वहां से हम वृंदावन आए तो

मैं सदा के लिए यहां का हो गया। मेरे घर के सारे काम-धंधे छूट गए। यहां स्वामीजी महाराज ने मुझे कृषि व गौशाला का काम संभलवाया। कृषि के लिए ट्रैक्टर खरीद कर दिया। वर्ष 1990 से 2000 तक मुक्तेजी प्रबन्धक और मैं उप प्रबन्धक व कोषाध्यक्ष रहा तथा साथ में केन्द्र के कोषाध्यक्ष श्री हरिमोहन जी के साथ मैं केन्द्र का उप कोषाध्यक्ष भी रहा। इस प्रकार स्वामीजी महाराज की कृपा से मैं तो सदा के लिए वृन्दावनवासी हो गया। तभी से यहां निवास कर रहा हूं।

स्वामी महाराज ने मुझ जैसे अल्पज्ञ को अपना कर कल्याण पथ पर अग्रसर किया इसके लिए मैं क्या कहूं—मेरे पास शब्द नहीं है। मैं तो इतना ही कह सकता हूं कि मानवता के शिल्पकार स्वामीजी महाराज से सीखे कोई—आदमी गढ़ने की कला।

□□

साधक सावधान

तीन घाटी महान्

सुख, सुविधा और सम्मान

(10)

महामानव का महाप्रयाण

(अभिव्यक्तियाँ एवं स्मृतियां)

– बाबा श्रीपाद महाराज

(i)

स्वामीजी की महा-समाधि वेला साक्षी है कि महासमन्वय की दिव्य चैतन्य-भूमि के प्रतीक-स्वरूप, समस्त मानव-जाति के मूल्यांकन का आधार बनकर दिसम्बर 1974 का वह दिवस उस महासमन्वय की भूमिका अदा करता हुआ अवतरित हुआ जबकि एक ही दिन चारों महापर्व एकत्रित हुए। ऐसा स्वर्णिम अवसर, ऐसा दुर्लभ संयोग उन अनंत की अहैतुकी कृपा से ही साध्य है, अन्यथा नहीं। गीता जयन्ती, मोक्षदा एकादशी, क्रिसमस दिवस, बकरीद तथा मानव सेवा संघ का स्थापना दिवस – नानाविध धार्मिक मान्यताओं एवं आदर्शों के प्रतीक। **ऐसा लगता है कि स्वयं चिद्रूपा प्रकृति ने स्वामीजी का दिन इस महासमाधि के लिए अपने हाथों, निज संकल्प से तय किया हो।**

वह दिवस विरह एवं अश्रुपूरित व्यथा की स्मृति लिये हुए चिरन्तन रहेगा, जब उन्होंने अपने नित्य सखा! प्यारे श्यामसुन्दर की चिन्मयी नित्य-लीला में जाने का निश्चय किया। **ऐसा लगता है कि उनके प्यारे ने उनको पुकारा और जैसे किसी का कोई चिरपरिचित चिरकाल से बिछुड़ा हुआ सुहृद अनायास आवाज दे और पद्मपत्रमिवाम्भसा की रहनी रहने वाले सखा—सब कुछ छोड़कर तत्क्षण चल दिये।**

(ii)

अंतिम संदेश

- कुमारी अर्पिता

13 नवम्बर 1973 से 25 दिसम्बर 1974 तक परम पूज्य श्री महाराज जी को हृदय के दौरे पड़े। यह असाधारण बात थी। परन्तु इस अवधि में भी वे साधकों को दिव्य सन्देश देते रहे। शरीर रुग्ण था, पर वे स्वयं अपनी आनन्दानुभूति में स्थित रहते थे। **कोई और नहीं, कोई गैर नहीं,** धर्म एवं प्रेम का मंत्र साधक समाज को दिया। 24 दिसम्बर 1974 को सायं 6.15 पर मुझे कार्यालय से बुलाया, जहाँ कि मैं डॉक्टर से सम्पर्क साधती थी फोन पर, और आक्सीजन सिलेण्डर की व्यवस्था करती थी। बड़े प्यार से अपने पास बिठाकर दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर खूब चूमा। दोनों हथेलियों पर हाथ फेरते हुए कहा कि बेटा, कल एकादशी है। मेरी तीन बातें सदैव ध्यान में रखना (1) **जो कुछ दिखाई देता है सब प्रभु का है।** (2) इसमें भी वह है और (3) **वही है, कुछ और है नहीं।** सिर को चूमते हुए पुनः कहा जाओ, काम संभालो, मस्त रहो, डाक्टर माथुर को मेरा प्यार कह दो फोन पर। 25 दिसम्बर 1974 को प्रातः 8 बजे ''ऊँ'' के उच्चारण के साथ अंतिम विदा ले ली। ऐसी विलक्षण तिथि चुनी जो कि दुर्लभ है। मोक्षदा एकादशी, गीता जयन्ती, ईद, क्रिसमस, जैन पर्व तथा मानव सेवा संघ का स्थापना दिवस। धन्य हैं ऐसे सन्त!

माँ की कृपा भरी गोद, पिता का संरक्षण, गुरु का मार्ग दर्शन—सभी कुछ तो दिया उन्होंने।

संत अमर हैं, उनकी वाणी अमर है। उनकी जय हो! जय हो!! जय हो!!!

याचना जो उनसे कर रहा हूँ

- जस्टिस श्री उषाकांत वर्मा

उनकी शारीरिक अस्वस्थता का पत्र पाकर जब मैं उनसे मिलने गया, तो बिना किसी और बात के शरीर की गम्भीर दशा की परवाह न करते हुए उन्होंने मुझसे कहा—जो कुछ पूछना हो, पूछ लो। मेरे चुप रहने पर उन्होंने कदाचित् स्थिति का संक्षिप्त परिचय देते हुए मुझसे पूछा कि क्या सोचते हो, यह शरीर चलेगा? मेरे यह कहने पर कि मुझे तो ऐसा नहीं दीखता कि यह जाने वाला है। उन्होंने कहा कि—यह तुम्हारी ''**विशफुल थिंकिंग**'' है। सारा आश्रम महाराज श्री के दो दिन पूर्व हुए ''**मासिव हार्ट अटैक**'' से आहत था। मैं माधवी दीदी के पास महाराजजी से मिलने के बाद गया, तो उन्होंने बताया कि हार्टअटैक वाले दिन उन्होंने देखा कि एक ज्योति पुंज संत कुटी से निकल कर सत्संग भवन के ऊपर तक गई और पुनः लौट कर संत कुटी में वापिस चली गई।

पिता जी (महाराजश्री) कहते हैं कि यदि उनका शरीर एकादशी तक नहीं गया तो रहेगा, अन्यथा चला जायेगा। यह चर्चा महाराजश्री के शरीर के सम्बन्ध में सभी कर रहे थे। महाराजश्री ने दिन इत्यादि के साथ सभी कुछ निश्चय कर, इसका संकेत दे दिया था। पर इसका प्रभाव सत्संग की बैठकों पर तनिक भी नहीं था। नित्य साढ़े तीन से चार के बीच मूँक सत्संग के बाद ''**कोई और नहीं, कोई गैर नहीं**'' पर दीदी (भक्तिमती देवकी देवी जी) द्वारा वार्ता होती थी और महाराज जी उसमें सम्मिलित होते। जिस दिन महाराजश्री ने शरीर त्याग किया, उस दिन की मुझे खूब याद है कि सत्संग की गोष्ठी के बाद, जब उन्होंने कहा कि ''**जीवन की दो ही अवस्थायें सार्थक हैं— या तो पर-पीड़ा से हृदय द्रवित होता रहे या प्रेम की गंगा लहराती रहे**।''दीदी के सिर पर आशीष का हाथ फेरा और उस स्नेहयुक्त स्पर्श का मुझे भी

अनुभव हुआ। दीदी ने महाराजश्री को याद दिलाते हुए कि श्री ईसा मसीह का जन्मदिन है, असीसी के संत फ्रांसिस की बुलबुल व कुत्ते की कथा सुनाई, जिन पर संत के प्रेम का इतना प्रभाव हो गया था कि वे उनके विछोह को सह न सके और उनका शरीर छूट गया।

महाराज श्री के कमरे का वातावरण हर समय प्रेम से भरपूर होता। ज्यों-ज्यों उनके शरीर छोड़ने का समय निकट आता गया, वह प्रेम बढ़ता ही गया। गीता जयन्ती होने के कारण उस दिन बाल मंदिर की बालिकाओं की प्रभात फेरी हुई। सेवा, त्याग, प्रेम के गान और मानवता के सजग प्रहरी के नमन् के समय कृतज्ञता के आँसू रोके नहीं रुके। हृदय का मल धुल गया। **कितना कुछ कहने को है, कहता जाऊँ, पर पूरा नहीं होगा। बस, इतना ही कहना शेष है कि जो क्षण उनके सानिध्य में बीते, उनकी स्मृति मेरे जीवन के अनमोल रत्न हैं। उनकी विधिवत् दी हुई दीक्षा को, जो भक्तिमती कुमारी मुक्तेश्वरी से यह कह कर दी थी कि —तुम्हारे भैया के मन में कभी इसकी कमी न खले, उसे सार्थक कर सकूँ, इसकी सामर्थ्य की याचना उन्हीं से कर रहा हूँ।**

(iv)

शेर की बेटी शेर हो, शेर की तरह रहना

- श्रीमती विभा सिंह

पूज्य स्वामी जी बिस्तर पर पड़े थे, आक्सीजन लगा हुआ था। शरीर में कई कष्ट एक साथ आ गये थे। परन्तु चेहरे पर जरा भी बीमारी का प्रकोप नहीं था। मिलने वालों के साथ वैसे ही उल्लास और प्रेम के साथ मिलना, समस्याओं का समाधान करना सब पूर्ववत् था। मुझे जरा भी पता नहीं था कि पूज्य स्वामी जी शरीर त्यागने [illegible] हैं। शाम का सत्संग पूज्या भक्तिमती देवकी माता जी सन्त कुटी के बरामदे में करती थीं। मैं पूज्य स्वामी जी (अपने बाबा) के कमरे में रहकर सत्संग सुनती थी। कभी-कभी उन पर ध्यान चला जाए, तो उन्हें पता चल जाता था।

वे हम लोगों को जो अन्दर थे, उन्हें ध्यान देकर सुनने की आज्ञा देते थे। ऐसा कोई सर्वज्ञ ही करेगा।

पूज्य स्वामी जी (मेरे बाबा) अब अच्छे होने लगे, आक्सीजन हट गया। कार्तिक पूर्णिमा का दिन था। मैं अपनी माता जी के साथ वापस पटना लौटने वाली थी। सुबह से पूज्य बाबा के पास बैठी थी। मेरे प्यारे बाबा ने मुझे पास बुलाया और कहा "**बेटी ! तुम शेर की बेटी शेर हो, शेर की तरह रहना।**" सुनकर बहुत अच्छा लगा। बड़ा प्यार आया, परन्तु समझी नहीं। समझ में आया उनके शरीर त्यागने के बाद। मेरे लिए यह वाक्य बहुत बड़ा सम्बल भी सिद्ध हुआ। साधना के क्षेत्र में,जीवन के क्षेत्र में, हर जगह अपने आप हिम्मत आई आगे बढ़ने की। **अपनी तरह स्वाधीन बनने का संदेश दे गए।**

(v)

भगवान् के अतिरिक्त है कोई ऐसा?

- श्रीमती आशा वर्मा

उनके बीमार होने का समाचार मिला। नैनीताल से हम भी पतिदेव के साथ आना चाहते थे। पर इन्होंने कहा कि बारी-बारी से रहेंगे। अभी हम रहते हैं, फिर तुम जाना। 24 दिसम्बर को पुराने घर में, जिस कमरे में स्वामी जी ठहरते थे, उसी में सोए। स्वप्न में देखा कि स्वामी जी का शरीर भूमि पर है और जब कपड़ा उठाया गया, तो संत कबीर की तरह उस जगह शरीर के बजाय कुछ फूल पड़े हैं। एक दम से उठ बैठे। स्वप्न का मतलब कुछ समझ में नहीं आया। मन उदास-उदास था। दूसरे दिन किसी ने अखबार में उनके ब्रह्मलीन होने की दुखद सूचना पढ़ी। रोते रोते उन करुणा सागर की अपार करुणा ने अभिभूत कर दिया। न देख पाने की व्यथा को स्वप्न में मिल कर थोड़ा कम कर गए। भगवान् के अतिरिक्त है कोई ऐसा? अहैतुकी कृपालु, अनासक्ति, योग-ज्ञान व प्रेम की त्रिवेणी चलकर अपने पास आई, पर हम जैसे मूर्ख अनबूड़े बूड़े रह गए।

□□

(11)

प्रज्ञाचक्षु की निर्मल प्रज्ञा

(यही सच्चा संत कार्य होता है)

-उषा

(उषा बहन जी संत विनोबा भावे द्वारा संस्थापित ब्रह्म विद्या मंदिर, पवनार (वर्धा) की वरिष्ठ साधिका हैं। आपने स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के विषय में अत्यधिक प्रेरणास्पद लेख लिखा है, जो 'मैत्री' के 12 सितंबर 2007 के अंक में प्रकाशित किया गया है। उसे ज्यों का त्यों यहां मुद्रित कर रहे हैं।)

अद्‌भुत प्रतिभासंपन्न था वह बालक! सबको आकर्षित करनेवाली बड़ी गजब थीं उसकी आंखें। दुर्भाग्य से दस साल की उम्र में बालक ने अपनी आंखों की ज्योति गंवा दी। किंतु वही दुर्भाग्य सौभाग्य में पलट गया। आंखें गयीं तो बालक की दृष्टि अंतर्मुख हुई और वह प्रज्ञाचक्षु बना। उसके सान्निध्य में अनेकों को प्रकाश किरण की उपलब्धि हुई। प्रारंभ में तो वह निराशा में डूब गया। भावी जीवन के सारे स्वप्न धूमिल हो गये। दुःख ने उसे घेर लिया। दस-ग्यारह साल के बालक के मन में प्रश्न खड़ा हुआ, '**ऐसा भी क्या कोई सुख होता है, जिसमें दुःख शामिल नहीं हो।**' और एक दिन पिताजी बातचीत के सिलसिले में किसी को बता रहे थे, '**साधुओं को ऐसा सुख होता है जिसमें दुःख नहीं रहता।**' बालक के जीवन में बीज बो गया, '**मैं साधु बनूंगा।**' चित्त पर धुन सवार हो गयी, **साधु कैसे बनूं?**

शरण्य से कैसे मिलूं?

और एक दिन आंगन में एक संत का आगमन होता है। दुःखी बालक को वे कहते हैं - भैया, राम-राम कहो। बालक कहता है, 'राम-नाम में विश्वास नहीं।' संत ने कहा, 'कोई बात नहीं। ईश्वर को तो मानते हो?'

'हाँ, ईश्वर को मानता हूं।' संत ने कहा, 'अच्छी बात है, इश्वर के शरणागत हो जाओ।' शरणागत होने की बात दिल को छू गयी। जबसे सुनी, प्रत्येक क्षण शरण्य को मिलने की धुन तीव्र होती चली गयी। रह-रहकर हृदय में हिलोरें उठती रहतीं - **'शरण्य से कैसे मिल?'**

और वह बालक आगे जाकर स्वामी शरणानंद के नाम से विख्यात हुआ। साधु बनने की धुन सवार हुई थी तब ही भीतर से संन्यास-वृत्ति सिद्ध हो गयी थी। बाह्य संस्कार बाकी थे। माता-पिता के देहांत के बाद उन्होंने संन्यास ग्रहण किया। वैसे उम्र तो उस समय 18-19 की रही होगी। पैतृक संपत्ति काफी थी। व्यावहारिक सलाह मिल रही थी - संपत्ति बैंक में जमा कर दो और घर में बैठकर भजन-कीर्तन करते रहो। **भगवान के शरणागत को संपत्ति के अधीन रहना कैसे जंचता?** और एक दिन सद्गुरु का आदेश मिला - 'घर के दरवाजे खोल दो, गांव के लोग जो चाहे सब उठा ले जायें, तुम मेरे साथ चलो।' एक क्षण का भी विलंब नहीं हुआ। गुरु का आदेश तत्क्षण शिरोधार्य कर वे निकल पड़े।

आंखों की रोशनी चली जाने से बाल्यावस्था में अधिक पढ़ नहीं सके थे। गुरु के पास थे तब मन में वेद-उपनिषद पढ़ने का संकल्प उठा। गुरु ने कहा, **'ठहरी हुई बुद्धि में सब वेदशास्त्र, उपनिषदों का ज्ञान स्वतः प्रकट होता है। पाठशाला है एकांत और पाठ है मौन।'**

तो यह शरीर भी तो उनका ही है

गुरु का शरीर शांत होने के समय की बात है। स्वामीजी ने कहा, आपका शरीर कुछ काल और रह जाता तो मेरी साधना के लिए अच्छा रहता। गुरु ने कहा, ऐसा क्यों सोचते हो? मेरे अनेक शरीर हैं, तुम्हें जब आवश्यकता होगी, मैं मिल जाऊंगा और वैसा अनुभव भी आया। साधना की दृष्टि से जब-जब दिल में कोई प्रश्न उठता, तत्काल कोई-न-कोई संत मिल जाते और समाधान कर जाते। एक बार मन में विचार कौंध गया,

अगर किसी भी शरीर के माध्यम से गुरुदेव मदद कर सकते हैं तो यह शरीर भी तो उनका ही है। बस, तबसे बाह्य गुरु की आवश्यकता नहीं रही। भीतर का गुरुतत्त्व जागृत हो गया। साधना में स्वांधीन हो गये।

एक बार गुरु-पूर्णिमा के दिन किसी प्रेमी भक्त ने स्वामीजी को गुरुरूप में पूजन करने की अनुमति मांगी। स्वामी जी ने कहा, '**सेवकों के गुरु हैं श्री हनुमंतलालजी, विचारकों के गुरु हैं भगवान शंकर और प्रेमियों की गुरु हैं श्री राधारानी। अब तुम्हारी अपने संबंध में जैसी मान्यता हो, उस हिसाब से पूजन करो।** गुरु शरीर का नाम नहीं है। गुरु तो तत्त्व है। शरीर में गुरु-बुद्धि और गुरु में शरीर-बुद्धि भूल है।'

जाओ हो गई दीक्षा

स्वामीजी के उपदेश और कार्यपद्धति की यह विशेषता रही कि वे साधकों को किसी बाहरी विधि-विधान एवं अभ्यासजन्य साधनों पर अटकने नहीं देते थे, विभिन्न दार्शनिक मतभेदों में उलझने नहीं देते थे, किसी दर्शन या साधन-प्रणाली का आग्रह या विरोध नहीं करते थे। एक बार कॉलेज की एक छात्रा ने मंत्र-दीक्षा के लिए निवेदन किया। उत्तर में स्वामी जी ने फरमाया, '**मैं मंत्र दीक्षा नहीं देता। मैं तो मानव बनने की दीक्षा देता हूं। इतना कहकर उससे पांच वाक्य दोहराये - 1. मेरा कुछ नहीं है 2. मुझे कुछ नहीं चाहिए 3. प्रभु मेरे अपने है 4. सब कुछ प्रभु का है 5. उनका प्रेम ही मेरा जीवन है। इन पांच वाक्यों को दोहराकर बोले - 'जाओ हो गयी दीक्षा।'**

'मैं तो मानव बनने की दीक्षा देता हूं' - मनुष्य सर्वप्रथम मानव बने यह उन्हें अभीष्ट था। एक बार एक मां ने अपनी छोटी बिटिया को स्वामीजी की गोद में रखते हुए कहा, 'आशीर्वाद दीजिए, हम इसे डॉक्टर बनाना चाहते हैं।' स्वामीजी ने कहा, 'बेटा, तुम्हारा संकल्प यह होना चाहिए कि हम इसे मानव बनाना चाहते हैं, फिर चाहे भले ही यह कुछ भी बन जाये।'

उनका कहना था कि मानव को विवेक स्वयं 'मानव' होने के लिए मिला है, शासक, नेता और गुरु बनने के लिए नहीं। शासक बल के द्वारा, नेता विधान के द्वारा और गुरु ज्ञान के द्वारा सुधार करने का प्रयास करते हैं। परंतु मानवता तो एक अलग ही प्रक्रिया की प्रेरणा देती है। **और वह यह कि हमें नेता होना है तो अपने ही नेता बनें, यदि हमें शासन करना है तो अपने पर ही शासन करें और यदि गुरु बनने की कामना है तो अपने ही गुरु बनें।**

स्वामीजी कहा करते थे कि **अपना कल्याण और सुंदर समाज का निर्माण** – यह है मानव-जीवन की वास्तविक मांग। और फिर बताते थे कि अपने कल्याण का अर्थ है अपनी प्रसन्नता के लिए अपने से भिन्न की आवश्यकता न रहे और सुंदर समाज के निर्माण का अर्थ है कि जिस समाज में एक-दूसरे के अधिकारों का अपहरण न होता हो। वे कहते थे कि कर्तव्य पर ध्यान न देकर अधिकार-प्राप्ति के लिए मर मिटना गुण के रूप में दोष है। **कर्तव्यपरायणता आ जाने पर अधिकार बिना मांगे ही मिल जायेगा।**

सुंदर समाज की उनकी कल्पना यानी शासनमुक्त समाज। वे कहते थे, जिस समाज को अपने लिए पुलिस की आवश्यकता होती है, न्यायशाला की आवश्यकता होती है, फौज की आवश्यकता होती है, वह सुंदर समाज नहीं कहा जा सकता। उनकी आध्यात्मिक विचार-सृष्टि में व्यक्ति के विकास के जितना ही समाज के उत्थान का ख्याल बुना हुआ था।

स्वामीजी स्पष्टवक्ता थे। साधक-सत्संगियों की गलत धारणाओं को वे एकाध-दो वाक्यों में बखूबी धराशायी कर देते थे। साधक कैसे आत्मलक्ष्यी बने, उसीकी ओर उनका लक्ष्य रहता था। ऐसे ही कुछ प्रसंग–

एक सत्संगी का व्यवसाय कुछ मंद चल रहा था। उसने कहा, महाराजजी वैसे तो सब ठीक है किंतु अर्थ का कुछ अभाव चल रहा है। स्वामीजी

ने तुरंत कहा, अर्थ का अभाव उतना बुरा नहीं है। अर्थ के प्रभाव से बचना।

एस साधक ने प्रश्न पूछा, श्री रामकृष्ण परमहंस इतने बड़े महापुरुष होने पर भी हुक्का क्यों पीते थे? जवाब में स्वामीजी ने कहा, यद्यपि यह कोई अच्छी बात नहीं थी। फिर भी महापुरुष के दोष नहीं देखने चाहिए। देखो, पहाड़ का गड्ढा भी जमीन से ऊँचा होता है।

मृत्यु और मुक्ति की उनकी व्याख्या – **इच्छाओं के रहते हुए प्राण चले जायें तो मृत्यु हो गयी और प्राण रहते हुए इच्छाएं चली जायें तो मुक्ति हो गयी।**

भावपूर्वक स्वामीजी के लिए पेड़े बनाकर लानेवाले गृहस्थ उदास हो गये, जब स्वामीजी ने जरा-सा पेड़ा मुख में रखकर शेष सत्संगियों के बीच बांट दिये। उनकी उदासी देखकर स्वामीजी ने कहा, भैया! एक ही मुख से बार-बार खाने के बजाय, मैंने वे पेड़े अनेक मुखों से एक ही बार में खा लिये।

एक दर्जी ने स्वामीजी को कहा, महाराजजी, मैं आपको दो चोले सीकर देना चाहता हूं। स्वामीजी उनकी भावना को भांप गये और बोले, बेटा! नये चोले तो अवश्य बना दे परंतु अपना पुराना चोला तुम्हें हरगिज नहीं दूंगा। यह तो वस्त्र है। यदि तू मेरी चमड़ी भी उतारकर पहन ले तो भी कुछ नहीं होनेवाला। जब तक स्वयं साधना नहीं करेगा, कल्याण नहीं होगा।

तुम्हें इससे क्या मिलेगा?

एक बार स्वामीजी से एक भाई ने कहा, महाराज! अन्य संप्रदायवाले सनातन धर्म के विरुद्ध बात करते हैं। स्वामीजी ने उत्तर दिया - **'हम पर तो किसी के बाप का भी असर नहीं हो सकता। तुम कैसे सनातन धर्मी हो? तुम्हारी आस्था में कैसी खलल पड़ गयी? वह तुम्हारे धर्म की निंदा करते हैं और तुम हमसे उनके धर्म की निंदा कराना चाहते**

हो। तुम्हें इससे क्या मिलेगा? अपने धर्म का पालन करो और दूसरे के धर्म का आदर करो।'

तो मसीहा मेरा सगा भतीजा है

स्वामीजी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। संत-महात्माओं के बीच वे स्थितप्रज्ञ-ब्रह्मनिष्ठ अनुभवी महापुरुष के तौर पर जाने जाते थे। हृदय से वे स्नेही और स्पष्टभाषी थे। ईश्वरनिष्ठ तो वे थे ही। ईश्वर-शरणता के मंत्र से उनका पूरा जीवन अभिभावित रहता था। ईश्वर के साथ वे दोस्ती का दावा भी करते थे। एक बार मुसाफिरी में किसी क्रिश्चियन फादर से मुलाकात हुई। फादर ने पूछा, आप मसीहा के संबंध में क्या जानते हैं? तो स्वामीजी ने बड़ी प्रसन्नता और आत्मविश्वासपूर्वक कहा, '**मसीहा खुदा का पुत्र है। मैं खुदा का दोस्त हूं। तो मसीहा मेरा सगा भतीजा है। मैं उसे अच्छी तरह जानता हूं। वह मुझे बडा प्यारा लगता है।**'

वो तो भक्त को इच्छारहित करते हैं

एक सज्जन ने अपने मित्र की पहचान कराते हुए कहा कि ये मेरे घनिष्ठ मित्र हैं। बातचीत के दौरान वे बीच-बीच में इस बात को दोहराते रहे। तब स्वामीजी ने कहा, यार! सच्चा दोस्त तो वह है जो खुदा से मिला दे। कभी किसी ने पूछा, महाराजजी! क्या भगवान भक्त की इच्छा पूरी कर देते हैं? तो उत्तर मिला, 'कैसी बात करते हो? **इच्छा तो उन्होंने अपने बाप की भी पूरी नहीं की, फिर तुम्हारी कैसे कर देंगे?** राजा दशरथ ने चाहा, वह नहीं हुआ। जो यशोदाजी ने चाहा, वह नहीं हुआ। ब्रह्म की नित्य सहचरी सीताजी ने चाहा, वह भी नहीं हुआ। **भगवान इच्छा पूरी नहीं करते, वे तो भक्त को इच्छारहित करते हैं।**'

उन्होंने खुदने अपना जीवन पूर्णतया ईश्वरचरणों में समर्पित किया था। अपनी विशेष भाषा में वे कहते थे अकिंचन, अचाह, अप्रयत्न हो जाओ। अचाह यानी निष्काम बन जाओ, अप्रयत्न यानी सहजभाव से जीओ। सबकुछ

उसे सौंप देने से फिर वही हमारी फिक्र करता है। उनको खुदको तो कदम-कदम पर ऐसे अनुभव आते थे। उन्होंने अकेले ही पांच बार यमुनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ, बद्रीनाथ की यात्रा की थी। हिमालय का दुर्गम मार्ग, जहां तक न सड़कें थीं, न बस। एक अकेले दृष्टिहीन आदमी ने कैसे पदाक्रांत किया होगा वह मार्ग? उनके गुरु ने उनको कहा था, **'बेटा जब तुम आजाद हो जाओगे तो सारी प्रकृति तुम्हारी सेवा के लिए लालायित रहेगी, चराचर जगत् तुम्हारी आवश्यकता पूर्ति के लिए तत्पर रहेगा। वृक्ष तुम्हें फल-फूल देंगे और खूंखार शेर तुम्हें गोद में लेकर तुम्हारी रक्षा करेंगे।'**

वे पूर्णरूप से आजाद थे, क्योंकि उनको कोई चाह नहीं थी। वे कहते थे, **'चाह लेकर परमात्मा के पास जाने पर परमात्मा भी संसार हो जाता है तथा अचाह होकर संसार के पास जाने पर संसार भी परमात्मा बन जाता है।'**

प्रेम की विद्या का गणित

प्रभु-प्रेम और मानव-सेवा – इन दो बातों में उनके जीवन का सार समाया हुआ है। ईश्वर के लिए उनकी अनन्य प्रीति सहज भाव से आसपास के वातावरण में प्रवाहित होती रहती थी। वे स्वयं प्रीति का मूर्तरूप थे। ईश्वर का कृपाप्रसाद उन पर निरंतर बरसता रहा और उस प्रसाद को प्रेमपूर्ण हृदय से वे सबको बांटते रहे। सर्वथा आसक्ति, अहंकाररहित उस दिव्य, चिन्मय प्रसाद का आस्वादन जिस किसी को चखने को मिला, उसका जीवन तो धन्य बन गया। प्रीति की उनकी अभिभावना सीमाबद्ध नहीं थी। वे कहते थे, **'प्रीति समस्त विश्व की ओर प्रवाहित हो तो उसका नाम विश्व-प्रेम हो जाता है, यदि 'स्व' की ओर प्रवाहित हो तो उसे आत्म रति कहते हैं और यदि अनंत की ओर प्रवाहित हो तो उसी का नाम प्रभु-प्रेम हो जाता है।'** उनका खुदका प्रीति का स्रोत विश्व-प्रेम, आत्म-रति और प्रभु-प्रेम की त्रिविध धारा से सदैव पुष्ट रहता था। सृष्टि और सृष्टिकर्ता के साथ का

अभिन्न एकत्व उनकी प्रीति की आधारशिला थी। उसे गणित की भाषा में समझाते हुए वे कहते थे, **'देखो भाई! प्रेम की जो विद्या है उसका गणित बड़ा विचित्र है। उसमें एक और एक मिलकर दो नहीं होते, एक ही होता है।'**

सच्चा संतकार

भारत संत-महात्माओं का देश है। अनेक जाने-अनजाने संत-महंतों से पावन इस भूमि में बीसवीं शताब्दी में ऐसी एक हस्ती हमारे बीच मौजूद थी। स्वामी शरणानंदजी के भक्तजनों ने चाहा कि उनकी जीवनी प्रकाशित की जाये। उस दृष्टि से उनका परिचय पूछने पर जवाब मिलता था - **'शरीर सदैव मृत्यु में रहता है और मैं सदा अमरत्व में रहता हूं, यह मेरा परिचय है।'** प्रश्न पूछा जाता था - 'महाराजजी! हम आपकी जीवनी लिखना चाहते हैं' और मिताक्षरी जवाब मिलता था - **'लिख लो, मेरी जीवनी है दुःख का प्रभाव।'** स्वाभाविक है कि ऐसे पहुंचे हुए महात्मा से छोटे-बड़े सब पथ-प्रदर्शन चाहेंगे। एक बार राष्ट्रपति राजेन्द्रबाबू के वहां स्वामीजी के साथ सत्संग गोष्ठी का आयोजन किया गया था। राष्ट्रकवि मैथिलिशरण गुप्त ने स्वामीजी से अनुरोध किया, **'महाराज! पथ प्रदर्शन कीजिए।'** स्वामीजी ने कहा, **'चलने की रुचि में पथ का दर्शन होता है।'** राष्ट्रपति राजेन्द्रबाबू ने कहा, **'चलने की रुचि भी है और पथ भी दिखायी देता है, लेकिन चला नहीं जाता।'** तब स्वामीजी बोले, **'न चलने की वेदना में चलने का सामर्थ्य निहित है।'**

मनुष्य के हृदय में **'न चलने की वेदना'** निर्माण करना यही सच्चा संतकार्य होता है।

□□

(12)

करुणा तथा वत्सलता के सिंधु

-डॉ. राजेन्द्र पंजियार

भागलपुर

बात सन् 1961 ई. के शिशिर काल की है। तब मैं एम.ए. का छात्र था। परीक्षा की तैय्यारी में लगा था। मुझे जानकारी मिली कि भागलपुर शहर के सुप्रसिद्ध श्रेष्ठिवर्य श्री लोकनाथजी ढ़ांढ़निया के निवास स्थान पर कल प्रातः 6 बजे ऋषिप्रवर स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज का प्रवचन कार्यक्रम निर्धारित है। स्वामीजी की प्रशस्ति मैंने सुन रखी थी परंतु पूर्व में उनके किसी कार्यक्रम में भाग लेने का अवसर मुझे प्राप्त नहीं हुआ था। उन्हें सुनने की उत्सुकता थी। अतः ठीक समय पर मैं ढ़ांढ़नियाजी के निवास पर पहुँच गया। उनके प्रवचन का विषय था–'**कैकयी चरित्र।**'

साधारण जन मानस में कैकयी, राम-चरित्र के एक कलंकित पात्र के रूपमें ही चर्चित रही है। पर मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब महाराज श्री ने तो, सारे कलंक को धोते हुए कैकयी-चरित्र की ऐसी अभिनव प्रस्तुति की, जो श्रोतागण को करुणा और वत्सलता की धारा में निम्मज्जित करके भाव-विह्वल होने का कारण बन गयी। आपने फरमाया कि–'राम कैकयी के अत्यधिक प्यारे थे। उन्होंने कैकयी को कहा कि 'माँ! मुझे वन में भेज दो।' कैकयी नहीं समझ पा रही थी कि राम वन में क्यों जाना चाहते हैं। पर राम वन जाने को दृढ़ थे तो उन्होंने कहा–'प्यारे राम! मैं कलंकित हूँगी, अपमान सहूँगी पर तुम्हारे मन की बात अवश्य पूरी करुंगी, तुम्हे वन में भेज दूंगी। उन्होंने रामजी को वन में भेजकर उनके मन की बात पूरी कर दिखाई, क्योंकि राम कैकयी के अत्यधिक प्यारे थे।'

दूसरे दिन के प्रवचन में महाराज श्री ने भरतजी की भक्ति पर केन्द्रित ऐसा प्रवचन दिया जिसने उपस्थित जन-समुदाय को अश्रु-विगलित होने के लिए विवश कर दिया।

तीसरे दिन के प्रवचन में आपने चम्बल-तट स्थित उदी गुफा पर हुई अपने साधना काल की घटना यूं सुनाई–

'एक निस्तब्ध रात्रि में मुझे गुफा के बाहर बातचीत का आभास हुआ। अनुमान करते देर न लगी कि मैं चोरों के चंगुल में हूँ। भगवान की याद आ गई। टटोल कर मैंने अपनी लुटिया को कम्बल के नीचे छुपा लिया व झटपट उठ कर खड़ा हो गया। संभवतः दीपक के क्षीण प्रकाश में चोरों ने मुझे ऐसा करते देख लिया था। दोनों कुटिया के भीतर प्रवेश कर गए व बोले–'महाराज! हमारा परिवार दो दिन से भूखा है, रोजी-रोटी का कोई अवलम्बन नहीं है। अतः आज हम लोगों ने चोरी करने की योजना बनाई है। आपतो साधु-महात्मा हैं अतः चोरी में आपका तो क्या लेंगे? आप तो सारी दुनियां को देने के लिए ही पैदा हुए हैं। आप हमसे भय न करें। यह कहते हुए वे प्रणाम करके चले गए।'

इस घटना का वर्णन करते हुए स्वामीजी महाराज भाव विह्वल हो उठे और बोले–

'मैं कैसा महात्मा हूँ कि मुझे अपनी लुटिया की चोरी का भय हो गया। और वो चोर कितने विचारवान कि मुझे साधु मानकर अपनी विवशता का सच-सच बखान करते हुए, बिना मेरा कुछ लिए चले गए।'

यह कहते-कहते महाराज श्री की आंखें छलक आईं। आपका कहने का वह अनूठा व जादुई अंदाज मैं भला कहां से लाऊं जिसके प्रभाव से शायद ही श्रोताओं की आंखों से आंसू नहीं ढुलक आए हों। अपनी बात क्या कहूं? अवरुद्ध कंठ से महाराज जी को एकटक निहारता रहा और यह सोचता रहा कि—मेरे लिए तो करुणा तथा वत्सलता के सिंधु स्वामीजी महाराज के इन तीन दिनों के सत्संग कार्यक्रम चिर स्मरणीय रहेंगे।

□□

(13)

स्वामी जी महाराज का जीवन प्रेम की अजश्र धारा

– श्रीमती विभा सिंह

सन् 1950 से 1955 के बीच किसी साल में (मुझे याद नहीं) स्वर्गीय पूज्य स्वसुर जी ने कहा कि मैंने एक सन्त का दर्शन भागवत भाई के यहाँ किया। बड़े अच्छे सन्त हैं। भागवत भाई के जीवन का आमूल परिवर्तन हो गया उनके क्षणिक संसर्ग मात्र से। मेरे स्वसुर जी ने कहा कि पूज्य स्वामी जी ने कभी भी भागवत भाई को यह नहीं कहा कि तुम ऐसा करो, ऐसे रहो इत्यादि। उनको देख-सुनकर ही उनके जीवन में क्रांति आ गयी। ऐसे महात्मा को यदि मैं कुरसेला लाऊँगा, तो मेरा सौभाग्य होगा। उस समय ही यह सब सुनकर मेरे मन में दर्शन की इच्छा जगी थी। फिर 1960 में श्रीशत्रुघ्न उपाध्याय जी से पूज्य स्वामी जी के बारे में सुना था। वे हमेशा पूज्य स्वामी की चर्चा किया करते थे। कहते थे —ऐसा साधु हमने नहीं देखा है। एक जे. कृष्णमूर्ति हैं, दूसरे स्वामीजी दोनों के लिए कहते थे कि एक प्रभु को मानते हैं, तो दूसरे नहीं मानते हैं। श्री उपाध्याय जी के साथ भाई-बहन का सम्बन्ध बन गया था। राखी के समय उन्होंने मुझे गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित '**एक महात्मा का प्रसाद**' उपहार में दिया था। इस किताब में पूज्य स्वामी जी की वाणी थी। किताब मुझे बहुत अच्छी लगी।

पूज्य स्वामी जी की वाणी में जीवन की सार्थकता पूर्णता को प्राप्त करने में है। पूर्णता की प्राप्ति प्रेम की प्राप्ति में है। प्रेम की प्राप्ति स्वाधीन होने पर है। निर्विकल्प, निर्विषय, निर्मम, निष्काम व्यक्ति ही स्वाधीन हो सकता है। स्वाधीन होने के लिए अपना अधिकार त्याग दें, दूसरों के

अधिकारों की रक्षा कर दें। जो व्यक्ति संसार में ऐसा आचरण करेगा, उसकी चित्तशुद्धि हो जाएगी। अचाह—अकिंचन बनकर स्वाधीन होगा और प्रेम की प्राप्ति होगी। प्रेम की प्राप्ति में ही पूर्णता है। वह प्रेम-चाहे प्रभु के लिए हो, चाहे आत्मा के लिए हो, चाहे संसार के लिए हो।

उनके शब्दों में, आस्तिकवादियों का प्रेम, आध्यात्मवादियों का प्रेम, भौतिकवादियों का प्रेम—प्रेम जिसका भी हो, निस्वार्थ प्रेम ही वास्तविक प्रेम है, जो पूर्ण है, जिसकी प्राप्ति पूर्णता की प्राप्ति है। स्वाधीन हुए बिना कोई भी इस प्रेम को प्राप्त नहीं कर सकता। लेकिन स्वामी जी ने साधकों के जीवन में निराशा की कहीं भी गुंजाइश नहीं रखी। उनके शब्दों में माँग ही माँग की पूर्ति में हेतु है। एक वाक्य ही आपके जीवन में आशा का संचार कर देगा। आपको सोचने के लिए मजबूर कर देगा कि निराश मत होओ। **यदि मन में प्रभु-प्राप्ति, योग-बोध-प्रेम की प्राप्ति की माँग है, तो जरूर पूरी होगी।**

उनकी स्मृति

पूज्य स्वामी जी हँस कर कहा करते थे कि हाथी के मुख में ईख देकर निकाल तो लो। नहीं निकाल सकते। वैसे ही श्री प्रभु समर्पित व्यक्ति यदि भूल भी जाए, तो वे नहीं भूलने देंगे, अपना बनाकर ही छोड़ेंगे। पूज्य स्वामी जी की स्मृति को शब्दों में लिपिबद्ध करने की सामर्थ्य मेरी लेखनी में नहीं है, परन्तु प्रयास करने का साहस जुटा पाई हूँ। उनकी स्मृति को शब्दों में बाँधना उसी तरह होगा, जैसे समुद्र को बाँधना, सूर्य के प्रकाश को कमरे में बन्द कर देना, इत्यादि। भला **असीम का वर्णन सीमित शब्दों द्वारा कैसे किया जा सकता है।** स्वामी जी यानि मेरे बाबा साक्षात् प्रभु थे। प्रभु की महिमा का गान प्रभु-प्राप्त व्यक्ति ही कर सकता है। उनकी कृपा से ही कोई उन्हें याद कर सकता है, यहाँ तक कि पसन्द कर सकता है। यह भी गुरुजनों का ही वाक्य है।

ऐसे आनंदस्वरूप प्रभु ही तो होते हैं

मैं कैसे लिखूँ, समझ में नहीं आ रहा है? हाँ! इतना जरूर कह सकती हूँ कि मैं प्रभु की तरफ आकर्षित भी प्रभु की कृपा से हुई। मेरे जीवन में साधना का प्रगट या अनुभूतियों का अनुभव सब कृपा-साध्य ही था। अपनी कर्मठता लेश-मात्र भी नहीं थी। मेरी पूज्य स्वामी जी से मुलाकात भी नगण्य ही कही जा सकती है। बातें तो समाचार पूछने के सिवा कुछ नहीं। हाँ! जब पूज्य स्वामी जी आते, तो मैं समीप बैठी रहती थी चुपचाप। वहाँ बैठने में मुझे असीम शान्ति मिलती थी, अगाध आनन्द मिलता था। वहाँ से हटने की इच्छा नहीं होती थी। उनकी हँसी इतनी निर्मल, इतनी उन्मुक्त थी कि मैं समझती हूँ कि उस हँसी को सुनकर सबका हृदय जरूर आनन्द से ओत-प्रोत हो जाता होगा। ऐसे आनन्द स्वरूप प्रभु ही तो होते हैं।

मेरे जीवन में घटित कतिपय घटनाएँ

मेरे पतिदेव को इच्छा हुई कि मेरे को भी कोई महात्मा माला देते, जैसे पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा जी के गले में श्री आनन्दमयी माँ की दी हुई माला थी। यह इनकी इच्छा हुई और कुछ दिनों पश्चात् ही श्री स्वामी जी पटना पधारे। मुलाकात होने पर अपने गले की माला उतार कर इन्हें पहना दी। तब से आज तक माला इनके पास है। जिस काम के लिए इन्होंने माला चाही थी, वे सभी इच्छायें इनकी पूरी हुईं।

मेरे डॉक्टर भाई का ऑपरेशन होने वाला था। बहुत ही घबराया हुआ था। डॉक्टर अपने कष्ट में ज्यादा ही घबरा जाते हैं। उल्टी-सीधी बातें करता था। हमसे कहा—पूज्य स्वामी जी से आशीर्वाद माँग लो मेरे लिए। संयोग ऐसा रहा कि मैं न चिट्ठी लिख सकी और न फोन ही कर सकी। ऑपरेशन के एक रात पहले मैं फोन लगाकर 9 बजे तक बैठी रही, दुखी, घबरायी रही। बातें नहीं हो सकीं। सुबह भाई के पूछने पर कह दिया—बातें हो

गई। पूज्य स्वामी जी मेरे बाबा बोले हैं—सब ठीक रहेगा। डॉक्टर से कहो—चिन्ता न करें। भाई सन्तुष्ट होकर आपरेशन कराने गया। ऑपरेशन एकदम ठीक हो गया।

श्री श्याम सुन्दर जी हम लोगों के धर्म भाई हैं, जीवनदानी हैं। उनसे पूज्य स्वामी जी की मुलाकात भाई के आपरेशन के कुछ दिनों बाद हुई। पूज्य स्वामी जी ने भाई का समाचार पूछा। और कहा ''फलाने तारीख को कोई हमें बहुत याद कर रहा था, मैंने प्रार्थना कर दिया। ऐसे समय में गहरी याद ही काफी है।'' श्री श्याम सुन्दर जी पुराने भक्तों में से हैं। उनको ही स्वामी जी ने यह सब बतलाया। कभी-कभी सन्त लोग अपने प्रियजनों पर प्रगट भी कर दिया करते होंगे। **उनकी लीला वे ही लोग जानें।**

पूज्य स्वामी जी भ्रम और शंका तो दूर करते ही थे, साथ ही सही लालसा की पूर्ति भी करते थे। एक बार मुझे शबरी की नवधा—भक्ति सुनने की लालसा जगी। मैं श्याम सुन्दर जी के कहने पर किसी साधु से सुनने गई थी। नाम याद नहीं है। वे नेचरोपैथी पर बोलते थे रामायण का सहारा लेकर। श्याम सुन्दर जी ने कहा कि नहीं-नहीं, आज शबरी पर बोलेंगे। जाने पर निराश होना पड़ा। फिर जब पूज्य स्वामी जी पटना पधारे, तो अपने प्रथम प्रवचन में ही शबरी की नवधा भक्ति की कथा कही। सुनकर हृदय गदगद् हो गया, लगा स्वामी जी (मेरे बाबा) सब जानते हैं। मेरे लिए ही पूज्य स्वामी जी (मेरे बाबा) ने कृपा करके शबरी की नवधाभक्ति सुनाया, बिना कहे, बिना पूछे। दूर रहने पर भी सही लालसा की पूर्ति करते थे। कभी प्रगट नहीं करते थे अपने को, जैसे कुछ जानते नहीं। न शिष्यों को प्रभावित करना चाहते थे, न गुरुडम का भार ही देना चाहते थे।

ऐसी कृपा करने वाला स्वयं प्रभु ही तो है

मेरे पति मरण प्रायः हो गए थे जिसका इलाज विदेश में ही सम्भव था। हम लोग इलाज के लिए यू.के. गए। खर्च ज्यादा पड़ता था इलाज का। यह भी जरूरी नहीं कि वहाँ से भी आदमी स्वस्थ होकर ही

लौटे। लीवर ट्रान्सप्लान्ट की बात थी। ट्रान्सप्लान्ट अपने शरीर से रिजेक्ट भी हो जाता है, याने दूसरे का लीवर कभी-कभी अपना शरीर स्वीकार नहीं करता है। दूसरी बात, यू.के. अमेरिका से सस्ता तो है, परन्तु वहाँ रुपया खर्च करके लीवर मिलना मुश्किल है। क्योंकि वहाँ के कानून में पहले वहाँ के देशवासी का कार्य होता है। वहाँ के देशवासी का इलाज मुफ्त होता है। इस बीच हम भारतीय रोगियों की हालत बद से बदत्तर होती जाती है। बहुत से तो बिना आपरेशन कराए ही गुजर जाते हैं।

यह सब पता था। रुपया यू.के. लायक था। वह भी उतना ही जितना एक बार इलाज हो सके। हमने पति देव जी को पूज्य स्वामी जी (मेरे प्यारे बाबा) और पूज्य देवकी माता जी के चरणों में रख दिया। इस बार मुझे पूज्य देवकी माता जी के चरणों में रखने का ज्यादा मन हुआ, परन्तु पैरवी पूज्य बाबा से करवाई और कहा उन दोनों से कि जब आप ठीक करें, तभी विदेश ले जाएँ—लीवर मिलावें, अन्यथा ऑपरेशन होकर रिजैक्ट हो, तो और रुपया नहीं है, जो दोबारा ऑपरेशन कराया जाए। जो भी है वह भी खत्म हो जाएगा। नहीं अच्छा करना हो, तो नहीं ले जाएँ। यह सब पहले ही मैंने पूज्य स्वामी जी अपने बाबा और पूज्य देवकी माता जी से कह दी थी—मन ही मन में।

हम लोग लन्दन गए। 21 दिनों में ही लीवर मिल गया। जब तक इनका आपरेशन हुआ, इनके मैचिंग ग्रुप का एक भी वहाँ का देशवासी इलाज के लिए नहीं आया। आपरेशन सफल हुआ। यह घटना 1993 की है। अब सोचिए, पूज्य स्वामी जी की शिष्या पूज्या देवकी माता जी की यह महिमा है, तो पूज्य स्वामी जी की कितनी महिमा होगी? अब आप ही बताएँ, **ऐसी कृपा करने वाला स्वयं प्रभु ही तो है।**

मेरे प्यारे बाबा का जीवन बोलता था

मैं जितने दिन वृन्दावन में रही, कितना ख्याल रखा, जैसे माता-पिता पुत्री का ख्याल रखते हैं। **पूज्य स्वामी जी का प्यार सबके लिए समान था। लगता था उनके पास प्रेम की अजस्त्र धारा है। वे प्रेम और ज्ञान की खान हैं, समुद्र हैं।** कितना भी ले लो, कम होने वाला नहीं। देखती थी—किसी साधक को या जो उनके पास है, जरा भी कष्ट हुआ, तो उसका वैसा ही ख्याल रखते थे, जैसे कोई अपने शरीर का रखता है। सबको निजस्वरूप जानते थे। पूज्य स्वामीजी (मेरे प्यारे बाबा) का जीवन बोलता था। कहनी, करनी, रहनी, सब एक था। **मानव जीवन को देवत्व से भी ऊँचा बतलाया।** मानव प्रभु-प्रेम प्राप्त कर सकता है, प्रभु से अभिन्न हो सकता है।

पूज्य स्वामी जी की वाणी में योग-बोध-प्रेम की प्राप्ति के लिए कुछ करना नहीं है। विश्राम से ही योग-बोध-प्रेम मिलता है। विश्राम से चित्त शुद्ध होता है। चित्तशुद्ध व्यक्ति ही कर्त्तव्यनिष्ठ, निर्विकार, निर्विकल्प, निर्मम, निष्काम होकर योग-बोध-प्रेम क्रमशः पाता है। इसलिए थोड़ी-थोड़ी देर में कुछ मिनट के लिए ही विश्राम में जाने की सलाह दी गई है। पूज्य स्वामी जी का कहना है —विवेक का प्रकाश मानव मात्र को मिला है। **निज विवेक के प्रकाश में अपना कर्त्तव्य पूरा करने पर अचाह आदि गुणों की शक्ति स्वतः आती है,तत्पश्चात् साधक अकिंचन व अचाह होकर प्रभु से नित्य विहार करता है। पूज्य स्वामी जी ने चार महामंत्र बतलाए हैं—**

"मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए,
प्यारे प्रभु अपने हैं, अपने में हैं, सब कुछ प्रभु का है।"

पूज्य स्वामी जी के ये मंत्र जीवन में उतर जांए—यही उनसे प्रार्थना है। हमारी अपनी कुछ करनी है नहीं। उनकी कृपा की प्रतीक्षा सतत बनी रहती है, बनी रहे, यही प्रार्थना है। पूज्य स्वामी जी का कहना है—शरणागत को कुछ भी करना शेष नहीं रहता, सिर्फ वह अपने को पूर्ण रूप से समर्पित कर दे। यह कथन साधकों को बल देने वाला है।

□□

('जीवन-दर्शन' से साभार)

(14)

तो शायद साधना का छोर ही नहीं मिलता

- दद्दा भगवतसिंह भदौरिया
चम्बल घाटी शांति समिति
बाह (आगरा)

(88 वर्षीय दद्दा श्री भगवतसिंह भदौरिया उन शेर पुरुषों में से एक हैं जो चम्बल घाटी के खूंखार डाकुओं के आत्म समर्पण के निमित्त बने थे। आपका मूल निवास स्थान उदी (इटावा) है, जहाँ स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज की तपस्थली उदी गुफा स्थित है। इसीलिए दद्दा को स्वामीजी महाराज के निकट संपर्क में रहने का सुअवसर मिला। आज तो स्वामी जी का स्मरण होते ही दद्दा के अश्रुपात होने लगता है। आपने प्रकाशनार्थ निम्न संस्मरण भेजा है।)

ईस्वी सन् 1962 की बात है। वृन्दावन में होली के अवसर पर मानव सेवा संघ का उत्सव होने की सूचना मिली तो हम चार व्यक्ति—महावीर भाई, इन्द्रसेन जैन, रामस्वरूप जैन व मैं—इटावा से साईकिलों पर वृन्दावन के लिए रवाना हो गये। मार्ग में मथुरा में श्रीराम शर्माजी के गायत्री परिवार से भी संपर्क किया। हम वृन्दावन पहुँच गए।

पहले साधक बनो

हम लोगों के मनों में सुधारक बनने का जुनून सवार था। स्वामीजी ने एक दिन हमें बुलाया फिर कहा—'**अच्छी तरह नोट कर लो, सुधारक बनने से पहले साधक बनो। साधक ही सही दिशा में सुधार के निमित्त बनते हैं।**' यह कहकर हमें साधक बनने के लिए दिशा निर्देश दिया।

पता नहीं जीवन कैसा होता?

स्वामीजी के इस उद्‌बोधन ने हम लोगों पर गहरा असर किया। सुधारक बनने का दंभ छोड़कर हमलोग अपने को संभालने में लग गए। **आज मुझे लग रहा है कि स्वामीजी का ऐसा आत्मीयतापूर्ण व्यवहार व मार्ग दर्शन नहीं मिलता तो शायद साधना का छोर ही नहीं मिलता।** मैं तो अनवरत साधना की गुत्थियों को सुलझाता हुआ इसी में रम गया हूँ। सोचता हूँ कि स्वामीजी के एक ही दिशा निर्देश ने सुधारक होने के दंभ और उससे उत्पन्न होने वाली महत्वाकांक्षाओं से हमें बचा लिया। अन्यथा पता नहीं— जीवन कैसा होता? हो सकता है आज के माहौल को देखकर जीना ही अच्छा नहीं लगता। स्वामीजी कहा करते थे कि—

जब करना होने में बदल जाता है तभी साधना पूर्ण होती है

□□

तप से शक्ति, त्याग से शांति, सेवा से पवित्रता स्वतः आ जाती है

◆

संग्रहित संपत्ति निर्धनों की धरोहर है
तथा प्राप्त बल निर्बलों की धरोहर है

◆

लोभयुक्त उदारता, मोहयुक्त क्षमा तथा क्रोधयुक्त त्याग निरर्थक है

◆

प्यारा दुःखी पूजा करने के योग्य है

(15)

शरणानंद सुर-तरु की छाया।
दुःख भय दूर, निकट जो आया॥

-रामाधार भाई
चंदा, जिला—औरंगाबाद(बिहार)
हाल निवास—श्रीधाम, वृंदावन

श्रद्धेय श्री अवधकिशोर भाई जी से ईस्वी सन् 1958 में स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज बाबत विस्तृत जानकारी मिली। तभीसे उनसे मिलने की उत्कट लालसा जागृत हो गई थी। मैं दसवीं कक्षा का छात्र था। 16 मई 1958 को घर में बिना बताए, श्री अवधकिशोर जी के साथ स्वामीजी से मिलने श्रीधाम वृंदावन के लिए रवाना हो गया। वहाँ पहुँचने पर जानकारी मिली कि महाराज जी तो ऋषिकेश हैं। 27 मई को ऋषिकेश पहुंचे तो जानकारी मिली कि महाराजजी पिछली रात इंदौर के लिए प्रस्थान कर गए हैं।

21 दिन की जेल सजा हुई

हमारे पास आर्थिक अभाव था अतः 28 मई को पैदल चलकर ऋषिकेश से 24 किलोमीटर दूर हरिद्वार पहुँचे। वहाँ से रेल द्वारा लखनऊ आए। 3 दिन तक 150 किलोमीटर पैदल चलकर लखनऊ से उन्नाव पहुँचे। उन्नाव से बिना टिकिट रेलगाड़ी में बैठे तो पकड़े गए। रेलवे कोर्ट द्वारा हमें 21 दिन की जेल सजा हुई।

जेल की सजा काटकर घर वापस आ गए। मन में महाराजजी के दर्शनों की लालसा बनी रही, जो 3 वर्ष पश्चात् 1961 में पूरी हुई। डालमियानगर

में श्री चन्द्रभान महायज्ञ हुआ था उसमें स्वामीजी का 3 दिन का सत्संग लाभ मिला। स्वामीजी को हमने पिछली घटना सुनाकर 21 दिन जेल की सजा काटने की बात सुनाई तो आपके श्री मुख से ये शब्द निकले—

भैय्या! आजाद वही होता जो कैद होता है

स्वामीजी महाराज से भेंट होने के पश्चात् पढ़ने की इच्छा बिल्कुल नहीं रही थी। यह बात मैंने स्वामीजी को बताई तो उन्होंने मैट्रिक परीक्षा पास कर लेने का परामर्श दिया। मैट्रिक पास करके आई.टी.आई. परीक्षा पास की तथा नौकरी करली। मैंने 15 वर्ष फौज में नौकरी की। संयोग से वर्ष 1966 में पटना में महाराज श्री की सन्निधि में हुए अखिल भारत सत्संग समारोह में भाग लेने का सौभाग्य मिला। महाराजजी का पटना से रांची जाने का कार्यक्रम था। उनकी आज्ञा लेकर मैं रांची पहुंच गया। वहाँ निर्माण निकेतन में महाराजजी के साथ मेरे भावी कार्यक्रम के विषय में विस्तार से चर्चा हुई।

तुम्हे जीवन अवश्य मिलेगा

वर्ष 1964 में 5 सितम्बर को मेरे बड़े भाई साहब का धामगमन हो गया। उनका—3 पुत्रियों व 1 पुत्र का कच्चा परिवार था। विधवा भावज थी अतः मैंने उस परिवार पर ध्यान केन्द्रित करने का निश्चय किया। मेरे मन की बात मैंने स्वामीजी को बताई। आपने मेरे दोनों हाथ थाम लिए व बोले—**तुमने सेवा की खातिर इतना कठोर व्रत लिया है। इस पर दृढ़ रहना। तुम्हें जीवन अवश्य मिलेगा।** मेरा रोम-रोम रोमांचित हो गया। कंठ-अवरुद्ध हो उठा था। मैं चुपचाप उनकी ओर निहारने लगा। महाराजजी ने देवकी दीदी से कहा—

लाली! रामाधार को अपना छोटा भाई मानना तथा इसे संभालना

निवृत्त तथा कृतकृत्य हूँ

मैंने शादी नहीं की। महाराज जी के आशीर्वाद व देवकी दीदी की अनुकंपा से मेरे बड़े भाई साहब के कच्चे परिवार के प्रति लिए व्रत को सानंद पूरा कर सका। आज मैं पूर्ण रूपेण निवृत्त तथा कृतकृत्य हूँ। इस समय मेरी उम्र 69 वर्ष की है। मेरी पेंशन मेरी विधवा भावज के काम आती है और मैं कृष्णप्रिया मुक्तेश्वरी जी की सन्निधि में वृंदावन वास कर रहा हूँ।

□□

और वह रस
मानव मात्र को प्राप्त हो सकता है

कल्पना करो
किसी को ऐसी प्यास लगी हो, जो कभी बुझे नहीं
और ऐसा जल मिल जाय जो कभी घटे नहीं
और ऐसा पेट हो जाय जो कभी भरे नहीं
तब आप क्या कहेंगे ?
तब आपको कहना पड़ेगा कि
प्रत्येक घूंट पर एक नया रस है
क्या नया रस है ?
कि प्यास बुझती नहीं, पेट भरता नहीं, जल घटता नहीं
यही वास्तव में अगाध रस है, अनंत रस है, नित्य रस है
और वह रस मानव मात्र को प्राप्त हो सकता है

(16)

मानवता के मसीहा

– शादीलाल वर्मा

मानवता को क्या हो गया?

पूज्यपाद स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज एक ऐसे क्रांतिकारी संत थे जिन्होंने सोई हुई मानवता को जगाने के लिये, जीवन को स्पर्श करने वाला सर्व-सम्मत एवं विवेक-सम्मत दर्शन मानव जाति को भेंट किया। भारत-पाक विभाजन के समय धर्म व सम्प्रदाय के नाम पर जो भीषण-नरसंहार हुआ था उससे आप घोर व्यथित हुए। आपके भीतर से निम्न उद्‌गार निकले—

मानव जाति को क्या हो गया?

धर्म के मानने वाले पतित हो गए
ज्ञान को मानने वाले पागल हो गए,
तथा भगवान को मानने वाले अनेक आसक्तियों में आबद्ध हो गए

सर्व ग्राह्य दर्शन का प्राकट्य

संत की घोर व्यथा में से एक सर्व ग्राह्य दर्शन का प्राकट्य हुआ। इस दर्शन के अनुसार मानव जाति की यह भूल मिट जानी चाहिए कि इस संपूर्ण सृष्टि पर मानव का भी अपना कोई अधिकार है। अधिकार-लिप्सा ने ही तो मानव को अनेक संघर्षों में आबद्ध करके उसकी शांति का अपहरण किया है। आपने कहा कि—

मानव पर जगत् का भी अधिकार है
और जगत्पति का भी अधिकार है, परंतु
मानव का किसी पर कोई अधिकार नहीं है

मानव की माँग दुःख रहित सुख की, मृत्युरहित जीवन की तथा वियोगरहित सखा की है। जगत् ये तीनों ही मांग पूरी नहीं कर सकता। प्रभु ये तीनों चीजें बिना ही मांगे देते हैं।

इसके विपरीत जगत् तथा जगत्पति का हम पर पूरा-पूरा अधिकार है। यथा—

जगत् हमें बुराई रहित देखना चाहता है, उदार देखना चाहता है तथा जगत्पति (भगवान्) हमें प्रेमी देखना चाहते हैं। बुराई रहित व उदार होकर हम जगत् के तथा प्रेमी होकर जगत्पति (भगवान्) के अधिकार की रक्षा कर सकते हैं। यह है मानव व मानवता का सुन्दर चित्र।

मानव जीवन का लक्ष्य

संत ने फरमाया है—मानव प्रभु की ऐसी सर्व-श्रेष्ठ रचना है कि वह सभी के काम आकर सभी का प्यारा हो सकता है तथा अपने से भिन्न की आवश्यकता से रहित होकर स्वाधीनतापूर्वक अपना कल्याण कर सकता है। अपना कल्याण तथा सुन्दर समाज का निर्माण ही मानव जीवन का लक्ष्य है।

मानवता के मसीहा—स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज ने ऐसा अनूठा दर्शन देकर आगे आनेवाली पीढ़ियों का अनंत-अनंत काल तक के लिए मार्ग दर्शन किया है।

676, दयालपुरा गेट
करनाल (हरियाणा)

सत्संग स्वधर्म है, शरीर धर्म नहीं

(17)

मानव सेवा संघ दर्शन के प्रणेता विलक्षण संत स्वामी श्री शरणानंद

– डॉ. बालकृष्ण कौशिक

सभी शास्त्रों का अंतिम तात्पर्य

स्वामी श्री रामसुखदास जी महाराज का कहना है कि—

''शंकराचार्य, रामानुजाचार्य आदि जितने आचार्य हुए हैं, उन सबसे तथा छहों दर्शनों से तेज स्वामी शरणानंदजी का दर्शन है। उनकी बातें सम्पूर्ण शास्त्रों का अन्तिम तात्पर्य है। अब तक वेदांत का जितना विवेचन हो चुका है, उससे आगे शरणानंदजी की वाणी है।''

वास्तव में स्वामी जी महाराज पूर्णतया अहंशून्य थे। क्रिया और पदार्थ के आश्रय का आपको पूर्ण त्याग था और आपने पूर्ण रूपसे शरणागति प्राप्त की थी। शरणापन्न होने के कारण आपमें आनंदमय, चिन्मय, रसरूप, अविनाशी जीवन का प्रादुर्भाव हुआ। उसीका मूर्त रूप है—मानव सेवा संघ। आप द्वारा प्रदत्त दर्शन आज के युग में विलक्षण ही माना जायेगा, इसमें कोई संदेह नहीं है।

मुक्ति, भक्ति तथा विश्व शांति की स्थापना

स्वामीजी ने मानव स्वभाव की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करके मा·ाव दर्शन की प्रस्तुति की है। आपकी शोध है कि—जीवन में करने वाली उपयोगी बातें व्यक्ति की व्यक्तिगत भिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न होती हैं,

परंतु न करने वाली बातों को न करना सभीके लिए समान रूपसे अनिवार्य है। जैसे—निज विवेका का अनादर न करना, विश्वास में विकल्प न करना और प्राप्त बल का दुरूपयोग न करना आदि। विवेक के अनादर न करने से मुक्ति और विश्वास में विकल्प न करने से भक्ति की अभिव्यक्ति होती है तथा बल का दुरुपयोग न करने से विश्व में शांति की स्थापना होती है।

मानवता मानव में बीज रूप से विद्यमान

मानव सेवा संघ के दर्शन में सेवा, त्याग और प्रेम के द्वारा सोई हुई मानवता को जगाने की बात है। मिली हुई सामर्थ्य के सदुपयोग से मानव जाति की सेवा करना है। कर्तापन के अभिमान तथा भलाई के फल से मुक्त होकर स्वाधीन होना है। स्वाधीनता में ही अमर जीवन तथा अखण्ड आनन्द है जो अपने लिए उपयोगी है। आस्था, श्रद्धा, विश्वासपूर्वक भगवान् से आत्मीय सम्बन्ध की स्वीकृति से साधक के हृदय में प्रभुप्रेम की अभिव्यक्ति होती है। प्रेम से जीवन भगवान् के लिए उपयोगी होता है। जो जीवन सबके लिए उपयोगी हो जाता है, वही पूर्ण विकसित जीवन है। अतः परम उदारता, पूर्ण स्वाधीनता एवं नित-नवप्रेम के विकास में मानवता की पूर्णता है। स्वामी शरणानन्द जी का कहना है कि मानवता मानव मात्र में बीज रूप में विद्यमान है। मानव हृदय में विद्यमान मानवता को जागृत करना ही हमारा मूल उद्देश्य है।

इस प्रकार मानव सेवा संघ के प्रणेता स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज को आज के युग में एक विलक्षण संत कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

◆◆

मंत्री

करनाल मानव सेवा संघ

करनाल (हरियाणा)

(18)

रे मन नेहचो रक्खव

(हे मेरे मन! तू भली भांति संजोए रख)

-स्वर्गीय ठाकुर केसरी सिंह बारहठ

(मुड़ियार ठिकाने के जागीरदार ठाकुर केसरी सिंह जी बारहठ स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के अनन्य भक्त थे। वे रूपावास (पाली : राजस्थान) बिराजते थे। आपने स्वामीजी महाराज के सम्मान में डिंगल भाषा में कवित्त लिखे हैं। उनमें से कुछ कवित्त बानगीस्वरूप प्रकाशित करने हेतु श्री लादूसिंह जी राजपुरोहित, मझेवला (कड़ैल) वालों ने हमें भेजे हैं। उनके प्रति आभार प्रदर्शित करते हुए हम कवित्तों को निम्नानुसार प्रकाशित कर रहे हैं।)

(1)

जती व्रती तपसी हुसी पंडित घणा जहान।
पर दुःख कायल नँह लख्यो सरणानंद समान॥

संसार में अनेकों जती, व्रती, तपस्वी और वेद शास्त्रों के पारंगत पंडित, धनी, ज्ञानी महापुरुष होंगे किंतु पराये दुःख का कायल, स्वामी श्री शरणानंदजी के समान दूसरा हमने किसी को नहीं देखा।

(2)

सरणानंद में अति सहज अभिनव अनल अनूप।
मानवता रो मैं लख्यो मूर्तिवंत सरूप॥

स्वामी शरणानंदजी में मैंने साक्षात मूर्तिमान स्वरूप का दर्शन किया। मानवता का वह स्वरूप अत्यन्त ही सहज होने के साथ-साथ एक अभिनव दर्शन से युक्त अग्निसम तेजोदीप्त एवं सर्वथा अनुपम था।

(3)

सहज मिल्यो इण भव अहो सदगुरु सरणानंद।
जोग बोध जुत प्रीत रो सांप्रत भर्‌यो समंन्द॥

अहो मैं कैसा भाग्यशाली हूं कि मुझे इसी जन्म में सहज ही अर्थात् बिना प्रयास किये ही स्वामी शरणानंद जी जैसा सदगुरु प्राप्त हो गया जो कि योग एवं बोध से युक्त प्रेम का तो प्रत्यक्ष परिपूर्ण समुद्र ही था।

(4)

भ्रम बस हिये विवेकरो हीरो रहयो हिराय।
पड़ता फाड़ प्रमाद बाबै दियो बताय॥

भ्रम के प्रभाववश मेरे हृदय में विवेक रूपी हीरा एक प्रकार से गुम सा हो रहा था जिसे आच्छन्न करने वाले प्रमाद के पड़दों को फाड़कर बाबा ने मुझे पुनः प्रत्यक्ष बता दिया।

(5)

सिर ऊपर दूजा सकल, संत जिके जगबंद।
उर पोयण हिक सोहणो, सदगुरु सरणानंद॥

संसार में वंदनीय जितने भी सन्तजन हैं, उन सभी का स्थान मेरे मस्तक के ऊपर है अर्थात वे सभी मेरे लिये वंदनीय हैं। किंतु मेरे हृदय कमलासन पर सुशोभित होनेवाले तो एक मात्र सद्‌गुरु स्वामी शरणानंदजी ही है।

(6)

नैन धन्य मन जिनलख्यो शंकर रूप रसाल।
धन्य शीश चरणाँ झुक्यो अहरा परस्यो भाल॥

मेरे ये चक्षु धन्य हैं जिन्होंने बाबा के उस कल्याणकारी प्रेम रस भरे शिव रूप का प्रत्यक्ष दर्शन किया और धन्य है मेरा मस्तक भी कि जो उनके चरणों में अनेक बार झुका और मेरा ललाट भी जिसे उनके अधरों का स्पर्श प्राप्त हुआ।

(7)

श्रवण बाणी सांभली सुधा झरत श्री कंठ।
बार अनेकन जिन पियो, इमरत वो आकंठ॥

मेरे कानों ने उनके कंठ से निःसृत सुधा झरती मधुवाणी को सुना है, वे मेरे कान धन्य हैं जिन्होंने एक बार नहीं अनेक ही बार उस अमृत रस का आकण्ठ पान किया है।

(8)

साहिल बैठ समन्दरे परस्यो परमानन्द।
अवगाह्यो ऊँड़ो नहीं मैं मूरख मतिमन्द॥

मैंने समुद्र के बिल्कुल किनारे बैठकर उसमें लबालब भरे हुए परमानन्द का यद्किंचित् स्पर्श तो किया किंतु कैसा मूर्ख मतिमन्द हूँ कि उसमें गहरा पैठ कर सर्वांग अवगाहन नहीं किया।

(9)

सीस धर्यां कर कञ्ज जे, प्रीत पग्यां परतक्ख।
सो अेहला नहीं जांवणां, रे मन नेहचो रक्ख॥

फिर भी निराश होने की कोई बात नहीं है क्योंकि अनेक बार बड़े ही प्रेम में पगे हुए बाबा ने अपने कर कमल मेरे मस्तक पर रख कर अपनी कृपा को प्रत्यक्ष दर्शाया था।

उनका वह वरद हस्त मेरे मस्तक पर रखना कदापि व्यर्थ जाने वाला नहीं है। हे मेरे मन इस अटल विश्वास जनित धैर्य को तू अपने हृदय में भली भाँति संजोये रख।

□□

ग्राम - रुपावास
(पाली-मारवाड़)

प्रेम ही परमात्मा है

राग की भूमि में ही समस्त दोष उत्पन्न होते हैं

II
संस्मरण

आत्मीयता वही कर सकता है
जो भोग और मोक्ष को
फुटबाल बनाकर ठुकरा दे

(1)

यह पक्का संत है

—दुर्गाप्रसाद राजगढिया

सन् 1953-54 में मैं श्री वृन्दावन गया था एवं श्री भगवान् भजनाश्रम में अपने मित्रों के पास ठहरा था। वहां मुझसे मिलने मेरे मित्र कलकत्ता के श्री बनवारी लालजी चौधरी आए। उन्होंने बताया कि जहाँ वे ठहरे हुए थे उस मकान में उस दिन, दिन में साढ़े तीन बजे, स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज का सत्संग होने वाला है। तब तक मैंने आपका नाम भी नहीं सुना था। मेरे एक दूसरे साथी प्रहलादरायजी खेतान बोले कि स्वामी श्री शरणानन्दजी महाराज तो बहुत उच्च कोटि के संत हैं। अतः उनका सत्संग सुनने अवश्य चलेंगे। हम लोग दिन में 3 बजे वहाँ पहुँच गये।

ठीक समय पर सत्संग आरम्भ हुआ। स्वामीजी महाराज पहले प्रश्नोत्तर करते थे। खूब प्रश्नोत्तर हुए।

प्रश्न : महाराज! मेरी नैय्या पार लगा दीजिए।

उत्तर : भैय्या! जिसकी नैय्या है उसके भरोसे छोड़ दो। नैय्या भी पार हो जायगी और तुम्हें भी पार ले जाएगी। और दोस्त पकड़े रहोगे तो नाव तो डूबेगी ही, तुम्हें भी ले डूबेगी।

प्रश्न : महाराज! भगवान का नाम कितनी बार लेने से मनुष्य का उद्धार हो सकता है?

उत्तर : पूर्ण विश्वास हो तो एक बार।

प्रश्न : जीवन में एक बार?

उत्तर : हाँ जीवन में एक बार।

प्रश्न : यदि पूर्ण विश्वास न हो तो?

उत्तर : तब निरंतर।

प्रश्न : सोते समय भी?

उत्तर : अरे यार! जागते में तो लो – सोने के समय की जिम्मेदारी मेरे पर छोड़ दो। यह बोलकर ठहाका लगाकर हंसे। मैंने अपने आपको कहा – **यह पक्का संत ह**। इनके पास बीच की बात ही नहीं है। या तो इस पार या उस पार। या तो नाम निरंतर लो या एक बार लेकर निश्चिंत हो जाओ।

मैं पुरुलिया आ गया। **मेरे मन में यह निश्चय हो गया कि यही संत मुझे जीवन की राह दिखा सकते हैं, एवं मंजिल तक पहुँचा सकते हैं।** पन्द्रह वर्षों का समय बीत गया किन्तु स्वामीजी महाराज से फिर मिलना नहीं हो सका किन्तु उनकी याद बराबर बनी रही। अचानक 1968 में पुरुलिया के कुछ मित्रों ने पूज्य स्वामीजी महाराज को पुरुलिया पधारने का निमंत्रण भेजा। महाराज जी ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया। जनवरी 1969 में पुरुलिया पधारे। साथ में आदरणीया बहिन अर्पिता जी, जो उस समय अर्पिता नहीं हुई थीं, भी थीं।

यहाँ पुरुलिया में स्वामीजी सात दिनों तक ठहरे। मैं उनकी हर सभा में उपस्थित रहता। तथा प्रश्न करता।

प्रश्न : परमात्मा कैसे मिलें?

उत्तर : देह, गेह से नाता तोड़ दो, परमात्मा मिल जाएंगे।

प्रश्न : संसार का स्वरूप क्या है?

उत्तर : जिसके पीछे दौड़ते रहो और हाथ न आवे, वह है संसार।

प्रश्न : इच्छाओं का स्वरूप क्या है?

उत्तर : जो कभी पूरी न हों।

प्रश्न : कुछ अपना अनुभव बताइये।

उत्तर : बिलकुल अनुभव सिद्ध सत्य है।

एक दिन मेरे मन में विचार आया कि मनुष्य पर दुःख क्यों आता है। उसी दिन स्वामीजी ने मेरे बिना ही प्रश्न किए कहा कि दुःख-सुख किसी कार्य का परिणाम नहीं है। मानव के हित के लिए जब दुःखद परिस्थिति आवश्यक होती है, तब दुःख आता है एवं जब सुखद परिस्थिति आवश्यक होती है तब सुखद परिस्थिति आती है। सुख-दुःख तो साधन सामग्री है। उसका सदुपयोग करना है।

सुनकर बहुत आश्वासन मिला। मेरा अंतःकरण इन संत के प्रति सदा-सदा के लिए जुड़ गया।

□□

पुरुलिया, पश्चिम बंगाल

सत्य जीवन की जितनी रक्षा करता है
उतनी कोई और नहीं

◆

सबल व निर्बल की एकता ही
समाज का सुन्दर चित्र है

◆

पर दोष दर्शन के समान
अन्य कोई दोष नहीं

(2)
पहली व अंतिम बातचीत

–डॉ. भीकमचन्द प्रजापति

लगभग पन्द्रह वर्ष की आयु में मैंने सुना एवम् पढ़ा – श्रीमद्भागवत में भगवान कहते हैं — 'मैं अपने भक्तों के पीछे पीछे इसलिये घूमा करता हूं कि उनकी चरण रज अपने शरीर पर लगा कर अपने को पवित्र बना लूँ।' मन में आया – भक्त भगवान से भी महान होता है। मैं भक्त कैसे बनूं? अनेक संतों एवम् साधकों से मैंने इस प्रश्न को पूछा, लेकिन सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला। 13 वर्ष बीत गये। इस प्रश्न का उत्तर पूछने के लिये मैं जून १९७३ में श्रद्धेय स्वामीजी श्री रामसुखदासजी महाराज के पास गीताभवन स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) गया। सायं पांच बजे गीताभवन पहुँचा। पता चला कि श्रीस्वामीजी महाराज के आज के प्रवचन कार्यक्रम पूरे हो गये, कल ही बात होगी।

महाराज! मैं भगवान् का भक्त बनना चाहता हूँ

रात्रि में आठ बजे गीताभवन नम्बर एक की लॉन में एक संत के प्रवचन का कार्यक्रम था। संत पधारे और आसन पर विराजते ही बोले — किसी भी भाई, बहन को कोई साधन सम्बन्धी प्रश्न पूछना हो तो पूछे। बात दोहराई। मेरे मन में आया – पूज्य स्वामीजी महाराज से कल बात होगी। क्यों न अभी इनसे ही पूछ लूँ। बिना जाने कि यह संत कौन हैं, मैं सभा में खड़ा हो गया और पूछा– महाराज! मैं भगवान का भक्त बनना चाहता हूँ, इसका ठोस उपाय बताने की कृपा करें। केवल पांच शब्दों में उन्होंने उत्तर दिया — 'जानी हुई बुराई को छोड़ दो।' और चुप हो गये।

उनका उत्तर मुझे पसन्द नहीं आया। मैंने सोचा — इन्होंने जप, तप, पूजा, पाठ, भजन, कीर्तन आदि की बात क्यों नहीं कही? क्या इनके बिना मैं भक्त बन सकता हूं? मैंने दुबारा पूछा — महाराज! नम्बर दो पर क्या करें? उनका उत्तर था- 'सबके प्रति सद्भाव रखो। निकटवर्ती जनसमाज को यथाशक्ति क्रियात्मक सहयोग दो।' मैं आश्चर्यचकित था। पूजा, पाठ आदि साधना क्यों नहीं बता रहे हैं? मैंने पुनः पूछा - इसके बाद क्या करें? संत ने उत्तर दिया -''सद्भाव व सहयोग के बदले कुछ मत चाहो, न अभी चाहो न कभी चाहो, न भोग चाहो न मोक्ष चाहो, न जगत् से चाहो न जगत्पति भगवान् से चाहो।''

सभा में सन्नाटा छा गया

मेरा इच्छित उत्तर न मिलने के कारण भीतर-भीतर मेरे मन में हल्का क्रोध पैदा हो गया। मैं चौथी बार खड़ा हुआ और उनसे कहा - ''महाराज! यह मेरा अंतिम प्रश्न होगा।'' वे तपाक से बोले - ''बेटा! हमारा भी अंतिम उत्तर होगा।'' क्या पूछना है? मैंने कहा -'बस! यह बता दीजिये कि नम्बर चार पर क्या करें?' उनका उत्तर था - 'पहले ये तीन करके देख लो, चौथा अपने आप मालूम हो जायेगा।' मैंने पूछा — कैसे मालूम हो जाएगा? वे कड़क कर बोले - तुम कौन सी क्लास में पढ़ते हो? मैं तेज आवाज में बड़े अभिमान से बोला -'महाराज! मेरी पढ़ाई १९६५ में पूरी हो गई, मैं पढ़ता नहीं हूँ, मैं युनिवर्सिटी और कॉलेज में पढ़ाता हूँ।' वे बोले - 'गधे कहीं के, तुम क्या पढ़ाते हो? मैं चुप हो गया। सभा में सन्नाटा छा गया।

मेरे मन में दुःख व क्रोध था

दो मिनिट बाद संत बोले -'बेटा! तुम पढ़े लिखे हो सोचो।' अंधेरा है, तुम्हें दस मील जाना है, तुम्हें एक टॉर्च देदें तो टॉर्च की

रोशन जहां तक जाती है, वहां तक तुम चले जाओगे तो आगे अपने आप रोशनी हो जायेगी या नहीं और इस प्रकार तुम दस मील की यात्रा कर लोगे या नहीं। हमने तुम्हे टॉर्च दे दी, चलना शुरू करो, मंजिल तक पहुंच जाओगे। कहां के रहने वाले हो? मैंने उत्तर दिया - 'राजस्थान में जोधपुर के पास एक गाँव का।' वे बोले - 'इतनी मेहनत क्यों करवाते हो भैया कि गीता भवन से तुम्हारे गांव तक बिजली के खंभे लगवायें, तार खिंचवायें, बल्ब लगवायें और कहें - अब जाओ। तुम भक्त बन जाओगे।' मैं निरुत्तर हो गया। इतनी बड़ी सभा में उन्होंने मुझे गधा कह दिया, इस कारण मेरे मन में दुख व क्रोध था।

तो मुझे गोली मार देना—फांसी लगा देना

संत आगे बोले - इस लड़के ने हमसे प्रश्न पूछे, भगवत प्रेरणा से हमने उत्तर दे दिये, लेकिन हमारे उत्तर इसको पसन्द नहीं आये। ओ लड़के! सावधान हो कर सुनले और आप लोग भी सुनलो - **यदि इस संसार का कोई भी भाई, कोई भी बहन किसी भी उपाय से उस बुराई का त्याग कर दे जिसे वह बुराई जानता है तो इस दुनियां की ऐसी कोई भी चीज नहीं जो उसे न मिल जाए और जिसे आस्तिक लोग अपनी भाषा में भगवान् कहते हैं, वे भगवान् उसके चरणों में लौटने के लिये लालायित न हो जाएं तो मुझे गोली मार देना, फांसी लगा देना, गोली मार देना, फांसी लगा देना।**

उनकी कड़वी भाषा के पीछे संत हृदय की महान् करुणा थी

इस वाणी को सुन कर मेरे मन में उनके प्रति श्रद्धा हुई। मन

में आया - इतनी ठोस व चुनौतीपूर्ण बात बताने वाले कोई सामान्य संत नहीं, उच्च कोटि के परम भक्त होने चाहिए। मैंने उनके बारे में साधकों से पूछा। उन्होंने बताया - इनका नाम है - स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज। संत के साथ वह मेरी पहली व अंतिम बातचीत थी। आज मुझे ऐसा लगता है कि उनकी कड़वी भाषा के पीछे संत हृदय की महान करुणा थी। वह भाषा मेरे लिये अमोघ आशीर्वाद व वरदान बन गई। **आज उस भाषा की स्मृति मात्र से आंखें भर जाती हैं, हृदय गद्‌गद् हो जाता है, रोम रोम आनंदित हो जाता है। उन महान संत के चरणों में कोटि - कोटि वंदन।**

□□

वर्तमान का सदुपयोग ही विकास का मूल है तथा
अपने सुधार में ही दूसरों का सुधार निहित है

◆

सेवा स्वार्थ भाव को गला कर
सेवक को विभु बनाती है

◆

प्रलोभन रहित भलाई ही
वास्तव में भलाई है

◆

वर्तमान सबका निर्दोष होता है
की हुई भूल न दोहराने से वर्तमान की
निर्दोषता सुरक्षित हो जाती है
जिससे भविष्य स्वतः उज्जवल हो जाता है

(३)

गंगा-जल से अभिषेक

–श्री वीतराग जी

गंगोत्री यात्रा को जाते हुए हम लोग उत्तरकाशी में काली कमली वालों की धर्मशाला में ठहरे हुए थे। अगले पड़ाव तक चलने की तैयारी हो चुकी थी। सामान खच्चरों पर लादा जा चुका था। श्री महाराज जी (पूज्य स्वामी श्री शरणानन्दजी) के सभी प्रेमी–भक्त वहाँ से आगे मनैरी चट्टी पर रुकने का आदेश लेकर चल पड़े। केवल मैं श्री महाराजजी के साथ रुक गया। वे बोले–"देखो! यहाँ से तीन मील पर 'असी घाट' है जैसा काशी में है, वहीं स्नान करेंगे।" मैं श्री महाराज जी के साथ चल पड़ा। दो–ढ़ाई मील के बाद उज्जैली आयी। उसके बाद मील का पत्थर — जो संकेत दे रहा था कि हम तीन मील चल आये हैं। मैं रुका। आस–पास दृष्टि डाली। गंगाजी यहाँ से खेतों के पार लगभग एक फर्लांग की दूरी पर होगी। श्री महाराज जी ने रास्ते को छोड़ सीधे खेतों के बीच से चलने का संकेत किया।

बड़ी कठिनाई से ऊबड़–खाबड़ खेतों को पार करके वहाँ पहुँचे। किन्तु वहाँ न घाट न घटिया। एकदम निर्जर ! सुनसान जगह!! पथरीले किनारे! ! ! पाषाणों से टकराती, शोर मचाती, गंगा का तेज प्रवाह। जल में पाँव रखने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। लेकिन श्रीमहाराज जी साथ थे, अत: साहस बटोर कर कपड़े उतारे, महाराज जी का डन्डा हाथ में लिया और उसीके सहारे–सहारे जल की गहराई का अन्दाज कर डुबकी लगाई। बाहर आकर श्री महाराज जी से ३–४ कदम की सीमा तक जल में जाकर स्नान करने की प्रार्थना की। डण्डे के मोटे सिरे को पकड़ कर श्री महाराज जी ने जल में प्रवेश किया और दूसरे सिरे से पकड़ कर एक पत्थर से पांव की आड़ लगा मैं बैठ गया।

श्री महाराज जी को नि:संकोच धारा के मध्य की ओर बढ़ते देख मुझे कुछ घबराहट सी हुई। अचानक मैंने देखा कि उन्होंने हाथ का डण्डा भी छोड़ दिया। मेरी चीख निकल गई! और मैं जोर से चिल्लाया, ''स्वामीजी बह गये, स्वामी जी बह गये।'' लेकिन वहाँ कोई हो तो सुने। मेरे हाथ-पाँव ठण्डे पड़ गये। अब क्या करूँ? इतने में मैंने क्या देखा कि श्री महाराज जी ने ड़गमगाते हुए, धार के बीच उभरी हुई एक चट्टान को पकड़ लिया है। दूसरे ही क्षण वे उछल कर उस पर बैठ गये।

मुझे कुछ सांत्वना मिली। किन्तु बीच में गङ्गाजी की धार तेज थी। चट्टान से टकरा-टकरा कर जल बड़े वेग से उछल रहा था। उसके वेग से महाराज जी किसी भी क्षण सन्तुलन खो सकते थे। इधर मैं इस उधेड़बुन में था कि किस प्रकार मदद वहाँ तक पहुँचाई जाय, उधर देखा गया कि महाराज जी हँस रहे हैं। कह रहे हैं - ''बस ड़र गया बस ड़र गया''। वह दृश्य भी देखने लायक था। **ऐसा लगता था जैसे गङ्गा जी अपने जल से भगवान शंकर का अभिषेक कर रही हों!**

बहुत सोच - विचार कर मैंने अपनी पाँच-गजी भीगी धोती का एक सिरा महाराज जी तक फेंका, किन्तु वह भी छोटा पड़ा। और कोई रास्ता न देख कर मैं किनारे पर बैठकर उन्हें आर्तस्वर से पुकाने लगा-''स्वामीजी! बाहर आजाइये स्वामीजी! बाहर आ जाइये।'' मेरे देखते-देखते उस भयावह प्रवाह में उन्होंने उछल कर शेर की तरह एक छलांग लगाई, और दोनों हाथों से जल को चीरते हुए ठीक उसी स्थान पर आ पहुँचे, जहाँ मैं खड़ा था।

मैं उन्हें पाकर भाव-विभोर हो गया। विश्वास नहीं हो पा रहा था कि श्री महाराज जी नेत्र-विहीन हैं।

□□

-श्री वीतरागजी

(जीवन-दर्शन अक्टूबर 1976 से साभार)

(4)
सिखाने का कैसा अनोखा ढंग!

–श्री अवधकिशोर मिश्र

1972 की जुलाई — शायद तीन तारीख। पूज्यपाद स्वामीजी निर्माण निकेतन आश्रम राँची में बिराजमान हैं। अमरूद के बाग में चतुर्दिक हरियाली है। हाल की वर्षा से जमीन तृप्त हो गई है। आश्रम के पास पहुँचते ही वर्षा ने स्वागत किया-संत-दर्शन की अभिलाषा थी जो। भीग गया। दिल भी गीला हो रहा था। परिचय पाते ही पूछा – 'दुनियाँ के काबिल नहीं हो सका तो क्या प्रभु-प्रेम का अधिकारी भी नहीं हूँ। यही न पूछा था तुमने अपने पत्र में?' 29 मई की लिखी हुई चिट्ठी की पंक्तियाँ उनके मुख से सुनकर मैं अवाक् रह गया। इतने कार्यरत और फिर भी इतनी छोटी सी बात की स्मृति!

''पुरते निकसी रघुवीर वधू'' मैं सुना रहा था। ''चौकी पर बैठो तो सुनूँगा।'' आदेश हुआ। मेरी हिचक को तोड़ते हुए कहा – ड़रो मत। पाप नहीं होगा। सर पर हाथ फेरते हुए ''आजकल क्या साधना चलती है?'' प्रत्येक साधक की व्यक्तिगत कमजोरियों को अच्छी तरह जानते थे वे। मैं सचमुच यही चाहता था कोई अपनी ओर से मुझे बताता। उनके स्फटिक हृदय पर मेरा भाव चित्रित हो रहा था मानो। ''मेरा कोई नहीं है। मुझे कुछ नहीं चाहिये। एकमात्र सर्व-समर्थ प्यारे प्रभु ही अपने है। जीवन में उतार लो।'' सर पर हाथ फेरते हुए बड़े प्रेम से कहा। रोकते-रोकते भी मैं फफक-फफक कर रोने लगा। कौन

सी ताकत थी इन शब्दों के पीछे? फिर बोले–''**इसीका नाम भजन है, बेटा, जब उसकी याद में आँसू बहने लगें। केवल माला लेकर बैठने का नाम भजन नहीं ह।**'' बिना पूछे फिर उन्होंने विशद रूप से जप की विधि बताई।

सबेरे के आठ बजे हैं। पूज्या दीदी, बुधिया जी आदि सत्सङ्ग भवन में बैठे हैं – प्रश्नोत्तर के लिए। ''जिसके प्रति मेरा पूज्य भाव है अगर कह दें – प्रभु से तुम्हारा संबंध है, तो मेरा विश्वास-प्रवण मन मान जाय।'' दीदी कुछ कह ही रही थीं कि पिताजी स्नान के बाद कमरे में घुसते ही बोल उठे – हाँ, लो! मैं कह देता हूँ। प्रभु से तुम्हारा जातीय संबंध है। एक भाई तौलिये से गीले बदन को पोंछ रहे थे। ललाट चमक रहा था। उनके मुक्त कंठ से निकले ये वाक्य – अनमोल रत्न मेरे जीवन के सामान्य ड्रामा में प्रसन्नता के विरल प्रसंग (Occasional episodes in the general drama of my life) हैं।

राँची शहर में प्रोग्राम था। साथ में बसन्त भाई चल रहे थे। ''आज मेरे साथ अवध किशोर चलेगा।'' बसन्त भाई ने भी अपनी इच्छा व्यक्त की। झिड़क दिया- ''सेवा का स्वांग करते हो। अपने संकल्पों की पूर्ति के लिये आते हो।'' स्वर की रुखाई और उनके वे बेतकल्लुफ शब्द आज भी गूँज रहे हैं। कुसुमादपि सुकुमार हृदय में वज्रादपि कठोर शब्दावली का प्रयोग अपने साधकों के हित के लिए नारिकेल समाकार ही था, जो अंत तक बरकरार रहा।

''कितने बच्चे हैं तुम्हारे, अवध किशोर?'' पूछा उन्होंने। ''साढ़े तीन'' उत्तर था। ''और बच्चे पैदा करना चाहते हो?''

''चाहता तो नहीं, पर कृत्रिम उपाय मुझे पसंद नहीं। वह तो

अस्वास्थ्यकर है।...''

''मेरा विचार है कि ब्रह्मचारी रहने के लिए पत्नी को और भी अधिक प्रेम देने की जरूरत है। पत्नी के साथ एक ही बेड़ पर सोकर ब्रह्मचारी रहो।.....'' और भी चर्चा बड़ी लंबी थी। इसके पीछे कौन सा तवज्जुह (शक्तिपात) था मैं कह नहीं सकता। चौहत्तर के अक्टूबर में भी जो मेरा आखिरी दर्शन था, ऐसी चर्चा चली। मेरी मूक प्रार्थना और मूक साहाय्य। इसका असर मैं अब भी अनुभव कर रहा हूँ। प्रभु ने चाहा तो इसकी चर्चा बाद में करूँगा। यही थी उनकी विधि, सिखाने की। कितनी मौन थी उनकी मदद!

''कितने पैसे मिलते हैं तुम्हें?'' प्यार से पूछा और यह प्रश्न अनेक बार पूछा। जब मैंने बताया तो कहा- ''पैसे तो बहुत कम मिलते हैं। पर संतोष रखो। तुम ब्राह्मण हो।'' **सिखाने का कैसा अनोखा ढंग!**

□□

('जीवन-दर्शन' से साभार)

प्रत्येक काम प्रभु की पूजा
प्रत्येक घटना प्रभु की लीला

◆

अभिमान ह्रास का मूल है

◆

बल के सदुपयोग से बल स्वतः बढ़ जाता है

(5)
दुनियां से बेगरज रहना

-मनीष मेहरोत्रा

वीतराग कर्मयोगी संत परमपूज्य रामदासजी महाराज रामचरितमानस का अध्ययन पूरा होने के पश्चात् मानव सेवा संघ के संस्थापक स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के संपर्क में आए व आपने उनसे रामकथा लोगों को सुनाने की आज्ञा मांगी। स्वामीजी महाराज ने उनके आग्रह को स्वीकार किया और कहा कि "तुम राम कथा अपनी राग निवृत्ति के लिए ही सुनाना। दुनियां से बेगरज रहना। तब जाकर तुम्हारी राम कथा में रस रहेगा। दुनियां के लोभ में पड़ जाओगे तो तुम्हारा राम कथा पहुंचाने का संकल्प पूर्ण नहीं होगा।"

कभी धनको हाथ नहीं लगाऊंगा

स्वामी जी महाराज की बात का संत पर इतना असर हुआ कि उसी समय संकल्प लिया कि कभी धन को हाथ नहीं लगाऊंगा, न कथा सुनाने का पारिश्रमिक लूंगा। **इस संकल्प से प्रकृति हर्षित हुई कि आपका कोई भी छोटा-बड़ा काम धन की कमी से रुका नहीं बल्कि स्वतः ही सम्पन्न हो जाता रहा।** राम कथा सुनाते-सुनाते आपने अपने गुरु महाराज परम योगी ब्रह्मलीन संत बाबा बद्रीदास (जंगली बाबा) द्वारा बताए गए स्थान–बाराबंकी के पास हड़ियांकोल के जंगलों में श्री राम वन कुटीर आश्रम की स्थापन की। वहाँ गरीब बच्चों की शिक्षा के लिए एक विद्यालय प्रारंभ किया। जन सहयोग से एक भव्य मंदिर बनाया व

गोशाला का निर्माण कराया। जिससे भयानक जंगल रमणीक स्थान में परिवर्तित हो गया।

निःशुल्क ऑपरेशन शिविर की नींव पड़ी

रामदासजी महाराज अपने बाल सखा **छोट**, जिन्हें लोग प्यार से छोटे स्वामीजी कहते हैं – के साथ उदयपुर प्रवास पर थे। वहाँ पर उन्हें छोटे स्वामी ने हडियांकोल आश्रम पर जनता जनार्दन की सेवा के निमित्त निःशुल्क ऑपरेशन शिविर आमंत्रित करने की चर्चा की। राम के दास को अपने प्रिय लक्ष्मण समान भाई का विचार अति उत्तम लगा। शुभ कार्य में देरी क्या? दूसरे ही दिन बड़े स्वामीजी ने भक्तों के माध्यम से उदयपुर मेडिकल कॉलेज के **डॉ. आर.के. अग्रवाल** व **डॉ. माथुर** के साथ चर्चा की। दोनों ही डॉक्टर सेवाभावी हैं अतः शिविर के लिए अपनी सहमति दे दी। बाराबंकी लौटने पर स्वामीजी ने शिविर की तैयारी शुरू कर दी। सेवारूपी इस महायज्ञ में भक्तों ने खुले रूप सहयोग देने का संकल्प महाराज श्री से व्यक्त किया। 1980 जनवरी माह में प्रथम शिविर इस जंगल में लगाया गया। आस-पास के ग्रामीणों ने इस शिविर में अपना रजिस्ट्रेशन कराया। 100 के लगभग सफल नेत्र आपरेशन हुए। इस प्रकार निःशुल्क ऑपरेशन शिविर की नींव तो पड़ ही गई। महाराजजी ने दरिद्रनारायण के रहने के लिए कमरों-शैडों का निर्माण भी शुरू कर दिया।

डॉक्टरों की टीम सेवा करने में सौभाग्य समझने लगी

अगले वर्षों में तो **डॉक्टर आर.के. अग्रवाल** के सद्प्रयासों से असाध्य समझे जाने वाले ऑपरेशन जैसे – हार्निया, हाइड्रोसिल, बवासीर के ऑपरेशन भी शिविरों में होने लगे। कार्य बढ़ा तो ईश्वर कृपा से डॉक्टरों की टीम भी यहां लगने वाले शिविरों में आने को सौभाग्य समझने लगी। यहाँ लगने वाले शिविरों की ख्याति देश के कोने-कोने में पहुंचने लगी।

लोगों के रजिस्ट्रेशन की संख्या तीव्र गति से बढ़ने लगी। मध्य प्रदेश के उच्च कोटि के नेत्र विशेषज्ञ डॉ.आई.पी. सिंह परमार जो कि रोहतक मेडिकल कॉलेज के नेत्र विशेषज्ञ थे, महाराज जी के संपर्क में आए तो आपने भी यहाँ के शिविरों में समय देने का संकल्प जाहिर किया। नेत्र ऑपरेशन की जिम्मेदारी हरियाणा के डॉक्टरों ने उठाली तो अन्य जटिल बीमारियों के ऑपरेशन का भार राजस्थान के डॉक्टरों ने उठा लिया। 100 की संख्या में शुरू ऑपरेशन हजारों की संख्या में पहुंच गये।

हम लोग अपनी ऊर्जा को चार्ज करने यहाँ आते हैं

यहाँ लगनेवाले शिविरों में आनेवाले सेवा भावी डॉक्टरों में से एक बार मैंने उनकी अनुभूति के बारे में पूछा तो वे बोले – इस वन में हम लोगों का जनरेटर लगा हुआ है। यहाँ पर हम लोग अपनी ऊर्जा को चार्ज करने आते हैं। यहाँ से जाकर हम अपने यहाँ के मरीजों की सेवा करते हैं व पुण्य के सहभागी बनते हैं।

□□

कटरा-204, बाराबंकी (यू.पी.)

कोई और नहीं, कोई गैर नहीं

◆

प्रभु की कृपा शक्ति का सहारा ही
महान् सहारा है

◆

क्षमाशीलता वैर भाव को खा लेती है

◆

कार्य उसी के सिद्ध होते हैं
जो जगत् का काम आता है

(6)
गज़ब है इन संत की अहंशून्यता

—कन्हैयालाल लोढ़ा

ईस्वी सन् 1955 में अजमेर की बात है। मानव सेवा संघ द्वारा प्रकाशित स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज की ''मूक सत्संग और नित्य योग'' पुस्तक बाबत मैंने उन्हीं से चर्चा की। मेरी बात सुनकर स्वामीजी चुप रहे। थोड़ी देर बाद गुनगुनाने लगे—

'मानव की मांग, दुःख का प्रभाव, सत्संग और साधन आदि आदि।' फिर बोले—''लोढ़ा! मूक सत्संग और नित्य योग तो मेरी अन्तिम पुस्तक है। यह पुस्तक तुमने अच्छी तरह पढ़ी नहीं। पढ़ली होती तो फिर तुमको मेरे पास आने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।'' यह कहकर वे मौन हो गये।

मैंने मन में सोचा—''इन संत की अहं शून्यता भी विलक्षण है। हमारे जैसा व्यक्ति यदि कोई छोटा-मोटा लेख या पुस्तक लिख दे तो हम उसके महत्व को प्रचारित करने के लिए कितने आतुर हो जाते है। इनके माध्यम से, मानव मात्र के लिए, जगत् में जैसे दर्शन व साहित्य का प्रादुर्भाव व प्रकाशन हुआ है वैसा आज तक किसी भी दार्शनिक व महापुरुष द्वारा नहीं हुआ और जो आने वाली पीढ़ियों का युगों-युगों तक पथ-प्रदर्शन करता रहेगा। उस प्रकाशन के विषय में स्मृत होने के लिए इन्हें इतना श्रमित होना पड़ा।''

गजब है इन संत की अहं शून्यता।

□□

(7)
की हुई भूल का परिणाम तो भोगना ही पड़ता है

—कन्हैयालाल लोढ़ा

ईस्वी सन् 1954 या 1955 की बात है। श्री लक्ष्मीलालजी जोशी राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड अजमेर के अध्यक्ष थे। स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज का अजमेर में उनके निवास स्थान पर प्रातः कालीन सत्संग था। इस सत्संग में लोक सेवा आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष प्रो. विष्णु नार्लिकर भी उपस्थित थे। सत्संग के पश्चात् मैंने स्वामीजी महाराज से प्रश्न किया—

''महाराज! गांधीजी कहते थे कि स्वस्थ मन वाले का शरीर स्वस्थ होता है। तब आपका शरीर अस्वस्थ क्यों है? इसी प्रकार गांधीजी के सेवा ग्राम आश्रम में श्री किशोरलाल मश्रूवाला प्रकांड विद्वान् व तत्वज्ञ थे। दीखने में स्वस्थ थे। परंतु कभी-कभी श्वास व खांखी के दौरे के कारण उनकी भी हालत इतनी गंभीर हो जाती थी कि सामने वाले को लगता था—अब तो ये गये, अब नहीं बचेंगे। इसी स्थिति में वे वर्षों जीये।''

स्वामी जी महाराज श्री मश्रूवाला से परिचित थे। बोले—लोढ़ा! वर्तमान में तो व्यक्ति स्वास्थ्य के नियमों का पालन करके अपने शरीर व मस्तिष्क को स्वस्थ रखने का प्रयत्न कर सकता है। परंतु प्रकृति की हुई भूल को कभी माफ नहीं करती। पूर्व में की हुई भूल का परिणाम तो भोगना ही पड़ता है।

स्वामीजी महाराज की बात मुझे पूरी तरह विवेकसम्मत लगी। अतः उनका उत्तर सुनकर मैं चुप हो गया। मुझे लगा—इन संत का जीवन मंगलमय विधान के पूर्ण अनुरूप है।

□□

संस्मरण

(8)

यादों के झरोखे से संतों के सान्निध्य में

—बंसीधर बिहानी

(I)

वक्ता श्रीकृष्ण। श्रोता श्रेष्ठ साधक अर्जुन। दोनों सखाओं का संवाद ही श्रीमद्भगवद्गीता रूप में प्रसिद्ध हुआ। तत्पश्चात् साधारण साधकों के लिए प्रभु वेदव्यास भगवान् रूपमें प्रकटे। गीता के सूत्रों का खुलासा किया। उसीमें से निकले 18 पुराण व महाभारत ग्रंथ। परंतु पढ़ना-समझना सबके बस की बात नहीं? तो प्रभु ने शरणानंद नाम के सखा को भेजा—जिनके माध्यम से गूढ़ दर्शन सरलतम व सरसतम भाषा में लिपिबद्ध हुआ।

व्यक्तित्व का नाश और भगवद् प्राप्ति

ईस्वी सन् 1974 में अपने महाप्रयाण के पूर्व स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज ने, स्वामी श्री रामसुखदासजी महाराज को देवकी माताजी के विषय में कहा कि—'मेरे जीवन के अनुभव मैं देवकी को देकर जा रहा हूँ। मनोविज्ञान इसकी अपनी निधि है।' रामसुखदासजी महाराज ने पूछा—'महाराज! भगवत् प्राप्ति हो गई, इसका क्या थर्मामीटर है?' स्वामीजी महाराज ने सूत्र रूपमें उत्तर दिया—'व्यक्तित्व का नाश।'

देवकी माताजी की कृपा

ईस्वी सन् 1977 में मैं देवकी माताजी को स्वामी रामसुखदासजी महाराज से मिलाने ले गया तो स्वामी जी ने देवकी जी को उपरोक्त प्रसंग की जानकारी दी। इसके पश्चात् तो मेरे ऊपर माताजी की कृपा बरसती ही गई। आपने मुझे अपनी सन्निधि में रखकर खूब स्नेह-दुलार प्रदान किया

तथा भौतिक, आध्यात्मिक व आस्तिक——तीनों मार्गों में प्रवेश कराया। स्वामीजी महाराज ने देवकीजी को गुरु शंकरानंदजी व अपनी स्वयं की कुछ अलौकिक बातें बताईं। वे बातें माताजी कभी-कभी, भावोद्रेक होने पर, मुझे भी बता देती रहीं। अपने स्वर्गीय पति की याद को प्रभु-स्मृति के रूपमें कैसे परिणत करा दिया तथा इस शरीर को भगवत्-चरणों में कैसे समर्पित कराया——यह सब बातें एकांत में बताती रहीं। आपने बताया कि साहित्य लिखाना आरंभ किया तो 'चित्तशुद्धि' नामक महाभारत सरीखा ग्रंथ रच गया। लिखते-लिखते पैन की श्याही बीत जाती तो हरिनाथजी महाराज तत्काल श्याही भरा दूसरा पैन पकड़ा देते——आदि। मैटर भी ऐसा लिखाया कि संशोधन की कभी जरूरत ही नहीं पड़ी।

शरणानंदजी महाराज की वाणी

स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज की वाणी के विषय में रामसुखदासजी महाराज ने फरमाया कि——

'हमें शरणानंदजी का साहित्य पढ़ने को मिल गया यह हम पर भगवान् की बड़ी कृपा है।'

आपने मुझे अनेक बार कहा कि——'शरणानंदजी महाराज का साहित्य घर-घर पहुंचे ऐसी मेरी तीव्र इच्छा है। गीता प्रेस वालों को उनकी कुछ पुस्तकें प्रकाशित करने का अधिकार मिल जावे तो यह साहित्य जल्दी से जल्दी जन-जन तक पहुंच सकता है।'

मैंने वृन्दावनवालों से इस विषय में प्रार्थना की, जिसे ठुकरा दिया गया। हम सब स्वामी जी महाराजकी इस चेष्टा में हाथ बंटावें, ऐसी मेरी प्रार्थना है।

(II)

अलौकिक संत-वाणी

स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज की अलौकिक संतवाणी पढ़ने की

लगन लगी—पूज्य देवकी माताजी की तथा गीता भवन की सेज से इस वाणी को सातवां दर्शन घोषित करने वाले स्वामी श्री रामसुखदासजी महाराज की कृपा से। मैंने स्वयं ने अनुभव किया कि शरणानंदजी महाराज की वाणी श्रीमद्भगवद्गीता की ही व्याख्या है।

वाणी प्रकाशन के विषय में

सेठ श्री जयदयालजी गोयन्का के भाई श्री हरिकृष्णदासजी, स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के परम भक्त थे। आप ही की कृपा से स्वामी जी की पहली पुस्तक '**एक महात्मा का प्रसाद**' गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित की गई। इसी प्रकार '**संत समागम**' व '**जीवन-दर्शन**' भी गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित की गई। मानव सेवा संघ की स्थापना के पश्चात् गीता प्रेस द्वारा स्वामीजी की वाणी प्रकाशित करना बंद कर दिया गया। कल्याण में अवश्य आपके लेख प्रकाशित होते रहते हैं।

2. **जीवन उपयोगी कैसे हो** विषय पर श्री नागरमलजी पेड़ीवाल नोहरवालों की प्रेरणा से स्वामी श्री रामसुखदासजी महाराज के प्रवचनों का कार्यक्रम था। उस अवसर पर शरणानंदजी महाराज की वाणी की पुस्तक '**साधननिधि**' पुस्तक फ्री वितरित कराई गई। स्वामीजी ने इस पुस्तक का महत्त्व हम लोगों को अनेक बार बताया।

3. '**मानव दर्शन**' पुस्तक में ''**म**'' का विवेचन पढ़कर रामसुखदासजी महाराज ने शरणानंदजी महाराज की वाणी को **सातवां दर्शन** बताया।

4. '**मूक सत्संग और नित्य योग**' पुस्तक पढ़ने पर ''**म**'' का भास, ''**जगत्**''की प्रतीति तथा ''**है**'' की प्राप्ति की बात समझ में आई।

5. ई.सन् 1954 में जयपुर में हुए प्रवचन ही '**मानव की मांग**' पुस्तक के रूपमें प्रकाशित किए गए। स्वामी रामसुखदासजी महाराज 2005 में महाप्रयाण (51 वर्षों) तक इस पुस्तक का अध्ययन करते रहे।

6. ई.सन् 1999 के नोखा चातुर्मास में 'संत उद्‌बोधन' पुस्तक गहराई से पढ़ी गई। इस पुस्तक को पढ़ने के पश्चात् सारी शंकाएं निर्मूल हो गईं।

7. 'मंगलमय विधान' पढ़ने वाला भीतर से स्वीकार करे तो वांछित सब साधन उसमें स्वयं के भीतर से ही स्वतः प्रकट हो जायेंगे।

8. 'मानवता के मूल सिद्धान्त' तो जीवन का संबल है। इसी के सहारे इस कलिकाल में जीवन यात्रा सुगमता से चला सकते हैं। प्रार्थना की व्याख्या पढ़लो और गीता 2/15 को समझलो। श्री कृष्ण ने 'अमृत' कहा उसे ही उनके सखा ने 'पवित्र प्रेम' कहा।

इसी प्रकार 'संतवाणी', 'सत्संग और साधन', 'संत समागम', 'दुःख का प्रभाव', 'दर्शन और नीति' आदि पुस्तकों के बारे में है।

गुड़ को किधर से भी चखो एक ही मिठास की अनुभूति होगी। जिसकी जैसी बनावट व रुचि हो---संत की इस अलौकिक वाणी से लाभ उठाकर अपना काम बनालें, यही प्रार्थना है।

□□

नया शहर, बीकानेर

अपना सुख बढ़ाना हो तो
प्राप्त सुख को बांटो
अपना दुःख घटना हो तो
दूसरों के दुःख को बंटाओ

(9)

– डॉ. भीकमचंद प्रजापति

(I)

उपदेष्टा मत बनना
इस कार्य को व्यापार मत बनाना

स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज ने अनेक वर्षों तक सुश्री देवकी माताजी को प्रवचन देने का प्रशिक्षण दिया। वे मंच पर बैठ जाते और देवकी माताजी को प्रवचन देने का संकेत करते। जहाँ माताजी प्रवचन में छोटी से छोटी भूल करती, वहाँ श्री स्वामीजी महाराज उसको ठीक कर देते। प्रशिक्षण पूरा होने के बाद उन्होंने माताजी से कहा—**देवकीजी! ध्यान से सुन लेना। उपदेष्टा मत बनना, प्रवचन मत देना।** माताजी ने कहा—महाराज जी! आपने मुझे प्रवचन देने की ट्रेनिग व प्रेरणा दी, अब आप ऐसा बोल रहे हैं कि प्रवचन मत देना। संत ने समझाया—देखो बेटी! अपने को सुनाने के लिये बोलना, अपने को समझाने के लिये बोलना, अपनी साधना को सजीव बनाने के लिये बोलना, उपदेष्टा मत बनना, इस कार्य को व्यापार मत बनाना। ऐसा करने पर तुम्हारा विकास हो जायेगा व श्रोताओं को बड़ा भारी लाभ होगा।

(II)

लिखो! आवाज आने लग गई
(और भाषाबद्ध हो गया "दर्शन")

उस कमरे में केवल तीन व्यक्ति रहते—एक ऊंचे आसन पर परम श्रद्धेय स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज, उनके सामने परमपूज्या देवकी माताजी और उनके पास एक साधक भाई। श्री स्वामीजी महाराज बुलन्द आवाज में हल्की तेज गति से बोलते। उनकी आवाज सुन कर माताजी

लिखतीं और पास में बैठे सज्जन पेन में स्याही भर कर तैयार रखते ताकि एक पेन में स्याही खतम होते ही तत्काल उन्हें दूसरा पेन दे देते। साथ ही हाथ-पंखे से मक्खी उड़ाते, हवा डालते। इस प्रकार निर्बाध गति से निरन्तर चलता लिखने-लिखवाने का यह प्रभु कार्य। एक बार इस कार्य में कुछ रुकावट आ गई। कार्य लगभग सात आठ दिन बंद रहा। जब पुनः लिखाने बैठे, तब देवकी माताजी ने श्री स्वामीजी महाराज से निवेदन किया—'महाराजजी! मैं आपको पूर्व प्रसंग के कुछ वाक्य पढ़ कर सुनादूं ताकि आपको यह बात याद आ जायेगी कि आप किस विषय पर लिखवा रहे थे। तब श्री स्वामीजी महाराज ने पहली बार कहा—बिटिया! सुनाओ तो उसको जो लिखवा रहा है। जैसे तुम मेरी आवाज को सुन-सुन कर लिख रही हो, वैसे ही मैं तो किसी की आवाज को सुन-सुन कर बोल रहा हूँ। मैं अपनी तरफ से नहीं बोल रहा हूं। देखो-देखो! आवाज आने लग गई, तुम लिखना शुरू करो। इस तरह भाषा बद्ध हुआ यह सर्वहितकारी अनमोल दर्शन जो युगों युगों तक सदैव के लिए साधक महानुभावों का मार्गदर्शन करता रहेगा। स्वयं भगवान बोले, उनके परम भक्त संत ने सुना व बोले और लिखा माताजी ने। जहाँ माताजी लिखने में मामूली भूल भी करतीं, तत्काल संत बोलते—बिटिया! यहाँ कोमा लगाओ, इस मात्रा को बड़ी करो, आदि। विशुद्ध दर्शन, विशुद्ध भाषा।

(III)

इससे बड़ा अन्याय मैं अपने प्रभु के साथ क्या करूंगा कि

साहित्य सृजन का शुभारम्भ हुआ। संत बोले, देवकीमाताजी ने लिखा। पहली पुस्तक तैयार हो गई जो प्रकाशन के लिये दी गई। प्रुफ सामने आया। देवकी माताजी पढ़ कर श्री स्वामीजी महाराज को सुनाने लगीं। शीर्षक पढ़ा और फिर पढ़ा—लेखक—स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज। श्री स्वामीजी महाराज ने सुना, बोले—देवकीजी! काटो इस वाक्य को। अरे! **इससे बड़ा अन्याय**

मैं अपने प्रभु के साथ क्या करूंगा कि उनकी लिखाई गई पुस्तक पर मैं अपना नाम लिखाऊँ। संत का हृदय प्रेम से भर गया, वे गद्‌गद्‌ थे। उनका नाम किसी भी पुस्तक पर नहीं है—उसका यही रहस्य है।

□□

139, शुभम फार्म, पाल रोड़, जोधपुर

चेतावनी

दांतों तले तृण दबाकर,
दीन गायें कह रहीं।
हम पशु तथा तुम हो मनुज,
पर योग्य क्या तुमको यही?
हमने तुम्हे मां की तरह,
है दूध पीने को दिया।
देकर कसाई को हमें,
तुमने हमारा वध किया॥

जारी रहा क्रम यदि यहां,
यों ही हमारे ह्रास का।
तो अस्त समझो सूर्य,
भारत-भाग्य के आकाश का।
जो तनिक हरियाली रही,
वह भी न रहने पाएगी।
यह स्वर्ण भारतभूमि,
बस! मरघट मही बन जायगी॥

मैथिलीशरण गुप्त (भारत भारती)

(10)

व्याकुलता एवं प्रिय मिलन

–जगदीशप्रसाद अग्रवाल
श्रीधाम, वृंदावन

अपने जीवन-काल में मैं लम्बे समय तक अलसर और लीवर के रोग से पीड़ित रहा। सन् 1969 में रोग अत्यधिक बढ़ गया। हमारे फेमिली-डॉक्टर ने मेरे पूज्य पिताजी से धीरे से कहा —इसे कैंसर हो गया है, मुजफ्फरनगर हॉस्पिटल में ले जाकर इसे दिखाओ। यह सुनते ही घर का सारा वातावरण गड़बड़ा गया। पिताजी मुझे हॉस्पिटल ले जाने की तैय्यारी में लग गये।

मैंने सोचा —कैंसर हो गया तो शरीर तो अवश्य जायेगा ही। कितना समय लगे यह दूसरी बात है। जाना तो पड़ेगा ही। यह बात मेरे मन में जम गई। सोचा —बच्चे दुःखी होंगे, पत्नी रोयेगी, माता-पिता घोर पीड़ा अनुभव करेंगे। उधर, 3 माह पूर्व हमारे ही कुनबे में एकाएक एक जवान-मौत हो चुकी थी। वह भी मेरी ही तरह बाल-बच्चों वाला था। पर थोड ही दिनों बाद उस परिवार का सबकुछ नार्मल हो गया। तो मैंने सोचा कि मेरे जाने के पश्चात भी दुःख का वातावरण थोड़े ही दिन तो रहेगा। पीछे तो लोग दुःख भूल जायेंगे। तो मैं इनका मोह क्यों रखूं, पर सही बात यह है कि उनका मोह मुझे सता रहा था और मैं मृत्यु से डर रहा था।

एकाएक मेरे भीतर तीव्र व्याकुलता की जागृति हुई। प्रार्थना का उदय हुआ। हे प्रभु! मेरा मोह दूर करो। मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लग

रहा था। मेरे बस के बाहर की बात नहीं थी तो मैंने स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज को इस आशय का पत्र लिखा कि —महाराज! मैं छटपटा रहा हूँ, किसी भी प्रकार परिवार के प्रति मेरा मोह दूर करो, ताकि मैं भय मुक्त होकर संसार से विदाई लूं। स्वामीजी महाराज ने मेरे नाम निम्न पत्र भेजा—

मेरे निज स्वरूप, परम स्नेही, प्रभु विश्वासी, प्रिय वत्स,

सप्रेम हरि स्मरण तथा बहुत-बहुत प्यार। पत्र के स्वरूप में भेंट हुई। समाचार विदित हुआ, जब तक साधक सत्संग के द्वारा साधननिष्ठ नहीं होता, तब तक मृत्यु का भय स्वाभाविक है। परन्तु प्रभु-विश्वास, प्रभु-विश्वासी की सभी समस्याओं का हल करके में समर्थ है। जिन विश्वासी साधकों ने विश्वास के महत्त्व को अपनाया वे सभी अभय हो गये। कारण की प्रभु-विश्वास भयहारी भी है। इतना ही नहीं, प्रभु-विश्वास ही प्रभु-प्राप्ति का अचूक उपाय है।

प्रेम की जागृति से पूर्व शरीर नाश नहीं होगा

तुम प्रभु प्रेम की तीव्र मांग अनुभव करो। अवश्य पूरी होगी। प्रेम की जागृति से पूर्व शरीर नाश नहीं होगा। तुम्हारा काम तो प्रेम की आवश्यकता अनुभव करना है और प्रभु की अहैतुकी कृपा का कार्य प्रेम प्रदान करना है। तुम अपना काम पूरा करो। अनंत की कृपा शक्ति तो सदैव प्रभु विश्वासियों का कार्य करती ही रहती है। इस वास्तविकता में अविचल आस्था करो।

रोग का भय मत करो, उसका उदारपूर्वक सदुपयोग करो

प्रभु प्रेम की प्राप्ति के लिए ही मानव-जीवन मिला है। इस मांग की पूर्ति अवश्यम्भावी है। अतः प्रेम की भूख उत्तरोत्तर बढ़ती रहे, यही

सफलता की कुंजी है। यह रोग तुम्हें निर्मोहता पूर्वक प्रेम प्रदान करने आया है। अतः आदरपूर्वक सदुपयोग करो। अपने में ही अपने प्यारे प्रभु मौजूद हैं। उनकी महिमा को स्वीकार करो और सदैव अभय रहो।

ॐ आनंद।

सदभावना सहित

शरणानंद

इस बात को 41-42 वर्ष हो गये। मैं इस बात का पक्का दावा तो नहीं कर सकता कि परिवारजनों के प्रति मेरा मोह नष्ट हो गया। परंतु यह बात प्रत्यक्ष है कि 80 वर्ष की उम्र में मैं आज जीवित हूँ तथा पिछले 37 वर्षों से श्रीधाम, वृन्दावन में वास कर रहा हूँ। इतना ही कह सकता हूँ कि—संत तथा भगवंत की महिमा तो वे ही जानें, अपने वश में तो कुछ भी नहीं है।

□□

विश्राम मिलता है तीन प्रकार से
या तो जाने हुए के आदर से
या तो मिले हुए के सदुपयोग से
या अनंत की शरणागति से

प्रभु विश्वासी का प्रत्येक कार्य 'पूजा' है
अध्यात्मवादी का प्रत्येक कार्य 'साधना' है, तथा
भौतिकवादी का प्रत्येक कार्य 'कर्त्तव्य' है

III
मानव सेवा संघ का दर्शन और साहित्य

उत्तम पुरुषों का परिवर्तन 'ज्ञान' से
मध्यम पुरुषों का परिवर्तन 'लालच' से, तथा
निकृष्ट पुरुषों का परिवर्तन 'भय' से होता है

(1)

मानव सेवा संघ के प्रवर्तक स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के निर्देश

(संघ साहित्य के प्रचार-प्रसार एवं संघ की नीति के संबंध में)

गीता भवन

२५-४-१९५७

प्रीति स्वरूपा दिव्य ज्योति,

.....

मानव सेवा संघ के साहित्य का प्रचार अपने-अपने ढंग से, जिसको जैसा ढ़ंग प्रिय हो, करे। वास्तव में तो मानव-मात्र की अनुभूति ही मानव सेवा संघ का साहित्य है। मानव सेवा संघ की नीति परस्पर में स्नेह की एकता स्थापित करने की है, क्योंकि स्नेह की एकता ही एक ऐसा तत्व है, जिससे संघर्ष का अन्त हो जाता है। अत: जिन उपायों से स्नेह की वृद्धि हो, वही उपाय अपनाने का प्रयत्न करना है।

जिओ, जागो, सदा आनन्द में रहो। पुन: तुमको बहुत-बहुत प्यार!

आनन्द! आनन्द!! आनन्द!!!

नोट :- उपरोक्त पत्र स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज ने दिव्य ज्योति प्रोफेसर देवकी जी को गीता भवन, ऋषिकेश से लिखा था, जो मानव सेवा संघ, वृन्दावन से प्रकाशित पुस्तक पाथेय - भाग - 1 (द्वितीय संस्करण-जुलाई 1994) के पृष्ठ सं. 100-104 पर पत्र सं० 74 के रूपमें प्रकाशित किया गया है।

□□

जीवन का संदेश

-स्वामी श्री रामशरणजी महाराज
सौजन्य : श्री भरत दूगड़, कोलकता

(मानव सेवा संघ के प्रवर्तक स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज ने देहलीला संवरण के पूर्व जीवन का संदेश दिया था। इसको स्वामी जी के परम कृपा-भाजन श्री रामशरणजी महाराज (पूर्व नाम श्री कन्हैयालाल जी दूगड़) ने बहुत ही सटीक तरीके से कविताबद्ध किया है। साधकजन के हितार्थ यहां प्रस्तुत है।)

मानव सेवा संघ सुनावे, जीवन का संदेश

शरणानंद प्रवर्तक इसके, ब्रह्मनिष्ठ युग प्रेरक थे।
देह त्याग के कुछ पहले, ये अमृत बिंदु उड़ेले थे॥
उनमें से लो आज सुनाऊं, चुनकर चन्द विशेष।
मानव सेवा संघ सुनावे, जीवन का संदेश॥

मुझे न होगा दुःख तन-क्षय से, महानंद में होऊंगा।
मैं त्रिकाल में काया हूं नहिं, परम शांति में सोऊंगा॥
मध्योपाधि हटेगी, होगा, मिलना नित्य अशेष।
मानव सेवा संघ सुनावे, जीवन का संदेश।।

तन छूटे तब शोक सभाएं, मत करना, सत्संग करो।
मिट्टी के इस निरे भार को, इसी मही पर भस्म करो॥
उसे मिलादो इस मिट्टी में, गौ जहं चरे हमेश।
मानव सेवा संघ सुनावे, जीवन का संदेश॥

कहीं न कोई चिन्ह बनेगा, समाधियां नहीं पूजी जायें।
खाद रूप होकर यह काया, जल थल में सब मिल जाये॥
नहीं साधना का क्षय होता, प्रसरित हो यह संदेश।
मानव सेवा संघ सुनावे, जीवन का संदेश॥

इस शरीर की सेवा में ही, जिस साधक की रुचि होवे।
मानव सेवा संघ हमारा, तनु बहुस्थायी यह होवे॥
वह इसकी सेवा में रत हो, सन्देह करे नहिं लेश।
मानव सेवा संघ सुनावे, जीवन का संदेश॥

जो करते हैं प्यार मुझे, वे प्यार प्रभु से सदा करें।
मेरा जीवन, प्रेमास्पद का, प्रेम रूप, विश्वास करें॥
सिवा "नाथ" के और नहीं कछु, टेर नहीं कुछ शेष।
मानव सेवा संघ सुनावे, जीवन का संदेश॥

यह आशीर्वचन बच्चों को, दिया हमारे सद्गुरु ने।
उनके होकर रहो, करो सब, उनके खातिर, वे अपने॥
"लाल कन्हैया" के गुरुवर का, जन-जन को उपदेश।
मानव सेवा संघ सुनावे जीवन का संदेश॥

□□

मानवता में ही पूर्णता निहित है

(3)

मानव सेवा संघ की विश्व को अद्वितीय देन

-कन्हैयालाल लोढ़ा

(स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज ने महाप्रयाण से पूर्व अन्तिम दिनों में फरमाया था कि—'जिनकी मेरे शरीर की सेवा में रुचि है वे मानव सेवा संघ की सेवा करें और जो मुझे प्यार करते हैं, वे भगवान् को प्यार करें।' हमारी रुचि व प्यार मानव सेवा संघ तथा स्वामीजी महाराज—दोनों ही से है। हमारा मानना है कि स्वामीजी महाराज ने ऐसा विज्ञानसम्मत व विवेकसम्मत दर्शन तथा साहित्य प्रस्तुत करके मानव सेवा संघ के माध्यम से प्रकाशित किया है जो आने वाली पीढ़ियों का युगों-युगों तक मार्गदर्शन करता रहेगा। प्रस्तुत लेख में विद्वान लेखक ने यही भावना अभिव्यक्त की है।

हमारी कामना है कि जनता-जनार्दन, विशेष रूपसे युवाजन स्वामीजी महाराज द्वारा प्रस्तुत मानव सेवा संघ का मूल साहित्य अवश्य पढ़ें। इससे उनके श्रेय और प्रेय दोनों के मार्ग प्रशस्त हो सकेंगे।)

अभी तक जितने दर्शन प्रचलित हैं उनमें से प्रत्येक दर्शन किसी न किसी सिद्धि प्राप्त महापुरुष की देन है। उस दर्शन के प्रणेता महापुरुष ने व्यक्तिगत रूपमें जिस साधना विशेष से सिद्धि पाई उसी साधना को उस दर्शन में मुक्ति-प्राप्ति का मार्ग कहा है। अन्य साधनाओं का उसमें स्थान नहीं है। उस दर्शन के अनुयायी सभी साधकों के लिए अपने उस साधन विशेष में वर्णित साधना से ही मुक्ति मिलेगी, अन्य साधना से नहीं, ऐसा उनका आग्रह रहता है। परंतु सभी महापुरुषों द्वारा प्ररूपित साधनाएं व्यक्तिगत होने से उनमें भेद व भिन्नता होते ह। **भेद व भिन्नता होने से उनके आग्रह से परस्पर में संघर्ष होता है।**

मानव सेवा संघ के दर्शन में मानव मात्र के अपने स्वयं सिद्ध, निज ज्ञान को, साधना का आधार बनाया गया है। यह निज ज्ञान स्वयं सिद्ध होने से सबका एक है, नित्य है, शाश्वत है, सनातन है, अपरिवर्तनशील है। सभी को शांति, स्वाधीनता, अमरता, निश्चिंतता, निर्भयता, पूर्णता, चिन्मयता, प्रियता आदि दिव्यताएं चाहिए। किसी को भी अशांति, अभाव, पराधीनता, जड़ता, दीनता, भय, मृत्यु, शोक व वियोग इष्ट नहीं है। इस स्वयं सिद्ध निज ज्ञान से किसी का भी मतभेद व विचार भेद नहीं हो सकता। व्यक्ति किसी भी सम्प्रदाय का हो, किसी भी वर्ग का हो, किसी भी दर्शन का मानने वाला हो या किसी भी जाति या वाद को मानने वाला हो। निज ज्ञान, नित्य व अपरिवर्तनशील होने के कारण, सबका समान है।

मानव सेवा संघ के दर्शन के अनुसार निज ज्ञान ही विवेक है। विवेक विरोधी कर्म, ज्ञान व विश्वास का त्याग ही वास्तविक साधना है। ऐसे त्याग के लिए किसी भी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थिति विशेष की आवश्यकता नहीं है। यह सब काल में, सभी के द्वारा सब जगह किया जाकर साधननिष्ठ हुआ जा सकता है। मानव मात्र यह साधना करने में स्वाधीन है। इसमें निराशा, पराधीनता, पराश्रय, असमर्थता का कहीं भी कोई स्थान नहीं है। कोई व्यक्ति जगत् को सत् माने व असत्, नर्क-स्वर्ग, पुनर्जन्म, परलोक, खगोल-भुगोल आदि के विषय में कुछ भी मान्यता रखे—यदि वह निज ज्ञान (विवेक) के प्रकाश में अपने को सुख की रुचि, प्रलोभन, कामना व उसकी दासता से मुक्त करता है तो उसे भी **वही जीवन प्राप्त हो सकता है जो आज तक किसी भी महामानव को प्राप्त हुआ होगा।**

इस दर्शन की दूसरी बड़ी विशेषता यह है कि यह किसी भी वाद का खंडन-मंडन नहीं करता। मानव को उसकी बनावट, मान्यता व प्राप्त परिस्थिति के सदुपयोग द्वारा जीवन की राह बताता है। जैसे भौतिकवादी को कर्तव्य निष्ठ होकर विश्व प्रेम की राह बताता है तो अध्यात्मवादी को असंग होकर आत्मरति की ओर अग्रसर करता है। आस्तिकवादी को प्रभु की मधुर स्मृति द्वारा उनकी प्रीति बन जाने की प्रेरणा देता है। कोई व्यक्ति किसी भी मान्यता वाला हो उसे अन्त में मिलती एक ही मंजिल है—जीवन। इसीलिए इस दर्शन का उद्घोष है—दर्शन अनेक जीवन एक।

संक्षेप में आज के युग के लिए मानव सेवा संघ ने एक ऐसा दर्शन प्रस्तुत किया है जिसके द्वारा मानव मात्र जीवन की सही राह पर चलते हुए अपनी मंजिल पर पहुँच कर योग, बोध व प्रेम की प्राप्ति कर सकता है।

□□

जैन सिद्धान्त शिक्षण संस्थान
महावीर उद्यान मार्ग, बजाज नगर,
जयपुर - ३०२०१७

हम भगवान के हैं, भगवान् हमारे हैं
यह मामूली बात नहीं है
यह बहुत ऊँचा भजन है
इसके समान कोई साधन नहीं है
हम भगवान के हैं, भगवान् हमारे हैं
यह पता लग गया,
तो अब हमारा दूसरा जन्म क्यों होगा?
-स्वामी रामसुखदास महाराज

(4)

मानव सेवा संघ का दर्शन व साहित्य

कथ्य के सहारे अकथ

(वीतराग वाणी का चर्मोत्कर्ष)

– कु. गंगा डागा

भाषा भावों की अनुगामिनी होती हैं। सन्तों का अनुभूत सत्य स्वतः ही भाषा–बद्ध हो जाता है। स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के साहित्य का स्फुरण स्वानुभूति और पर–पीड़ा या करुणा से हुआ। घोर पराधीनता एवं असमर्थता में होते हुए भी, स्वाधीन जीवन एवं सत्य को पाने की जिज्ञासा एवं वेदना से उन्होंने स्वाधीन जीवन एवं सत्य को पा लिया। **जिस मानव ने अमरत्व पा लिया वह भला अशांति एवं पराधीनता में फंसे मानव को कैसे देख सकता है?**

नवनीत से भी कोमल सन्त–हृदय व्यथित हो उठा। समय–समय पर वे कहते भी थे– "**जिसको दर्द होता है वह चिल्लाता है, चुप नहीं रह सकता, मैं कथा नहीं सुनाता हूँ, अपनी व्यथा सुनाता हूँ।**" मानव जीवन पाकर भी व्यक्ति असफल रह जाय! चिरशांति, जीवन मुक्ति, भगवद् भक्ति प्राप्त करने का जिसको जन्मसिद्ध अधिकार है, वह मानव उससे वंचित रह जाय, यही उनकी व्यथा थी। अतः ज्ञान एवं आनन्द में लीन, अपनी ही मस्ती में मस्त, फक्कड़ एवं अवधूत जीवन व्यतीत करने वाले सन्त को विवश होकर अपनी व्यथा को साकार रूप देना पड़ा। उनकी व्यथा का ही साकार रूप है–

मानव–सेवा–संघ और इसी नाम से उन्होंने साहित्य–सर्जना की।

वे एक जागरूक साहित्यकार की श्रेणी में आते हैं। सद्साहित्य और कला की कसौटी अनुभूति की सच्चाई है। वे इस कसौटी पर खरे उतरे हैं। उन्होंने 'कागद लेखी' नहीं, 'आँखिन देखी' लिखा। वे विद्यालय की शिक्षा से वंचित रहे किन्तु अनुभूति की तीव्रता के कारण भाषा भाव–वाहिनी बन गयी। अवधूत सन्त की भाषा किसी भी विचार को व्यक्त करने में पंगु नहीं हुई। स्वानुभूति के बल पर उन्हें जो विश्वसनीय लगा उसे ही बिना किसी लाग–लपेट, आडम्बर और कृत्रिमता के उन्होंने सरलता, निश्छलता, मार्मिकता एवं आत्म विश्वास के साथ अभिव्यक्त किया। उन्होंने सर्वात्म–भाव से प्रेरित होकर ही साहित्य–सर्जना की।

मानव–सेवा–संघ के प्रणेता सन्त के साहित्य में व्यक्ति और समाज की एकता एवं सर्वात्मभाव को स्पष्ट करते हुए बताया है कि –"अनेकता का उद्गम एक है और अनेकता अन्त में एक ही में विलीन होती है। अतः एक और अनेक का स्वरूप से विभाजन नहीं। पारस्परिक विकास में सहयोग देने के लिए ही व्यक्ति और समाज की भिन्नता और एकता है।"

"सामाजिक भावना का वास्तविक अर्थ है–सर्वात्मभाव। इससे पूर्व सामाजिकता की चर्चा समाज को अपनी खुराक बनाना है। सामाजिक भावना व्यक्ति को समाज की खाद बनाती है। खाद उससे अभिन्न हो जाती है जिसकी वह खाद होती है। सामाजिक भावना से युक्त मानव अपने को विभु पाता है।"

बिरला व्यक्तित्व

साहित्यकार निर्लिप्त एवं अनासक्त होकर जिस सत्य की प्रतिष्ठा करता है, उसकी कभी उपेक्षा नहीं की जा सकती। साथ ही समस्त पूर्वाग्रहों से रहित होने पर ही साहित्य अपने नाम को सार्थक कर सकता है। मानव–सेवा–संघ प्रणेता सन्त का व्यक्तित्व ऐसा निर्लिप्त एवं अनासक्त था कि उन्होंने प्रातिभ–ज्ञान द्वारा निःसृत सार्वभौम सत्य पर नाम की सील नहीं लगायी। ऐसा निर्लिप्त व्यक्तित्व कोई बिरला ही होगा।

प्रत्येक युग में ऐसे चिन्तकों, मनीषियों का उदय होता है जो अपने कृतित्व द्वारा समाज की विषमता एवं वैमनस्य को समाप्त करके समाज में एकता, प्रेम और मानवता की भावना को जाग्रत कर मानव को उसकी महिमा से अवगत कराकर उसे अविनाशी जीवन प्राप्त करने की प्रेरणा देते हैं। यह कार्य उत्कृष्ट साहित्य सदियों से करता आया है। मानव–सेवा–संघ–साहित्य में भी स्वामी शरणानन्द जी महाराज ने सहज समाधि, अहम् समर्पण, शरणागति, प्रेम, मानवता, सामाजिक क्रांति आदि पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। **इन्होंने सत्य के उस वृहद् रूप को उजागर किया है जो रूढ़िमुक्त है, किन्तु निषेधवादी नहीं। वे एक ऐसे चौराहे पर खड़े हैं जहाँ से सभी पथ के पथिकों को राह मिल रही है।**

अध्यात्मवादी आत्मचिन्तन में निमग्न है तो आस्तिकवादी का ईश्वर विश्वास ही सम्बल है एवं भौतिकवादी कर्तव्यपथ पर दृढ़ है। उन्होंने हर क्षेत्र के पथिकों को सत्य की राह बतायी। सत्य को पाने का अधिकार मानव–मात्र को है। इसीलिए उन्होंने निराशा को जीवन में स्थान नहीं दिया। बस, माँग की जागृति को ही माँग की पूर्ति में हेतु बताया। उन्होंने सभी पथों का तारतम्य एवं समन्वय कितने सुन्दर

ढंग से किया है–"**भौतिकता की पूर्णता में आध्यात्मिकता एवं आध्यात्मिकता की पूर्णता में परम–प्रेम स्वतः अभिव्यक्त होता है। कर्तव्यनिष्ठ जगत के लिए और विवेकी अपने लिए एवं विश्वासी प्रभु के लिए उपयोगी होता है, यह मानव जीवन की विलक्षणता है।**"

साधन भेद होने पर भी प्रीति भेद तथा साध्य भेद के लिए साधक के जीवन में कोई स्थान नहीं है। साधना का आरम्भ चाहे जिस पद्धति के अनुसार हो, परन्तु अन्त में सभी एक होकर उस साध्य से अभिन्न हो जाते हैं, जो वास्तविक जीवन है।

मूक सत्संग तथा नित्य योग

मानव सेवा संघ के प्रणेता सन्त ने मानव–मात्र के लिए उपयोगी एवं सभी के लिए समानरूप से कारगर हो, ऐसी जीवन–पद्धति का अनूठा एवं अभिनव प्रयोग किया, जो उनके जीवन–मंथन से उद्‌भुत हुई। उस अनुपम खोज की अभिव्यक्ति हेतु उन्होंने नवीन शब्द भी गढे। वह खोज है– "मूक सत्संग और नित्य योग"। **मूक–सत्संग का अर्थ है, श्रम–रहित होकर सत् का संग करना और नित्य–योग का अर्थ है – अविनाशी से मिलन।** मूक–सत्संग की पूर्णता में ही नित्य–योग की प्राप्ति है। नित्य–योग की प्राप्ति में प्रत्येक व्यक्ति अपनी राह पा ले, इस हेतु उन्होंने विचार, विश्वास और कर्त्तव्य अर्थात् अध्यात्मवाद, आस्तिकवाद एवं भौतिकवाद–सभी दृष्टि से नित्य–योग की प्राप्ति का उपाय बताया।

मूक–सत्संग कोई अभ्यास नहीं है, न ही सार्थक चिंतन द्वारा व्यर्थ–चिंतन को मिटाना है और न ही निर्विकल्प अवस्था मूक–सत्संग है, **अपितु अहंकृति रहित होकर सभी अवस्थाओं**

से असंग होना मूक–सत्संग है। अर्थात् अहम्–शून्य होकर सब कुछ को कुछनहीं में विलीन कर देना मूक–सत्संग है। 'कुछ न करने में जीवन है'–इसका तात्पर्य यह नहीं है कि व्यक्ति को श्रम एवं प्रवृत्ति से रहित किया जा रहा है, अपितु प्रवृत्ति और निवृत्ति एक ही जीवन के दो पहलू हैं। सही प्रवृत्ति के बाद सहज निवृत्ति आती है, यह सहज निवृत्ति ही मूक–सत्संग है। संघ की भाषा में –"मूक–सत्संग अभ्यास नहीं है अपितु श्रम–रहित स्वाभाविक साधन है। कर्त्तव्य–परायणता, अचाह और शरणागति भाव से ही मूक–सत्संग की सिद्धि होती है।"

मूक–सत्संग द्वारा मनुष्य का क्रमिक विकास होता है, उसे बड़े ही सुन्दर रूपक में प्रस्तुत किया गया है–"अचाह रूपी भूमि में ही मूक–सत्संग रूपी वृक्ष उत्पन्न होता है और सम्बन्ध–विच्छेद रूपी जल से उसे सींचा जाता है। वर्तमान परिस्थिति का सदुपयोग ही उस वृक्ष की रक्षा करने वाली बाड़ है। उनकी मधुर–स्मृति उस वृक्ष का बौर है और अमरत्व ही उस वृक्ष का फल है, जिसमें प्रेमरूपी रस भरपूर है। प्रेम रस से भरपूर अमर फल पाकर ही प्राणी कृतकृत्य होता है।"

गुरू, हरिहर और सत्य

मानव–सेवा–संघ के साहित्य में गुरु–तत्व पर रूढ़ि–मुक्त विचार हैं, शरीर में गुरु–बुद्धि स्वीकार नहीं की है। ज्ञान एवं विवेक का प्रकाश गुरुतत्व के रूप में मानव–मात्र को सर्वदा प्राप्त है। गुरु और सत्य अभेद हैं। सत्य को स्वीकार करना ही गुरु–तत्व से अभिन्न होना है। संघ के शब्दों में–"शरीर में गुरु–बुद्धि और

गुरु में शरीर–बुद्धि भारी भूल है, क्योंकि गुरु–तत्व अनन्त ज्ञान का भंडार है। गुरु–तत्व अनादि, अनुत्पन्न तत्व है। गुरु, हरिहर और सत्य में कोई भेद नहीं।"

प्रीति की विलक्षणता

मानव–सेवा–संघ साहित्य में प्रेम–तत्व का विवेचन करते हुए बताया है कि "प्रेमी और प्रेमास्पद अभिन्न हैं। प्रेमास्पद स्वयं ही अपना प्रेमी बना लेते हैं। उनके प्रेम का वारापार नहीं है। प्रेमदाता प्रेम देकर प्रेमी बना रहे हैं। प्रेमी होकर प्रेमी बनाना ही उनका स्वभाव है। प्रेमास्पद ही वास्तव में प्रेमी है।" प्रेम को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता–"प्रीति किसी भाषा तथा भाव के द्वारा व्यक्त नहीं की जा सकती और न बिना कुछ कहे रहा ही जाता है। यह प्रीति की विलक्षणता है।" प्रेम–तत्व की पराकाष्ठा इसी में है कि 'मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिये, सब कुछ प्रभु का है' तथा कोई 'गैर' नहीं कोई 'और' नहीं।

नवीन शब्दों का प्रस्तुतिकरण

भाषा एवं रस की दृष्टि से स्वामी शरणानन्द–साहित्य का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि इन्होंने अनेक शब्दों को नवीन अर्थ में प्रस्तुत किया है। **इस दृष्टि से इन्हें नवीन शब्दों का जनक भी कह सकते हैं।** जैसे– 'नित्य–योग', 'नित्य–जागृति', 'नित्य–जीवन', 'नित्य–नवप्रियता', 'मधुर स्मृति', 'अखण्ड प्रियता' आदि अनेक शब्द उनकी अनुभूत वाणी से निः सृत हैं। इनका उद्देश्य जन–मन तक अपना सन्देश पहुँचाना है न कि साहित्यिक सौष्ठव। फिर भी दिव्य–रस की आर्द्रता एवं जन–जीवन के उत्थान की आतुरता सहृदय के हृदय को द्रवीभूत किये बिना नहीं रहती।

इन्होंने कथ्य के सहारे अकथ को कह डाला, यही उनकी वाणी का चरमोत्कर्ष है, और यही उनकी भाषा की सक्षमता है। उनकी भाषा अनुभूति को अभिव्यक्त करने का माध्यम–भर ही नहीं, अपितु जीवन की भास्वरता एवं अन्तः स्थल को स्पर्श करने वाली है, जो पाठक के हृदय के साथ तादात्म्य कर लेती है। यही इसकी सबसे महत्वपूर्ण विशेषता 'साधारणीकरण' इनके साहित्य में विद्यमान है। इनकी भाषा में ऐसी जीवन्तता है जो सहृदय के हृदय को एकबारगी भाव–विभोर कर उसी रस में डुबो देती है। अहम्–शून्य स्थिति की मूक–भाषा पाठक को भी एकबारगी मूक बना देती है।

रस का स्वरूप व श्रेणियां

मानव–सेवा–संघ साहित्य के प्रणेता–संत ने अपने साहित्य में उसी रस का उल्लेख किया है जो रस इन्द्रिय, मन, बुद्धि से परे है। देहातीत जीवन या प्रियता की जागृति से इस रस का उदय है। अपने प्रेमास्पद से अभिन्न हो जाना इस रस की अनन्तता है। वह रस है–प्रियता का रस। जो रस अनन्त है एवं अनन्त का स्वभाव है उसकी परिणति कहाँ? वह रस तो क्षति, पूर्ति, निवृत्ति से रहित है। ऐसा रस ही जीवन की माँग हो सकती है। संघ की भाषा में रस एवं उसकी प्रियता से सम्बन्धित कुछ हृदयस्पर्शी उदाहरण द्रष्टव्य हैं–**'प्रियता की जागृति में ही रस की अभिव्यक्ति है। रस की अभिव्यक्ति में ही जीवन की पूर्णता है रस अनन्त का स्वभाव है और मानव की माँग है।"**

"रस की माँग ही जीवन की माँग है। रस देने में ही रस की वृद्धि है। रस की वृद्धि में ही रस का दान है। रस के आदान–प्रदान में ही वास्तविक जीवन है।"

"आत्मीय सम्बन्ध में ही प्रियता है और प्रियता ही भक्ति–रस है। वह ऐसा अनुपम रस है जिसकी माँग भगवान् को भी है और भक्त को भी। शरीर, इन्द्रिय, मन, प्राण आदि पर उन्हीं की सील (मोहर) लगा दो। उत्तरोत्तर प्रियता बढ़ती रहे। प्रियता वास्तव में क्षति, पूर्ति, निवृत्ति से रहित नितनव है।"

मानव–मन के पारखी सन्त ने व्यक्तित्व की बनावट के आधार पर रस की श्रेणियाँ निर्धारित कीं एवं रस को जीवन की माँग बताया। इस कारण जीवन और रस अविभाज्य हैं। संघ की दृष्टि से–"जीवन और रस का विभाजन नहीं हो सकता अर्थात् जीवन में रस और रस में जीवन है। जीवन नित्य है और रस अनन्त जिज्ञासा, जीवन का प्रतीक है और प्रेम रस का।" अतः कोई भी मानव भौतिकवादी हो, अध्यात्मवादी हो, या ईश्वरवादी हो रस–रहित जीवन नहीं जी सकता। भौतिकवादी व्यर्थ–चिन्तन से मुक्त होकर अर्थात् अचिन्त्य होकर शान्त रस को पाता है, अध्यात्मवादी अनित्य से असंग होकर अखण्ड रस पाता है एवं ईश्वरवादी आत्मीय सम्बन्ध स्वीकार कर शरण्य के समर्पित होकर अगाध, अनन्त रस पाता है।

संघ की भाषा में–"उदारता में करुणा एवं प्रसन्नता का रस, अचाह में शान्त रस तथा असंगता में अखण्ड रस एवं आत्मीयता में अगाध अनन्त नित–नव रस विद्यमान है। रस ही एकमात्र जीवन की माँग है।" "योग में शांत, बोध में अखण्ड तथा प्रियता में अनन्त रस है। शांत और अखण्ड रस के आश्रित अहम्–भावरूपी अणु जीवित रहता है.....जब असंगता अभिन्नता में परिणत हो जाती है तब एकमात्र अगाध प्रियता ही

रह जाती है। अनन्त की प्रियता अनन्त के लिए रस रूप है।" इस प्रकार संघ की दृष्टि से प्रियता का अनन्त रस ही प्रथम कोटि का है। शान्त और अखण्ड रस अनन्त रस तक पहुँचने की सीढ़ी हैं। **रस का चर्मोत्कर्ष तो अनन्त रस ही है, क्योंकि वह नित्य–नवीन है।**

दर्शन अनेक, पर जीवन एक

मानव–सेवा–संघ ने जीवन दर्शन एवं साहित्य का विभाजन नहीं किया, क्योंकि उनके जीवन का अनुभूत सत्य ही दर्शन बना एवं दर्शन से ही उनके साहित्य का उद्‌भव हुआ। मानव–सेवा–संघ का दर्शन किसी धर्म या सम्प्रदाय से नहीं जुड़ा है। वह तो एक ऐसा सार्वभौम सत्य है जो व्यक्ति या सम्प्रदाय की सीमाओं से परे विश्व–हृदय की अनुभूति से जुड़ा है। प्रत्येक हृदय अपने को समस्त सीमाओं से मुक्त करके उस अनुभूति को सहज रूप में अपनी बना सकता है। उन्होंने एक ऐसा मंच तैयार किया जहाँ सभी धर्मावलम्बी समस्त संकीर्णता को पार कर ऐसे मिलन–बिन्दु की स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखते हुए विचार–विनिमय द्वारा जीवन के सत्य का मार्ग अपना लें। सभी के मत को आदर देते हुए उन्होंने कहा – **'दर्शन अनेक हैं पर जीवन एक है।"**

उन त्रिगुणातीत सन्त के दिव्य व्यक्तित्व व कृतित्व को भाषा की सीमा में नहीं बांधा जा सकता। सब कहकर भी कुछ न कहना ही शेष है। ज्ञान, कर्म एवं प्रेम के अद्‌भुत संगम वाला व्यक्तित्व हर दृष्टि से पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ था। हमारे क्षुद्र शब्द, सीमित भाषा, सीमित बुद्धि उस असीम को कैसे बाँध सकते हैं? किन्तु वह असीम हमारे सीमित एवं अनेक अभावों से युक्त व्यक्तिव को भी अपनी ओर खींच रहा है। यही उसकी

महिमा है। उनकी महिमा अपरम्पार है, उसको जान भी कौन सकता है? यदि किसी वीर साहसी ने उस असीम उदधि की गहराई में गोते लगाने का साहस कर भी लिया तो सन्त कबीर की तरह उसकी भी यही दशा होती है–

'हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराय,
बूँद समानी समुंद में, सो कित हेरी जाय।'

□□

मानव बनके मुस्कुराना कोई हमसे सीख जाए

हर हाल में खुश रहना, कोई हमसे सीख जाए।
महफिल में जुदा रहना, कोई हमसे सीख जाए।।
झंझट से भाग जाना, सब लोग बताते हैं।
झंझट से बचके रहना, कोई हमसे सीख जाए।।
दुःख सुख में रोना हंसना, है काम कायरों का।
दोनों में मुस्कुराना, कोई हमसे सीख जाए।।
मंदिर व मस्जिदों में, जिसे लोग ढूंढ़ते हैं।
अपने ही घर में पाना, कोई हमसे सीख जाए।।
मरने के बाद मुक्ति, सब लोग बताते हैं।
जीतेजी मुक्त रहना, कोई हमसे सीख जाए।।
दुनियां के लोग धन, पाके मुस्कुराते।
मानव बनके मुस्कुराना कोई हमसे सीख जाए।

(प्रेषक : संत कुमार सिंह भदौरिया, उदी-अवारी-206131
(इटावा) यू.पी.

(5)
वीतराग संत स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज का दर्शन और साहित्य सबके काम का—आम आदमी के काम का

–कन्हैयालाल लोढ़ा

मानव सेवा संघ के प्रणेता वीतराग संत स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज का दर्शन व साहित्य आज के समय में सर्वोच्च कोटि का है, क्रांतिकारी है, प्रकृति के नियमों पर आधारित है। इसीलिए सबके काम का है, आम आदमी के काम का है। स्वामी जी महाराज अक्सर फरमाते थे —'आपके सामने मैं ऐसी कोई बात नहीं रख रहा जिसे आप न जानते हों। मैं आपकी अपनी बात ही आपके सामने रख रहा हूँ।' एक मर्तबा तो आपने यहाँ तक कह डाला कि —'भाई! आपके ज्ञान में और वेद व्यासजी के ज्ञान में कोई फर्क नहीं है। फर्क इसी बात में है कि

आप जैसा जानते हैं वैसा मानते नहीं और जैसा मानते हैं वैसा करते नहीं।'

गोली मार देना, फांसी लगा देना

गीता भवन (ऋषिकेश) में सत्संग के किसी प्रसंग में आपने उद्घोष किया—

'यदि इस संसार का कोई भी भाई, कोई भी बहिन किसी भी उपाय से उस बुराई का त्याग करदे जिसे वह बुराई जानता है तो इस दुनियां की ऐसी कोई भी चीज नहीं जो उसे न मिल जाय और जिसे आस्तिक लोग अपनी भाषा में भगवान् कहते हैं। वे भगवान् उसके चरणों के लिए लालायित न होजायें, तो मुझे गोली मार देना—फाँसी लगा देना, गोली मार देना—फाँसी लगा देना।

सिखाना नहीं बोध कराना चाहते हैं

स्वामी श्री रामसुखदास जी महाराज फरमाते हं—

'शरणानंदजी की वाणी में युक्तियों की, तर्क की प्रधानता है। उनको कोई काट नहीं सकता। मुझे भी तर्क पसंद है। परंतु मैं शास्त्रविधि को साथ रखते हुए तर्क करता हूँ। शरणानंदजी की पुस्तकों में यह बात देखने में आती है कि वे बोध कराना चाहते थे, सिखाना नहीं चाहते थे। उनकी बातें गोली की तरह असर करती हैं। वे अपनी बात को परोक्ष रूपसे कहते थे, जिससे साधक कोरी बातें न सीख जाय। **वे 'अभ्यास' न कराकर 'स्वीकार' कराते थे, बौद्धिक व्यायाम न कराकर 'अनुभव' कराते थे।'**

'कर्म' सकाम निष्काम नहीं, 'कर्ता' सकाम निष्काम होता है

स्वामी रामसुखदासजी महाराज आगे फरमाते ह—'शरणानंदजी के मतानुसार सुखी-दुखी होना मूर्खता का फल है, प्रारब्ध का फल नहीं। विवेक अनादि है और बुद्धि में आता है। वह अविनाशी परमात्मा का प्रकाश है। उनके मतानुसार 'कर्म' सकाम या निष्काम नहीं होता प्रत्युत 'कर्त्ता' सकाम या निष्काम होता है। मुझे उनका मत पूरी तरह मान्य है। कर्मयोग की बात मैंने उनसे ही सीखी है।'

आम आदमी के काम का

स्वामीजी के मतानुसार—'हम कोई बात कहते हैं तो हमें प्रमाण की आवश्यकता रहती है पर शरणानंदजी को प्रमाण की आवश्यकता है ही नहीं। उन्होंने जो लिखा है उससे आगे कुछ है ही नहीं—ऐसी मेरी धारणा है। **उनकी बातें आम आदमी के काम की बातें है। सब मनुष्य उन्हें मान सकते हैं।** उनकी युक्तियों का किसी से विरोध नहीं है।.....'

भगवान् की हम पर बड़ी कृपा

'शरणानंदजी हमें मिल गये, उनकी पुस्तकें पढ़ने को मिल गईं—यह भगवान् की हम पर बड़ी कृपा है।' □□

(6)

स्वामी शरणानंद एवं मानव सेवा संघ का कालजयी, अकाट्य व अपौरुषेय साहित्य

—प्रो. केसरी कुमार

स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज एक शास्त्र-पार के ऋषि थे। आप द्वारा किसी प्रकार का शास्त्रीय विवेचन नहीं हुआ है। आपकी वाणी में, आपके गुरुदेव का यह वाक्य, कि—

ठहरी हुई बुद्धि में श्रुति का
ज्ञान स्वतः प्रकट होता है

पूर्णरूपेण साकार हुआ है। आप द्वारा प्रदत्त साहित्य कालजयी, अकाट्य व अपौरुषेय है।

मौलिक, अपूर्व व विवेक सम्मत

उदाहरण के लिए दुःख विषय को ही लें। दुःख के विषय में आज तक, एकाध को छोड़कर, जितने भी पूर्व दार्शनिकों व विचारकों ने विवेचना की है, उससे दुःख की वीभत्सता व भयानकता पर ही व्यक्ति का ध्यान आकृष्ट होता है। इसीलिए दुःख कोई पसंद नहीं करता, उससे सबको ड़र लगता है। सभी दुःख में भी सुख के लिए प्रतीक्षारत रहते हैं।

शरणानंदजी महाराज ने दुःख व सुख दोनों को समान महत्व देते हुए उन्हें परिवर्तनशील परिस्थिति मात्र की संज्ञा दी है। मानव के विकास में दोनों का समान महत्व बताया है। आपका फरमाना है कि—

मानव का जो विकास सुखमय परिस्थिति में होता है—सेवा के द्वारा, वही विकास दुःखमय परिस्थिति में होता है—त्याग

(कामनाओं के त्याग) के द्वारा। इन दोनों ही के सदुपयोग से मानव सुख-दुःख से अतीत के जीवन में प्रवेश पाता है, जो कि मानव की मूल मांग है।

दुःख का मंगलकारी स्वरूप

दुःखहारी हरि ही दर्शन देते हैं—दुःख के रूप में

इससे भी आगे जाकर स्वामीजी महाराज ने दुःख की महिमा का वर्णन करते हुए मानव को पूरी तरह से दुःख के प्रति निर्भय ब आश्वस्त कर दिया है। आप कहते है—**जो अनंत सभी का परम सुहृद है, उसीके विधान से दुःख आता है—मानव की जड़ता हरने के लिए। अनंत का विधान मंगलमय है उसमें क्रोध तथा प्रतिशोध लेशमात्र भी नहीं है।**

सुख लोलुपता में फंसकर जब हम अपने लक्ष्य को भूल जाते हैं तो स्वयं दुःखहारी हरि ही दुःख के रूपमें हमें दर्शन देते हैं और हमें सचेत बनाकर सदा-सदा के लिए दुःख रहित कर देते हैं। इस दृष्टि से दुःख और दुःखहारी हरि एक ही हैं।

समुचित समाधान

दूसरे शब्दों में कहें तो मानव सेवा संघ के दुःख दर्शन ने साहित्य-शास्त्र के अब तक के एक असमाधेय प्रश्न के लिए समुचित समाधान प्रस्तुत किया है।

इसी प्रकार स्वामी जी महाराज ने मन, बुद्धि, विवेक, सेवा, त्याग, प्रेम, शरीर, जगत्, योग, बोध, गुरु, आत्मा, ब्रह्म, पूजा, भजन, भक्ति, साध्य,साधन व साधक आदि विषयों की ऐसी सर्वांगीण व्याख्या की है जो मौलिक अकाट्य व विवेक सम्मत है। इनमें से हर एक गहन अध्ययन व शोध का विषय बन गया है। भावी पीढ़ी के लिए ये विषय निधि के रूपमें काम करेंगे।

साहित्य के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव

हिन्दी साहित्य स्वामीजी जैसे चिंतक-मनीषियों का ऋणी है, जिन्होंने ज्ञान और प्रेम को परस्पर विलोम न मानकर उनमें नित्य योग माना। स्वामी जी के शब्दों में—

प्रेम और ज्ञान दोनों का नित्य योग है। ज्ञान में से प्रेम को निकाला गया तो शून्यवाद बन गया। प्रेम में से ज्ञान को निकाला गया तो कामुकता आ गई।

सुभाषितों का अक्षय कोष

स्वामी जी द्वारा प्रदत्त साहित्य सुभाषितों का अक्षय कोष है। कुछ बानगी देखिए—

दीक्षा की पाठशाला एकांत और पाठ मौन है

◆

शिक्षा अनंत से प्राप्त सौन्दर्य है और दीक्षा अनन्त का प्रकाश है

◆

सुख का भोगी जीता है राग लेकर, मरता है पश्चात्ताप लेकर

◆

विवेक परमात्मा का प्रकाश है जो मानव मात्र को प्राप्त रहता है

◆

ज्ञान में दो एक होते हैं, भक्ति में एक दो होते है

◆

दुःखी व्यक्ति ही दुःख देता है, भय-ग्रस्त ही भय दिखाता है

◆

सुख-दुःख को दबा देता है, आनंद दुःख को खा जाता है

◆

अपना सुख बढ़ता है, प्राप्त सुख बांटने से
अपना दुःख घटता है दूसरों का दुःख बंटाने से

◆

आपमें किसी दुःखी का दुःख समा जाए तो फिर आपको
प्राप्त सुख का आप भोग नहीं कर सकते

◆

मूल भूल है ''यह'' को ''मैं'' मानना
पंड़ितों की भूल है, ''ब्रह्म'' को ''मैं'' मानना

◆

जब नेता सरकार बन गए
तब देश नेतृत्व विहीन हो गया

इसी प्रकार स्वामी जी द्वारा प्रदत्त सुभाषित अगणित हैं जिनके माध्यम से आपके जीवन के समग्र व सर्वांगीण दृष्टिकोण की झांकी के दर्शन होते हैं। इन सुभाषितों ने मध्ययुगीन साहित्य के प्रति बदलाव को उत्प्रेरित किया है।

(मानव सेवा संघ की रजत जयंति स्मारिका में प्रकाशित ''साहित्य का नया निकष'' लेख से उद्धृत)

◆◆

संसार मोह का क्षेत्र नहीं
सेवा का क्षेत्र है

(7)

मानव सेवा संघ का दर्शन

दीन बंधु अपने हैं

—स्वामी श्री रामशरणजी महाराज

सौजन्य : भरत दूगड़, कोलकाता

मानव सेवा संघ का दर्शन, विनम्र निवेदित है।
बहु संक्षिप्त विहाग राग में, सविनय प्रस्तुत है।

सुनो साधकों यह साधन, सत्यं, शिव, सुंदर है।
साधन सुन्दर, ज्ञान समन्दर, सब कुछ अंदर है।

ज्ञानपूर्वक अनुभव करलो, अपना तो कुछ है नहीं।
दृढ़तापूर्वक निर्णय करलो, वांछित भी कुछ है नहीं।

आस्था से विश्वास करो, अपना तो एक वही ह।
जग में जो कुछ मिला हमें, वह सबभी उसका है।

प्रेम जगाने की सद्विधि यह, दीन बंधु अपने हैं।
शरणागत का साधन है यह, हम प्यारे प्रभु के हैं।

शरण संत-मुख से श्रुत वाणी, जो लिख पाया है।
"लाल कन्हैया" ज्यों का त्यों वह, गाकर दोहराया है।

□□

चित्तशुद्धि
भौतिक दृष्टि से
परिस्थिति के सदुपयोग में,
अध्यात्मदृष्टि से
परिस्थितियों के अभाव में, और
आस्तिक दृष्टि से,
परिस्थितियों के द्वारा
प्रेमास्पद की पूजा में निहित है

IV
सत्संग-निधि व प्रश्नोत्तरी

मुक्ति में भक्ति और भक्ति में मुक्ति
ओतप्रोत है, कारण कि
ज्ञान और प्रेम का विभाजन नहीं होता

(1)

प्रेमी (आशिक) के लक्षण

स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज अक्सर निम्न चार लाइनें गुनगुनाया करते थे—

इन्तज़ारी, बेकरारी, बेसबर,
आह सर्दी, रंग ज़र्दी, चश्मतर।
कम खुरो, कम गुफतनो, ख्वाबे हराम,
आशिकारां नव निशां ऐ पिसर!!

अर्थ :- हे पुत्र! (पिसर) प्रेम में विह्वल आशिक के नौ लक्षण बताए गए हैं :-

इन्तज़ारी	हर समय प्रतीक्षारत रहना
बेकरारी	बेचैन रहना
बेसबर	असंतुष्ट रहना
आह सर्दी	ठंड़ी आहें भरना
रंग ज़र्दी	शरीर का रंग पीला पड़ जाना
चश्मतर	आंखों में अश्रुपात होना
कम खुरो	भूख लगना कम हो जाना
कम गुफतनो	बातचीत करना कम हो जाना
ख्वाबे हराम	नींद नहीं आना

□□

(2)
रांची में सत्संग

–दुर्गाप्रसाद राजगढ़िया

1970 के अगस्त में मैं स्वास्थ्य सुधार के लिए रांची गया था एवं वहाँ मारवाड़ी आरोग्य भवन में ठहरा था कि पता चला पूज्य श्री शरणानंदजी स्वामीजी महाराज कल रांची पधार रहे हैं एवं 21 दिनों तक सत्संग का कार्यक्रम है। मैं दूसरे दिन ट्रेन के आने के समय पर स्टेशन पहुँच गया एवं पूज्य श्री गंगाप्रसादजी बुधिया ने स्वामीजी महाराज से मेरा परिचय कराया।

पूज्य स्वामीजी महाराज 'निर्माण निकेतन' कांके में ठहरे थे। उनक । सत्संग दिन में दो बार होता था। मै दोनों बार के सत्संग में बराबर उपस्थित होता था।

प्रातःकालीन सत्संग में स्वामीजी महाराज ने सात दिनों तक कर्म के विषय में, सात दिनों तक ज्ञान के विषय में एवं सात दिनों तक प्रेम के विषय पर प्रकाश डाला।

कर्म के विषय में स्वामीजी ने बताया कि सबसे बड़ी सेवा है— किसी का बुरा न करना, किसी का बुरा न चाहना और किसी को बुरा न समझना। इस विषय पर खूब प्रकाश डाला। 6 दिन बाद मैंने स्वामीजी से कहा कि मेरा एक प्रश्न है, मुझे समय चाहिए। कहा कि आज साढ़े तीन बजे आ जाओ। मैं ठीक समय पर पहुँच गया। माता देवकीजी ने सबको कमरे से बाहर जाने को कहा कि दुर्गाप्रसाद को समय दिया हुआ है। उन्हें बात करने दो। हम दोनों (मैं और पूज्य स्वामीजी) कमरे में रह गये। आधा घंटा का समय था।

पूज्य स्वामीजी	क्या बात है?
मैं	स्वामीजी महाराज! आपने बताया कि किसी का बुरा मत करो। बहुत अच्छी बात है किसी का बुरा नहीं करना चाहिए। और आपने कहा किसी का बुरा नहीं चाहना चाहिए, यह और भी अच्छी बात है किन्तु आपने कहा किसी को बुरा नहीं समझना चाहिए।
स्वामीजी	हां ! साधक यहाँ अटक जाता है। अच्छा भई, यह बताओ कि कोई कितना भी बुरा क्यों न हो, क्या सर्वांश में बुरा हो सकता है?
मैं	नहीं हो सकता है?
स्वामीजी	तब किसी को बुरा समझना .....
मैं	उसके साथ अन्याय है।

मुझे समाधान मिल गया। जब कोई सर्वांश में बुरा हो ही नहीं सकता तब किसी को बुरा समझने का हमें क्या अधिकार है? यहाँ स्वामीजी महाराज के सत्संग में मैं सतरह दिनों तक शामिल होता रहा। बहुत आनंद रहा। जब स्वामीजी महाराज प्रेम के विषय में बोलते थे तो हृदय अनिवर्चनीय, अलौकिक आनंद से भर जाता था।

एक बार स्वामीजी महाराज ने सत्संग में कहा कि —

किशोरी जी कहती हैं — जोहि-जोहि प्यारो करे सोई-सोई मोहि भावे। पूर्ण समर्पण—कितना सुन्दर भाव है। फिर कहा, और आगे कहती है - जोहि जोहि मोहि भावै सोइ-सोइ प्यारो करै। अहा! इस भाव की कहीं तुलना है?

सतरह दिनों बाद जब पुरुलिया से कड़ा तकादा गया तब मुझे आना पड़ा। मैंने स्वामीजी से कहा मुझे तो जाना पड़ेगा, चार दिनों का सत्संग छूट रहा है। आप पुरुलिया पधारिये। बोले अभी तो

समय नहीं है। सब कार्यक्रम निश्चित हो चुका है — तुम पत्र लिखना, 3-4 महीने बाद समय हो सकता है।

मैंने आते समय प्रणाम किया तो आशीर्वाद दिया - 'भगवान के हो कर रहो, भगवान का काम करते रहो, भगवान् में तुम्हारा नित्य वास है।'

मैं तो निहाल हो गया। इस आशीर्वाद की गांठ बांध ली।

□□

पी.एन.घोष स्ट्रीट
पुरुलिया-723101 (प. बंगाल)

ज्यों संड़ासी लोह की, छिन पानी छिन आग।
त्यों सुख-दुःख हैं जगत् के, सहजो तू मत पाग॥

हे भाई! जिस प्रकार लोहे की संड़ासी को कभी पानी के व कभी आग के संपर्क में आना पड़ता है। वह दोनों को सहते हुए अपने मूल स्वरूप (लोहेपन) में स्थित रहती है। उसीप्रकार तू भी आने-जाने वाले सुख-दुःख को समान रूप से समझ। उनमें पाग (निमज्जित) मत होवे। अपने मूल स्वरूप (इंसानियत) को मत छोड़।

□□

-सहजो बाइ

(3)

ऊपर जैसा दीखता है भीतर वैसा ही है क्या?

कोई व्यक्ति किसी युवती को बड़े गौर से देख रहे थे! बड़े गौर से!! युवती ने भी देख लिया। समझदार थी, बोली—

जो गैरों की सूरत पर होते हैं शैदा,
वो दुनियां में रंजो-अलम देखते हैं॥

देखने वाले भी कम समझदार नहीं थे। युवती की बात सुनकर बोले—

न तुझसे है मतलब, न सूरत से तेरी,
मुसब्बर की हम तो, कलम देखते हैं॥

सोचने की बात यह है कि शरीर और संसार की सुंदरता को देखकर उसके कारीगर (बनानेवाले) पर दृष्टि चली जाय तो उसका भोग बनेगा क्या? नहीं बनेगा न! तो फिर यहीं से शुरू करो —ताकि शरीर में असत्यता व असुन्दरता का भास हो जाए।

काम की उत्पत्ति का कारण

लोग गलत कहते हैं कि साहब, अमुक स्त्री को देखकर काम पैदा हो गया अथवा कोई स्त्री कहे कि अमुक पुरुष को देखकर काम पैदा हो गया। ऐसा नहीं होता। काम की उत्पत्ति का कारण है अपने शरीर की सत्यता और सुन्दरता का भान। जिसको अपने शरीर में सत्यता और सुन्दरता दिखाई देती है, उसीमें काम पैदा होता है। तब कहता है—

अच्छा! अब इसको ऐसे कपड़े पहनाओ ऐसे आभूषण पहनाओ आदि।

तो जब शरीर सत्य मालूम होगा तो कपड़े भी सत्य मालूम होंगे,

आभूषण भी सत्य मालूम होंगे और फिर परिस्थिति चाहिए तो वह भी सत्य मालूम होगी।

इस प्रकार शरीर की सत्यता, सुन्दरता के द्वारा ही सारे संसार की सत्यता और सुंदरता में हम आबद्ध हो जाते हैं। और शरीर कैसा है, यह तो आप जान सकते हैं न! जी!! देख रहे हैं कि नहीं!!!

काम नाश के मूल उपाय

अगर आप भीतर की चीज को देखते रहें, और ऊपर की चीज के प्रभाव को मिटा दें, तब सत्यता रहेगी, सुन्दरता रहेगी? क्या राय है? न सत्यता रहेगी न सुन्दरता रहेगी। अगर काम का सर्वांश में नाश करना है तो अपने शरीर की सत्यता और सुन्दरता पर विचार करो। अगर शरीर सत्य और सुन्दर न सिद्ध हो तो काम का नाश हो जायगा कि नहीं? एक तो यह मार्ग है, विचार का मार्ग है। और एक दूसरा मार्ग यह है कि अगर आपको बिना देखे प्रभु में अविचल आस्था, श्रद्धा, विश्वास हो जाय और उसका प्यार पैदा हो जाय, **तो प्यार से भी काम नाश होता ह**। इस प्रकार प्यार से इसका नाश होता है और विचार से भी नाश होता है। बाकी और किस-किस प्रकार से काम नाश होता है वे तो अनेक उपाय हैं, पर मूल यही दो उपाय हैं।

काम नाश से ही राम की प्राप्ति

तो प्यार करना भी आपको आता है और विचार करना भी आपको आता है। जब प्यार करना और विचार करना दोनों आता है तो शरीर और संसार की सत्यता और सुन्दरता का नाश हो सकता है, नीरसता मिट सकती है। और जो वास्तव में सत्य है, जो वास्तव में सुन्दर है—सत्यम् शिवम् सुन्दरम्—यानि जिसका कभी नाश नहीं होता, जो कल्याण-स्वरूप है, जिसमें अनन्त सौन्दर्य है, उसकी मांग से भी काम नाश हो जाता है और संसार की वास्तविकता का अनुभव करने से भी काम नाश हो जाता है। **और काम नाश होने से राम मिल जाता है, इसमें कोई संदेह की बात नहीं है।**

□□

(4)

(i)

आत्मरति अथवा प्रभु प्रेम

–शादीलाल वर्मा

'जगत् सत्य है अथवा मिथ्या—साधक को इस पचड़े में नहीं पड़ना चाहिए।' ऐसा एक मर्तबा स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज ने फरमाया था।

आपने कहा कि—'जगत् के साथ नित्य संबंध नहीं रह सकता यह सबका अपना निज ज्ञान है। नित्य संबंध तो एक मात्र अविनाशी हरि के साथ ही निभ सकता है जो सभी का अपना है व अपने में है। जो संबंध नित्य नहीं रह सकता उसको टिकाए रखने की सोचना असंभव को संभव बनाने जैसा है।'

जिन धातुओं से जगत् बना है उन्हीं धातुओं से वस्तुएं निर्मित हैं। अत: ईमानदारी इसी में है कि वस्तुओं को ज़गत् की सेवा में लगावें, सुख-भोग में नहीं। यहाँ स्थायीरूप से रहने की जगह नहीं। अत: यहाँ तो जगत् के प्रति कर्तव्य पूरा करके शीघ्रातिशीघ्र निवृत्त हो जाना है। मिली हुई वस्तुओं व व्यक्तियों से सुख भोग के कारण ही हमारे में जगत् के प्रति राग की उत्पत्ति हुई है, जिसकी निवृत्ति सुख देने व सेवा करने से ही हो सकती है।

वीतराग संतों का फरमाना है कि राग की निवृत्ति होते ही जगत् की प्रतिति स्वत: ही अपने निज स्वरूप में विलीन होकर आत्मरति अथवा प्रभु प्रेम में परिवर्तित हो जाती है। जिसके होते ही मानव कृत-कृत्य हो जाता है। □□

(ii)

मूल भूल

स्वामी महाराज फरमाते थे कि दरिद्र वही है जिसकी धन-लिप्सा नहीं मिटी—वह करोड़पति हो या भिखारी। धन-लिप्सा हमें भिखारी बना देती है। **जो लोग मिली हुई वस्तुओं को जगत् की सेवा में लगाते हैं वे ही अभावों से मुक्त होकर करने के राग से निवृत्त होते हैं व अपने निज स्वरूप में स्थित होते हैं। इसीलिए स्वामीजी ने फरमाया था कि —**

कुछ न चाहो, काम आजाओ

अचाह पद ही तृप्ति तथा संतोष का प्रतीक है। जिसे संतोषरूपी धन प्राप्त है वह स्वर्ग-सुख की कामना भी ठुकरा देता है। **कामना का अर्थ है अपने निज स्वरूप को छोड़कर, रूप-जगत् की ओर प्रवृत्त होना माने जगत् के संबंधों के माध्यम से अपने अभाव दूर करने की सोचना।** अपने निज स्वरूप की विस्मृति ही हमें रूप-जगत् की ओर आकृष्ट करती है। जिससे हम अभावों में आबद्ध हो जाते हैं। इन अभावों को जगत् की वस्तुओं, व्यक्तियों व परिस्थितियों से मिटाना चाहते हैं, **यही मूल भूल है।** जगत् तो स्वयं ही अभाव ग्रस्त है।

जगत् की तो सेवा करके उसके अधिकार की रक्षा करनी है। उससे चाहना कुछ नहीं है।

(iii)

परम मंगलकारी आश्वासन

एक मर्तबा स्वामीजी महाराज ने फरमाया—'देखो भाई! जगत् में व्यक्ति के सामने दो ही परिस्थितियां होती हैं—सुखमय या दुःखमय। दोनों ही परिस्थितियां परिवर्तनशील हैं अतः उनसे संबंध

स्थापित नहीं करना चाहिए बल्कि उनका तो सदुपयोग करना चाहिए। न तो सुखमय परिस्थिति से हर्षित हों, न दुःखमय से भयभीत। सुख का सदुपयोग होता है सेवा में व दुःख का सदुपयोग त्याग में। सुखी हो या दुखी, सदुपयोग करने से उसे वही जीवन मिलता है जो आजतक किसी भी महामानव को मिला है।' **हमारे लिए कितना मंगलकारी आश्वासन है यह?**

तो, वीतराग संत ने परिस्थितियों के सदुपयोग पर बल दिया है उनसे प्रभावित होने पर नहीं। आपने मानव स्वभाव के आधार पर ही तर्क सम्मत व विवेक सम्मत सूत्र दिया है कि—**अपना सुख बढ़ता है अपना सुख बांटने से तथा अपना दुःख घटता है दूसरों का दुःख बंटाने से। ऐसा करने में मानव मात्र स्वाधीन ह।**

□□

ईंट, पत्थर, चूने से बनी ईमारतें मानव सेवा संघ नहीं है। मानव सेवा संघ तो एक प्रकाश है जिसका प्रस्फुटन वीतराग संत स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के माध्यम से सारी सृष्टि को रोशन करने के निमित्त हुआ है। प्रणेता संत ने इस प्रकाश को मानव मात्र की अनुभूति से संबोधित किया है।

-शादीलाल वमा

(5)

प्रश्नोत्तरी

(स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज द्वारा जीवन संबंधी विविध एवं महत्वपूर्ण प्रश्नों पर दिए गए उत्तर)

प्रश्न—स्वामीजी! हम दूसरों के दोष क्यों देखते है?

उत्तर—क्योंकि हमें अपने दोष नहीं दीखते।

प्रश्न—अपने दोष कैसे देखें और उनको कैसे मिटावें?

उत्तर—गुण और दोष देखने की शक्ति प्रत्येक मनुष्य में विद्यमान है। जिस योग्यता से हम दूसरों के दोषों को देखते हैं, उसी योग्यता से अपने दोषों को देखें। अपने दोषों को ठीक-ठीक देख लेने पर गहरा दुःख होता है। गहरा दुःख होने से दोष दूर हो जाते हैं। दूसरों के दोष और अपने गुण देखने से मनुष्य का विकास रुक जाता है और अभिमान पुष्ट होता है।

प्रश्न—पूजा का क्या अर्थ है?

उत्तर—संसार को भगवान् का मानकर उन्हीं के प्रसन्नतार्थ संसार से मिली हुई वस्तुओं को संसार की सेवा में लगा देना ही पूजा है।

प्रश्न—स्तुति, उपासना तथा प्रार्थना का क्या अर्थ है?

उत्तर—प्रभु के अस्तित्व एवं महत्त्व को स्वीकार करना ही स्तुति है। प्रभु से अपनत्वका सम्बन्ध स्वीकार करना उपासना है और प्रभु-प्रेम की आवश्यकता का अनुभव करना प्रार्थना है।

प्रश्न—भगवत्प्राप्ति में विघ्न क्या है?

उत्तर—संसार को पसन्द करना ही सबसे बड़ा विघ्न है।

प्रश्न—दुःख क्यों होता है?

उत्तर—सुख-भोग से ही दुःखरुप-वृक्ष उत्पन्न होता है। ऐसा कोई भी दुःख नहीं है, जिसका जन्म सुख-भोग से न हुआ हो।

प्रश्न—दुःख और सुखका परिणाम क्या है?

उत्तर—जो सुख किसी का दुःख बनकर मिलता है, वह मिटकर कभी-न कभी बहुत बड़ा दुःख हो जाता है और जो दुःख किसी का सुख बनकर मिलता है, वह मिटकर कभी-न कभी आनन्द प्रदान करता है। प्राणी सुखसे बँधता है और दुःख से छूट जाता है। सुख से दुःख और दुःख से आनन्द मिलता है।

प्रश्न—त्याग क्या है?

उत्तर—संसार की अनुकूलता तथा प्रतिकूलता पर विश्वास का अत्यन्त अभाव ही सच्चा त्याग है, क्योंकि अनुकूलता से राग और प्रतिकूलता से द्वेष का जन्म होता है। राग-द्वेष का अभाव हो जाना ही त्याग है। जिस प्रकार लड़की—पिता के घर कन्या, ससुराल में बहू और पुत्रवती होने पर माता कहलाती है, उसी प्रकार त्याग ही प्रेम और प्रेम ही ज्ञान कहलाता है। त्याग होने पर आस्तिकता आ जाती है, तब त्याग प्रेम में बदल जाता है और आस्तिकता का यथार्थ अनुभव होने पर प्रेम ही ज्ञान में बदल जाता है।

प्रश्न—माँग कैसे पूरी हो सकती है?

उत्तर—माँग तीन प्रकार से होती है—कामना को लेकर, लालसा को लेकर तथा जिज्ञासा को लेकर। भोगों की कामना, सत्य की जिज्ञासा तथा प्रभु-प्रेम की लालसा। जिज्ञासा कहते हैं जानने की इच्छा को। लालसा कहते हैं प्रभु को पाने की इच्छा को और कामना कहते हैं भोगों की इच्छा को। जिसमें भोग की कामना, सत्य की जिज्ञासा और परमात्माकी लालसा—ये तीन बातें होती हैं, उसे "**म**" कहते हैं। कामना भूल से उत्पन्न होती है, उसकी निवृत्ति

हो सकती है। जिज्ञासा की पूर्ति हो जाती है, फिर प्रभु की प्राप्ति हो जाती है। अतः कामना की निवृत्ति, जिज्ञासा की पूर्ति और परमात्मा की प्राप्ति मनुष्य को हो सकती है।

प्रश्न—प्रत्यक्ष जगत् की तरह भगवत्सत्ता पर किस प्रकार विश्वास हो? इसका सुगम उपाय बताने की कृपा करें।

उत्तर—इन्द्रियों के ज्ञान में सद्भाव एवं विषयों की वासना तथा शरीर में अहं-बुद्धि—इन तीन कारणों से जगत् की सत्ता प्रत्यक्ष प्रतीत होती है। इन तीनों कारणों के मिट जाने पर भगवत्सत्ता पर विश्वास हो जाता है।

प्रश्न—विश्वास कैसा होना चाहिये और वह कैसे हो?

उत्तर—हमने साधारण तौर पर यह सुन रखा है कि विष खाने से आदमी मर जाता है। इतनी-सी बात पर यह दृढ़ विश्वास हो गया कि किसी भी स्थिति में विष नहीं खाना है।

कोई अत्यन्त लोभी हो, दरिद्र हो, दर-दर भटकता फिरता हो, उसे यदि कहा जाय कि तुमको एक हजार रुपये देंगे, तुम एक तोला विष खा लो, तो भी वह मनुष्य विष खाना स्वीकार नहीं करेगा। कारण स्पष्ट है कि उसे विश्वास है कि विषपान से मनुष्य की मृत्यु हो जाती है।

विषयों के लिये सारे शास्त्र-संत कहते हैं कि यह महान् विष है। इसका सेवन करने से मनुष्य बार-बार जन्मता-मरता है। विष को खाने से तो एक बार ही मृत्यु होती है, परंतु विषयों के भोगनेवाले को तो अनेकों बार मरना पड़ता है। विष को खाकर तो मनुष्य बच भी सकता है, परंतु भोगी को तो लाख-चौरासी में जाना ही पड़ेगा। इस बात को हमनें ग्रन्थों में पढ़ा है, संतों के मुख से बार-बार सुना है और आँखों से देखा है कि विषयी पुरुषकी क्या दुर्दशा हो जाती है। फिर भी मन भोगों से नहीं हटता तो बताओ, इससे बढ़कर मूर्खता क्या होगी?

भगवान् का स्मरण करने से जीव का कल्याण होता है। यह बात

भी हम अच्छी तरह से जानते हैं। फिर भी मन भगवान् में नहीं लगता, तो इससे बढ़कर और नास्तिकता क्या होगी? आश्चर्य इस बात का है कि हम महामूर्ख तथा नास्तिक होकर भी स्वयं को आस्तिक एवं बुद्धिमान मानते हैं।

प्रश्न—स्वामीजी! सभी शास्त्र और उपदेशों का सार समझाने की कृपा करें?

उत्तर—सभी शास्त्रों एवं उपदेशों का सार है—भगवान का भजन और भजन बनता है जीवन में सेवा, त्याग तथा प्रेम आने से। अगर मनुष्य के जीवन में सेवा, त्याग और प्रेम आ गया, तो समझ लो कि उसने सब शास्त्रों का सार समझ लिया। यदि मनुष्य के जीवन में सेवा, त्याग और प्रेम नहीं आया, तो उसने सब कुछ जानकर भी कुछ नहीं जाना। कारण कि सेवा, त्याग एवं प्रेम का आ जाना ही सच्चा भजन है।

देखो! जप-तप, कथा-कीर्तन आदि जो मुक्ति प्राप्ति के साधन बताये हैं, परंतु भोगी मनुष्य के लिये ये सब जीविका के ही साधन बन जाते हैं। कोई मनुष्य बहुत जप-तप करके आकाश में उड़ने की शक्ति प्राप्त कर ले, पानी पर चलने की सिद्धि प्राप्त कर ले, मुर्दे को जीवित और जीवित को शाप देकर भस्म करने की शक्ति भी प्राप्त कर ले, परंतु निर्दोष, निष्काम, असंग और शरणागत हुए बिना मनुष्य का कल्याण नहीं हो सकता। इनकी प्राप्ति में किसी बाह्य-सामग्री की आवश्यकता नही है।

प्रश्न—प्रेम की प्राप्ति कैसे हो?

उत्तर—सब ममताओं को त्याग कर केवल प्रभु को अपना मानो, इसीसे प्रेम की प्राप्ति होगी। एक मात्र प्रभु को अपना मानना और कुछ नहीं चाहना—यही प्रेम प्राप्त करने का उत्तम साधन है। बहुत तप तथा यज्ञ करने से प्राप्ति नहीं होती। तप तो हिरण्यकशिपु और रावण ने भी

बहुत किये थे, परंतु उनको प्रेम की प्राप्ति नहीं हुई। एक सहस्र यज्ञ करके ऐन्द्र पद पाकर इन्द्र स्वर्ग पर राज करता है, किंतु उसे भी प्रेम की प्राप्ति नहीं होती, ध्यान और चिन्तनसे भी प्रेम की प्राप्ति नहीं होती, इससे तो चित्त की शुद्धि होती है। **प्रेम की प्राप्ति का मुख्य साधन प्रभु से अपनी आत्मीयता का होना है।** आत्मीयता होती है अन्य सभी ममताओं के त्याग से। धन भी मेरा और प्रभु भी मेरा—दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं। अपना मान लेने पर प्रीतिका प्रादुर्भाव होना अनिवार्य है। सब इस बात को जानते हैं। अपना शरीर रोगी हो तब भी प्यारा लगता है। अपना पुत्र काना हो तब भी प्यारा लगता है। अपना जीर्ण-शीर्ण मकान भी प्यारा लगता है। फिर प्रभु तो सर्वगुणसम्पन्न, सुख के भण्डार और सौन्दर्य की निधि हैं। हम भगवान को अपना मान लें और प्रीति जाग्रत न हो—यह बात कैसे हो सकती है?

प्रश्न—क्या प्रभु हैं? यदि हैं तो उनके होने का क्या प्रमाण है?

उत्तर—भक्त-वाणी, संत-वाणी तथा ग्रन्थों के आधार पर हम मानते हैं कि प्रभु हैं। उनके होने का प्रमाण यह है कि वे शान्ति, स्वाधीनता एवं प्रेम की माँग के रूप में मानव में विद्यमान हैं। प्रभु परम उदार, परम शान्त, परम प्रेमी और परम स्वाधीन हैं। ये सब बातें माँग के रूप में हर मानव में विद्यमान हैं। इस माँग का होना ही प्रभु के होने का प्रमाण है।

प्रश्न—भगवान के अपने में मौजूद होते हुए भी हम उन्हें क्यों नहीं देख पाते हैं?

उत्तर—चूँकि हम भगवान की आवश्यकता अपने जीवन में महसूस नहीं करते, इसलिये वे हमें दिखायी नहीं देते।

प्रश्न—हम भगवान की आवश्यकता कैसे महसूस करें?

उत्तर—अपने जाने हुए असत् का त्याग करने से हम अपने जीवन

में भगवान् की आवश्यकता अनुभव कर सकते हैं।

प्रश्न—क्रोध और मोह से कैसे छुटकारा पाया जाय?

उत्तर—अपने अधिकार के त्याग और दूसरों के अधिकार की रक्षा करने से क्रोध तथा मोह से छुटकारा मिल सकता है।

प्रश्न—राग-द्वेष का क्या अर्थ है?

उत्तर—भूल को भूल जानकर भी करना अर्थात् यह जानते हुए भी कि कोई भी संसार में अपना नहीं है, फिर भी किसी को अपना मानना राग है और जो वास्तव में अपना है, उसे अपना न मानना द्वेष है।

प्रश्न—मरने से डर क्यों लगता है?

उत्तर—प्राणशक्ति के नाश हो जाने एवं वासनाओं के शेष रह जाने का नाम मृत्यु है। यदि प्राण शक्तिके रहते हुए सर्व-वासनाओं का नाश हो जाय तो मरने से डर नहीं लग सकता।

प्रश्न—जो साधक ईश्वर को नहीं मानता, उसके लिये क्या साधन है?

उत्तर—उस साधक को बुराई रहित होकर अचाह होना चाहिए। बुराई रहित होने से व्यक्ति भला हो जाता है और जब वह भलाई के फल तथा अभिमान को छोड़ देता है तो मुक्त हो जाता है।

बुराई रहित होने का तात्पर्य—किसी को भी बुरा न समझना, किसी का भी बुरा न चाहना तथा किसी का भी बुरा न करना है।

प्रश्न—हमारे साधन सीमित हैं। हम सबकी सेवा कैसे कर सकते हैं?

उत्तर—मन, वचन और कर्म से बुराई रहित होने से विश्व की सेवा, बुराई रहित भलाई करने से समाज की सेवा, भलाई का फल और अभिमान छोड़नेसे अपनी सेवा एवं प्यार से प्रभु की सेवा होती है। इन सब बातों को करने में मानव मात्र स्वाधीन है।

प्रश्न—कर्तव्य-विज्ञान, अध्यात्म-विज्ञान एवं आस्तिक-विज्ञान का क्या अर्थ है?

उत्तर—वस्तु, योग्यता, समर्थ्य के द्वारा संसार की सेवा करना कर्तव्य-विज्ञान है। सेवा के फल और अहं को छोड़ना अध्यात्म-विज्ञान है तथा प्रभु की प्रसन्नता के लिये बिना किसी शर्त के सब प्रकार से उन्हीं का होकर उनको प्यार करना आस्तिक विज्ञान है।

बोलचाल की भाषा में—जगत् हमारी आवश्यकता अनुभव करे, यह कर्तव्य-विज्ञान, हमें जगत् की आवश्यकता न रहे, यह आध्यात्म-विज्ञान और हमें परमात्मा अच्छे लगें, यह आस्तिक-विज्ञान है।

प्रश्न—प्यार कैसे किया जाय?

उत्तर—देखो तो प्यार से, बोलो तो प्यार से, सुनो तो प्यार से। हर कार्य को प्यारे का जानकार प्यार से करो। यही प्यार करने का सुगम उपाय है।

प्रश्न—बुराई रहित होने का क्या उपाय है?

उत्तर—ईश्वर के नाते सभी को अपना मानना बुराई रहित होने का सुगम उपाय है, क्योंकि अपनों के साथ कोई बुराई नहीं करता।

प्रश्न—भय और दरिद्रता का नाश कैसे हो?

उत्तर—ममता छोड़ने से भय का और कामना छोड़ने से दरिद्रता का नाश हो जाता है।

प्रश्न—अमर-जीवन की प्राप्तिका सरल उपाय क्या है?

उत्तर—मरने से डरो नहीं और कुछ चाहो नहीं, तो मरने से पहले अमर-जीवन मिलेगा। इसमें संदेह नहीं है। इस संत-वाणी पर अगर विश्वास कर सको, तो कर लो।

देखो! जब हम असमर्थ थे, तब भी किसी ने शरीर की रक्षा की थी। जब कुछ सामर्थ्यवान् हुए तब सामर्थ्य के बदले शरीर की रक्षा हुई और जब बुढ़ापे में असमर्थ होंगे, तब भी कोई इस शरीर की रक्षा करेगा।

थोड़ी देर के लिये मान लिया जाय कि यदि कोई इस शरीर की रक्षा नहीं करेगा और इसका नाश हो जाएगा, तो क्या खाते-खाते इस शरीर का नाश नहीं होगा? यदि बिना खाये नाश हो जाय, तो क्या हर्जकी बात है? इसलिये यदि अमर-जीवन चाहते हो, तो मरने से डरो नहीं और कुछ चाहो मत।

प्रश्न—भौतिकवादी को विश्व-प्रेम क्यों नहीं मिला?

उत्तर —क्योंकि उसने सबको अपना नहीं माना

प्रश्न —ईश्वरवादी को ईश्वर-प्रेम क्यों नहीं मिला?

उत्तर —क्योंकि उसने ईश्वर को अपना नहीं माना।

प्रश्न —अध्यात्मवादी को निज प्रेम क्यों नहीं मिला?

उत्तर —क्योंकि उसने ममता और कामना छोड़ी नहीं।

□□

(कल्याण से साभार)

भोजन

कुछ महानुभाव जिनसे भोजन बनवाते हैं, उनको (नौकर आदि को) अपने खाते हैं वैसा भोजन नहीं खिला पाते। भोजन बनाने वाले के मन में भोजन-पान आदि का रस प्रायः बना रहता है, किंतु उसे वह मिलता नहीं। अतः उस भोजन में मानसिक दोष आ जाता है। ऐसा भोजन करने से मानसिक अवनति होती है।

नौकर से भोजन उनको बनवाना चाहिए, जो अपने समान उसे भी खिला सकें। नहीं तो अपने घर के ही लोगों से बनवाना चाहिए, जिससे भोजन में मानसिक अपवित्रता न आने पाए। भोजन बनाने के लिए वही उचित होता है, जिसका हृदय माता के समान विशाल हो।

–संत समागम

(6)

संत सौरभ

ब्रह्मलीन पूज्यपाद स्वामी श्री शरणानंद जी महाराज से जीवन-सम्बन्धी पूछे गये कुछ प्रश्न और उनके उत्तर

-शिवस्वरूप माथुर

(स्व. श्री शिवस्वरूप माथुर, भूतपूर्व आयकर कमिश्नर, राजस्थान, स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के कृपा-भाजन रहे हैं। आप समय-समय पर स्वामी जी महाराज से साधकोपयोगी अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न पूछते रहते जिन्हें यथा समय प्रकाशित किया जाता रहा है।)

प्रश्न : मेरी परिस्थिति आपसे छिपी नहीं है। कृपा कर मेरे हित की बात बताईये?

उत्तर : विवेक-पूर्वक प्राप्त परिस्थिति के सदुपयोग में ही मानव का हित निहित है। जो जिस परिस्थिति में है, वह उसीके सदुपयोग द्वारा मानवता प्राप्त कर सकता है।

प्रश्न : सदुपयोग कैसे करना चाहिए?

उत्तर : अपने को अधिकार लालसा से रहित कर दूसरों के अधिकारों की रक्षा करनी चाहिये।

प्रश्न : अधिकार-त्याग का क्या फल है?

उत्तर : अधिकार त्याग करने से नवीन बन्धन की उत्पत्ति नहीं होती और दूसरों के अधिकार दे डालने पर विद्यमान बन्धन स्वतः ही कट जाते हैं।

प्रश्न : बंधन क्या है और कैसे टूटे?

उत्तर : लेना और देना ही बंधन है। लेना बन्द करके, देना दे डालने पर बन्धन जैसी चीज रह ही नहीं जाती।

प्रश्न : लेने में क्या बुराई है?

उत्तर : लेने की रुचि ही नवीन राग की जननी है, जो पूरी न होने पर क्षुभित तथा क्रोधित—कर देती है। क्षुभित तथा क्रोधित होने पर कर्तव्य की, निज स्वरूप की एवं प्रभु की विस्मृति स्वतः हो जाती है।

प्रश्न : प्रभु की विस्मृति क्यों हो जाती है और कैसे मिटे?

उत्तर : प्रभु की विस्मृति मिटानी हो तो आसक्तियां मिटानी होंगी। आसक्तियां ही समस्त दोषों एवं विकारों की जड़ (मूल) है।

प्रश्न : कौन सा कार्य नहीं करना चाहिए?

उत्तर : जो कार्य विवेक-विरोधी हो एवं जिसके पूरा करने की सामर्थ्य न हो, उसे नहीं करना चाहिए।

प्रश्न : यदि कोई विवेक-विरोधी कर्म करने के लिए दबाव डाले, तो क्या किया जाय?

उत्तर : कटुता पूर्वक इन्कार न करते हुये, विनम्रता-पूर्वक क्षमा मांग लेनी चाहिये। क्षमा मांगते हुए अपनी विवशता प्रकट करनी है, जिससे विपक्षी का अपमान भी न हो और न करने वाली बात भी न करनी पड़े।

प्रश्न : बुरा न चाहने से क्या लाभ होता है?

उत्तर : जो किसी का बुरा नहीं चाहता उसके बुरे संकल्प सदा के लिए मिट जाते हैं। जिनके मिटते ही निर्विकल्पता आ जाती है, जो शांति, सामर्थ्य तथा स्वाधीनता की जननी है।

□□

('जीवन दर्शन' से साभार)

(7)
सन्त-सौरभ

-शादीलाल वर्मा

(ब्रह्मलीन पूज्यपाद स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज से जीवन संबंधी पूछे गये कुछ प्रश्न और उनके उत्तर।)

प्रश्न: स्वामीजी! पुस्तकों के नीचे आप अपना नाम क्यों नहीं लिखते?

उत्तर: समष्टि शक्तियों के द्वारा जिस सत्य की खोज हुई है, उनको छोड़कर नीचे अपना नाम लिखा दूँ?

प्रश्न: महाराज जी! सत्य की प्राप्ति में कितना समय लगता है?

उत्तर: जिसकी जितनी तीव्र आवश्यकता होती है, उसे उतना ही कम समय लगता है। जब आप भगवान के प्रेम के बिना चैन से न रहेंगे, वह उसी समय मिल जायेगा।

प्रश्न : स्वामी जी! यदि घर में प्रतिकूलता के कारण साधन न हो सके, तो क्या साधक को घर छोड़ देना चाहिए?

उत्तर सच्चा मानव सेवा संघी कभी घर नहीं छोड़ता, बल्कि ममता और अपना अधिकार छोड़ता है।

प्रश्न: महाराज जी! क्या मैं घर-बार छोड़कर आश्रम में रह सकता हूँ?

उत्तर: मानव सेवा संघ किसी का घर बर्बाद करके आश्रम को आबाद नहीं करना चाहता। परन्तु यदि आपका परिवार आप पर निर्भर न हो और आप घर में सुख-दुख का सदुपयोग न कर सकें, तो यहाँ आ जायं।

प्रश्नः महाराज जी! धन का अभाव बहुत सताता है?

उत्तरः हमने सुना है, जो मानव सगुण भगवान का उपासक है और गौ-अतिथि की सेवा करता है, उसके यहाँ लक्ष्मी बहुत आती है।

प्रश्नः महाराज जी! जब मैं ध्यान करने बैठता हूँ, तो कभी तो खूब शान्ति रहती है और कभी ऐसा लगता है कि क्रिया शक्ति का वेग अभी बाकी है।

उत्तरः लुगाई से सुख भोगा, है, उसे प्यार नहीं किया दोस्त! इसीलिए क्रिया शक्ति का वेग शेष रह गया है।

प्रश्नः स्वामीजी! साधन में सफलता नहीं मिल रही है।

उत्तरः शक्ति को बचाकर रखते हो इसीलिए साधन में सफलता नहीं मिलती। पूरी शक्ति लगाकर साधन करोगे तो सफलता अवश्य मिलेगी।

प्रश्नः स्वामी जी! आज तक तो मेरी आँखे बिल्कुल ठीक रही हैं परन्तु अब ७५ वर्ष के बाद रोशनी कम होने पर अभाव खटकने लगा है।

उत्तरः आँख तो भैया पहिले भी अपनी नहीं थी। परन्तु इसका पता अभी चला है। गहरी नींद में हम हर रोज आँखों के रहते हुए भी अंधे हो जाते हैं, इस पर कभी विचार नहीं किया?

प्रश्नः स्वामी जी! भगवान छिपा क्यों रहता है?

उत्तरः अपना तो है! अपना लड़का भले ही विदेश चला जाय, परन्तु उसका प्यार कम नहीं होता। इसी तरह प्रभु चाहे छिपे हुए हैं, परन्तु अपने तो हैं।

प्रश्नः स्वामी जी! मन में बहुत विकार पैदा होते रहते हैं, क्या

करूं?

उत्तर: विकार पैदा नहीं होते, बल्कि विकारों की स्मृति उत्पन्न होती रहती है। उसका समर्थन मत करो।

प्रश्न: स्वामी जी! होली का क्या महत्व है?

उत्तर: राग-द्वेष की अग्नि जला दो, देहाभिमान को मिट्टी में मिला दो और प्रेम के रंग में रंग जाओ।

प्रश्न: क्या व्यक्तिगत सम्पत्ति होनी चाहिए?

उत्तर: व्यक्तिगत सम्पत्ति अवश्य होनी चाहिए, परन्तु उसे अपना और अपने लिए नहीं मानना चाहिए।

प्रश्न: स्वामी जी! बोध किसे कहते हैं?

उत्तर: यह सब सृष्टि—विष्णु, महेश, ब्रह्म - सब कुछ मैं ही हूँ - यह है बोध, यानि बोध में 'अहं' विभु हो जाता है।

प्रश्न: स्वामी जी! समाज के संघर्ष का क्या कारण है?

उत्तर: हम दूसरों को क्षति पहुँचाकर जीना चाहते हैं, यही कारण है समाज के संघर्ष का।

□□

619, अरबन एस्टेट,
कुरुक्षेत्र - 136118 (हरियाणा)

प्राणी सेवा ही प्रभु पूजा है

(8)
अपनी मान्यता के लिए सभी स्वतंत्र

-संतवाणी

प्रश्न- भगवान् को अवतार क्यों लेना पड़ता है?

उत्तर -भगवान् को अवतार लेना पड़े, ऐसी बात भगवान् में नहीं होती, क्योंकि भगवान् सर्वथा पूर्ण, सर्वशक्तिमान और स्वतंत्र हैं।

भगवदावतार के शास्त्रों में तीन हेतु बतलाये जाते हैं—(1) साधुओं का परित्राण, (2) दुष्टों का विनाश और (3) धर्म की संस्थापना। इनमें से दुष्टों का विनाश और धर्म की स्थापना तो भगवान् बिना अवतार लिए भी कर सकते हैं। यदि ये दोनों भगवान् के अवतार में खास कारण होते, तो इस समय भी भगवान् का अवतार होना चाहिए था। धर्म का ह्रास इस समय कम नहीं है और दुष्टों की भी कमी नहीं है। **परन्तु उनकी लीला पर विचार करने पर मालूम होता है कि भगवान् का अवतार अपनी रसमयी लीला के द्वारा भक्तों को रस प्रदान करने के लिए और स्वय उनके प्रेम का रस लेन के लिए ही होता है।** धर्म की स्थापना और दुष्टों का विनाश तो उसका अनुषंगिक कार्य है। उसमें भी प्रकारान्तर से साधुओं का हित भरा रहता है।

भगवान् जब अवतार लेते हैं, साधु पुरुषों के घरों में ही लेते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार पर ही विचार कीजिए। उनका प्राकट्य वसुदेवजी के घर में और माता देवकी के उदर से हुआ। **जो स्वयं प्रकाश और सर्वत्र बसने वाला है उसे वसुदेव कहते हैं और प्रकाशमयी ब्रह्मविद्या का नाम देवकी है।** इससे यह मालूम होता है कि भगवान् उन साधुपुरुष के घर जन्म लेते हैं, जो सर्वथा विशुद्ध

और तत्त्व-ज्ञानी हैं। परन्तु उनको अपनी लीला का, अपने प्रेम लीला का रस प्रदान करने के लिए आप माता यशोदा की गोद में पधारते हैं। **जो यश यानी प्रेम-रस को प्रदान करे,उसको 'यशोदा' कहते हैं और आनन्द का ही दूसरा नाम 'नन्द' है।** इससे यह मालूम होता है कि भगवान् अपने प्रेमी भक्तों को अपनी प्रेममयी लीला का रस प्रदान करके और उनके प्रेमरस का स्वयं आस्वादन करके उन भक्तों को आह्लादित करते हैं। यह काम बिना अवतार लिए पूरा नहीं हो सकता।

भगवान् की एक-एक लीला में अनेक रहस्य भरे रहते हैं। वे एक ही लीला में बहुतों की लालसा पूरी करते रहते हैं। उनकी प्रेममयी लीला का रहस्य बड़े-बड़े बुद्धिमान् भी नहीं समझ पाते। औरों की तो कौन कहे, साक्षात् ब्रह्माजी को संदेह हो गया था।

भगवान् श्रीकृष्ण अघासुर को मुक्त करके वन में भोजन करने के लिए अपने बालसखाओं के बीच में बैठ कर भोजन करने लगे, तो उस लीला को देखकर ब्रह्माजी चकित हो गए। वे सोचने लगे कि साक्षात् परमेश्वर क्या कभी इन गँवार ग्वालों के बालकों की जूठन खा सकते हैं? एक बालक अपनी वस्तु दूसरे को देता है, दूसरा अपने घर से लाई हुई वस्तु दूसरे को देता है। इस मोह में पड़कर उन्होंने भगवान् की परीक्षा करने के लिए बछड़ों को उठाया। इधर बालकों का मन भगवान् से हटकर बछड़ों की ओर गया। वे बोले— 'घास के लोभ से बछड़े दूर चले गये हैं, दिखलाई नहीं देते।' भगवान् यह कैसे सहन कर सकते हैं कि उनका प्रेमी किसी और को देखे, उनको छोड़ कर उसका मन दूसरी जगह चला जाए। अतः उन्होंने सखाओं से कहा—'मित्रों !तुम लोग यहीं रहो, मैं अभी बछड़ों को ले आता हूँ।'

श्यामसुन्दर उधर गए कि ब्रह्माजी ने उन बालकों को बेहोश कर के वहाँ से उठाया और पर्वत की गुफा में रख आए। भगवान् से मन हटते ही ग्वाल-बालों को एक वर्ष उनसे अलग होना पड़ा। इधर गायों तथा गोप-गापियों के मन में यह लालसा बढ़ रही थी कि कभी न कभी वे दिन आयेंगे कि श्यामसुन्दर यशोदा मैय्या की भांति हमारे स्तनों का दूध पान करेंगे, उसी प्रकार हमारी गोद में खेल कर अपनी प्रेममयी बाल-लीला का रस प्रदान करेंगे। उनकी उस लालसा को पूर्ण करने के लिए भगवान् स्वयं बछड़े बने और गायों को प्रेम-रस प्रदान किया एवं उनका प्रेम-रस दुग्ध के रूप में पान किया।गोप और गोपियों की गोद में खेल कर उनको पुत्र-स्नेह का रस प्रदान किया। एक वर्ष तक वे उस मधुर प्रेम रस का आस्वादन करते रहे।

जब ब्रह्माजी ने देखा कि व्रज का काम तो उसी प्रकार चल रहा है, श्यामसुन्दर तो पहले की भांति ही उन ग्वालबालों के साथ भोजन कर रहे हैं और खेल कर रहे हैं और जिन को मैं चुरा लाया था, वे सब गुफा में सो रहे हैं। ऐसा विचार करते ही उनको भगवान् की अचिन्त्य महिमा का कुछ दर्शन हुआ। तब उनका समस्त अभिमान जाता रहा। भगवान् के चरणों में मस्तक रख कर उन्होंने क्षमा मांगी और भगवान् की स्तुति की। **एक ही लीला में भगवान् ने अपने ऐश्वर्य और माधुर्य का प्रदर्शन किया। यह काम बिना अवतार के कैसे हो सकता था?** एक ओर ब्रह्मा के अभिमान का नाश, उसी के साथ-साथ ग्वाल-बालों को चेतावनी और गायों की एवं गोपियों की प्रेम-लालसा की पूर्ति—यह काम तो अवतार लेकर ही किया जा सकता है।

इसके पहले जब भगवान् श्यामसुन्दर छः दिन के हुए थे, उस समय भी उन्होंने एक ही साथ ऐश्वर्य, माधुर्य, न्याय और दयालुता का भाव दिखाया था। पूतना जो कि घोर पापिनी और बालकों का नाश करने वाली थी, जब सुन्दर धाय का कपट वेष बना कर भगवान् के पास गई

एवं मन में दूषित भाव रख कर ऊपर से प्रेम का भाव दिखा कर उनको गोद में उठा लिया और अपना स्तन श्यामसुन्दर के मुखारबिन्द में दे दिया, तब भगवान् ने उसके मातृ-स्नेह की रक्षा करने के लिए तो उसका दूध पीया। वह उनके प्राण लेने के लिए आई थी, इसलिये दूध के साथ-साथ उसके प्राण भी पी गए। भगवान् के स्पर्श से उसका कपट नाश हो गया। वह अपने असली रूप में आ गई। उसके सारे शरीर में सुगन्ध हो गई। भगवान् उसके शरीर पर खेलने लगे और उसे माता की गति प्रदान की। इस प्रकार की लीला भगवान् बिना अवतार के कैसे कर सकते थे?

इसी प्रकार उनकी हरएक लीला में अनन्त रस और अनन्त रहस्य भरा हुआ है। उनके प्रेमी भक्त ही उसका रस ले सकते हैं। भगवान् का अवतार नित्य है। उनका लीला-धाम, उनके माता-पिता, उनके सखा और सखियाँ सब चिन्मय प्रेम से ही बने हुए थे। उनके कोई भी भौतिक वस्तु नहीं थी। भगवान् के प्रेमी भक्तों में भौतिक भाव नहीं रहता।

भगवान् के प्रेमी भक्तों का आज भी उनकी दिव्य लीला में प्रवेश होता है और वे उनके प्रेम-रस का आस्वादन करते रहते हैं। यदि भगवान् का अवतार नहीं होता, तो इसकी पूर्ति नहीं हो सकती थी।

जिन को यह विश्वास नहीं है कि भगवान् अवतार लेते हैं उनसे मेरा कोई आग्रह नहीं है कि वे अवतारवाद को जबर्दस्ती मानें तथा उनके न मानने में कोई आश्चर्य भी नहीं है, क्योंकि **अपनी मान्यता के लिए सभी स्वतंत्र हैं।**

□□

V

संत-जीवन-फुहार

व

प्रेरक प्रसंग

प्राप्ति तो केवल परमात्मा की होती है
संसार तो मिलकर बिछुड़ जाता है

(1)
स्वामीजी महाराज की विनोद प्रियता

(i)
रोटी तो वो ही खिलाती हैं

भरतपुर (राजस्थान) के श्री शांतिस्वरूप गुम्बर, भगतजी के नामसे प्रसिद्ध थे, स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के परम भक्त थे। भगतजी ने किसी प्रसंग में स्वामी महाराज से कहा—''महाराजजी! आपतो सदा महिलाओं का पक्ष लेते हैं।'' स्वामीजी तत्काल बोले—''और का! तेरो पक्ष लेंगो? रोटी तो वो ही खिलाती हैं।'' सभी उपस्थितजन खिल खिलाकर हंस पड़े।

(ii)
सब लुगाई वाले हैं

मानव सेवा संघ, भरतपुर शाखा के अध्यक्ष ब्रिगेड़ियर घासीरामजी (रामसखा) थे जिनकी रिश्तेदारी करनाल (हरियाणा) में थी। वे प्रायः करनाल जाते रहते तथा भाई श्री हरीरामजी (स्वामी प्रेममूर्ति जी महाराज) के सान्निध्य में चल रही सेवा प्रवृत्तियों की पूरी जानकारी लेते। भरतपुर वापस आकर शाखा सभा की कार्यकारिणी की बैठकर बुलाकर जानकारी देते और कहते—''आप लोग तो सेवा, त्याग, प्रेम की केवल बातें करते हैं, करनाल वाले बातों के साथ-साथ सर्वहितकारी भावसे जनता जनार्दन को सेवाएं भी देते हैं।''

घासीराम जी की यह बात कुछ लोगों ने स्वामीजी महाराज तक पहुंचाई। स्वामीजी ने कहा— ''अपने अध्यक्षजी से कहना! करनाल को लंगोटीवाला मिला है, भरतपुर में तो सब लुगाईवाले हैं।''

जोर के ठहाके के साथ हंसी गूंज उठी।

□□

(2)
नाराजगी से नाराजगी

–बंसीधर बिहानी

एक सच्ची घटना मानव सेवा संघ की प्रधान पूज्या देवकीजी ने 'कार्तिकेय हरिहर सत्संग भवन' उज्जैन में हमें सुनाई थी। एक परिवार में तीन बहुएँ थीं। सबसे बड़ी की प्रवृत्ति कुछ इस प्रकार की थी कि उसकी कोई कितनी ही सेवा करे, पर वह हमेशा मुँह फुलाए रहती थी। यानी नाराजगी ही उसकी प्रवृत्ति थी। मँझली बहु विवेकी, सेवारत एवं शान्ति, भक्ति, उदारता, प्रियता आदि दिव्य गुणों से युक्त थी। सबसे छोटी साधारण श्रेणी की थी। राजी करके उससे चाहे जितना काम करा लो। परन्तु नाराजगी, बक-बक, निंदा, चुगली करने वालों के काम में हाथ ही नहीं लगाती। अतः बड़ी भाभी की सेवा तो वह कर ही कैसे सकती थी। बिचली की खूब सेवा करती थी। और बीच वाली का तो कहना ही क्या। सबकी सेवा, सबसे प्रियता, सदा शान्ति।

आखिर एक दिन देवरानी ने पूछ ही लिया — भाभीजी! बड़ी भाभी आप पर सदा नाराज रहती हैं, गाली भी दे लेती है, फिर भी आप उनकी सेवा करती हैं। उनके प्रति मैंने कभी कोई शिकायत आपकी नहीं सुनी सो बात क्या है, मुझे समझाओ। तब वह बोली—'बहन! भाभीजी की गाली मुझ तक पहुँचती ही नहीं। उनकी वाणी की पहुँच काना तक ही तो है। मुझ तक तो मेरी बुद्धि की भी पहुँच नहीं है, जो इन सृष्टि का सबसे बड़ा औजार है। और वे सदा नाराज रहती हैं तो अपने से रहती है। क्या कोई अपने से नाराज हुए बिना मुझसे नाराज हो सकता है? स्वयं बुरा बन कर ही कोई दूसरों का बुरा कर सकता है। दूसरे, उनकी नाराजगी मुझ तक पहुँचती ही नहीं है। कारण जहाँ नित्य, अविनाशी आनन्द-ही-

आनन्द है वहां उत्पत्ति-विनाशशील नाराजगी कैसे पहुंच सकती है, क्या कर सकती है? **मेरे गुरु ने बताया है कि दूसरों के अधिकार की रक्षा और अपने अधिकार का त्याग करने वाला कभी दुःखी नहीं हो सकता।'**

इस प्रकार नाराजगी को हर पहलू से समझने पर नाराजगी से सदा के लिए नाराजगी हो जाती है।

□□

तभी आपका अनाथपन मिटेगा

एक प्रवचन के दौरान स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज ने कहा— ''मैं कोई पहला मानव नहीं हूँ जो कि ईश्वर की बात कह रहा हूँ। मुझसे पहले नबी मोहम्मद ने कहा कि—**'खुदा मेरा दोस्त ह'** हज़रत ईसा ने कहा कि **'गॉड मेरा बाप है'** भक्तिमती मीरां ने कहा कि—**'भगवान मेरा पति ह।'** मोहम्मद का दोस्त, ईसा का बाप और मीरा का पति तुम्हारा भी है भाई! उससे नाता जोड़ने पर ही आपका अनाथपन मिटेगा और भयरहित शांति प्राप्त होगी।''

-शादीलाल वर्मा
कुरुक्षेत्र

(3)

और मामला शांति व स्नेहपूर्वक सुलझ गया

–दामोदर भगेरिया

ऋषिकेश में गंगा के उस पार गीता-भवन के पास ही परमार्थ-निकेतन है, जिसकी आवास व सत्संग की व्यवस्था गीता-भवन जैसी ही है। 1962 के आसपास की बात है। एक छोटे से भूखंड के लिए दोनों संस्थाओं में वाद-विवाद न्यायालय तक जा पहुँचा। जीत गीता भवन वालों की हुई, तो परमार्थ-निकेतनवाले ऊपर वाले न्यायालय में चले गए।

शरणानंदजी महाराज का हर वर्ष गीता भवन व परमार्थ निकेतन दोनों स्थानों पर प्रवचन होता था। एक सुबह परमार्थ निकेतन में स्वामीजी महाराज ने प्रवचन में फरमाया –

"साधारण-मानव प्रायः परिवार-पड़ौस के राग-द्वेष, कलह-क्लेश की आग से संत्रस्त रहता है। शांति प्राप्त करने के लिए वह संत-महात्माओं की शरण में जाता है। यदि संत-महात्मा व संस्थाएं भी उसी आग की लपेट में हों, तो साधारण मानव किसका आश्रय लेगा? दूसरे की आग पर वही पानी डाल सकता है जिसका जीवन मां-गंगा की पावन धारा के समान शीतल और निर्मल हो।"

उसी दिन दोपहर में स्वामीजी का प्रवचन गीता-भवन में था। वहाँ पर आपने फरमाया –

"गीता प्रेस धर्म का प्रचार तो चाहता है पर साथ यह भी चाहता है कि उस पर प्रचार का ठप्पा गीता प्रेस का लगा रहे। आज के सौ साल पूर्व गीता प्रेस नहीं था और पता नहीं सौ साल बाद गीता प्रेस रहेगा या नहीं। धर्म तो पहले भी था आगे भी रहेगा। धर्म का स्वरूप सनातन है। मां-गंगा की तरह धर्म का प्रवाह अखंड़ है और उसकी

गति अबाध है। यह हमारा सौभाग्य है कि हमारे द्वारा धर्म की कुछ सेवा बन जाती है। यह सेवा तभी सुचारू रूपसे संपन्न हो पायेगी जब हमारे जीवन में मानवोचित सद्‌गुणों की प्रतिष्ठा रहेगी।''

गीता प्रेस के भाई जी श्री हनुमानप्रसाद जी पोद्दार की सोच भी यही थी। स्वामीजी महाराज के प्रवचन के पश्चात् गीता प्रेस वाले खुद श्री भाई जी से मिले और मामला सलटाने का निवेदन किया। भाई जी बिना देरी किए परमार्थ निकेतन के स्वामी श्री शुकदेवानंदजी महाराज के पास गए और मामला शांति व सद्‌भावपूर्वक सुलझा लिया।

□□

(पुस्तक संदर्भ–संत हृदय श्री पोद्दार जी भाग - 2)

13, एम.जी.डी. मार्केट
जयपुर - 302002

सुख भोग का परिणाम

-श्री शादीलाल वर्मा
कुरुक्षेत्र

प्रश्न - महाराजजी! क्या फैमिली-प्लानिंग के आधुनिक ढंग इस्तेमाल करने पर हम आत्मा को जन्म लेने से रोक सकते हैं?
उत्तर - आत्मा की बात अभी रहने दो। तुम यह जान लो कि ऐसा करने वाले आदमी पागल हो जायेंगे और औरतों को कैंसर जैसे भयंकर रोग हो जायेंगे। हम चाहते तो यह हैं कि सुख भोगते रहें और दुःख से बचते रहें। पर यह कुदरत के कानून के खिलाफ बात है। प्रत्येक सुख-भोग का परिणाम दुःख के रूप में भोगना ही पड़ेगा।

(4)

(i)

शरीर धारण किए हुए भी मुक्त

—प्रबोध चतुर्वेदी

स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज आत्मरत रहते थे। एक युवक ने उनका फोटो लेना चाहा। स्वामीजी ने फरमाया –''तू मेरे स्वरूप का फोटो नहीं ले सकेगा।''

युवक ने उनका कहना नहीं माना। उसने उनकी तीन बार फोटो ली। तीनों बार उनके शरीर का फोटो नहीं आकर केवल उनके बैठने की कुर्सी का फोटो आया।

इस प्रकार स्वामीजी शरीर धारण किए हुए भी मुक्त रहते थे।

(ii)

दाढ़ी वाला बाबा चने खिलाता रहा

वर्ष 1979 में मेरे एक नजदीक संबंधी के पुत्र का अपहरण हो गया। घर में हाहाकार मच गया। पुलिस अपने डॉग-स्क्वाड़ के साथ आई। डॉगस्क्वाड़ उदी-अबारी की तरफ भागाा और ठीक कुए के पास आकर रुक गया। कुए में झांके तो बच्चा सुरक्षित था। उसे बाहर निकाला। वह बोला -'पापा! आप परेशान क्यों हुए? मुझे रात भर एक दाढ़ीवाला बाबा चने खिलाता रहा।' और बच्चे ने अपनी जेब से बचे हुए चने निकाल कर दिखाए। वातावरण भावपूर्ण हो गया।

डॉग-स्कवाड़ के साथ उस समय बी.के. दीवान डिस्ट्रिक मजिस्ट्रेट, इटावा थे तथा एस.एस.पी. थे अहमद हसन।

(iii)

दाता को ही भिक्षा में लेलो

–श्री मदनमोहन जी वर्मा

एक बार मैंने पूज्यपाद (स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज) को एक पत्र में लिखा कि—''आप तो बड़ी ऊँची फिलॉसफी की बातें लिखते हैं, मैं तो भिक्षुक हूँ।''

उत्तर मिला—''**यदि भिक्षुक बनना ही पसंद है तो दाता को ही भिक्षा में ले लो, जिससे मांगना शेष न रहे।**''

(iv)

अचूक उपाय

एक बार पत्र के अंत में मैंने अपने को 'आपका एक अधम भक्त' सम्बोधित करके अपना नाम लिख दिया। उत्तर में लिखा आया कि—''**भक्त अधम नहीं होते और अधम भक्त नहीं होत।**''

बाद में, एक बार जब मैं कुछ दार्शनिक तर्क सा कर रहा था, सबके सामने कहा—''वर्मा ने विवेक का खोल ओढ़ लिया है, वास्तव में तो उनका पथ आस्था का है।''

ये पुरानी बातें हैं। एक मर्तबा पूज्यपाद ने चलते समय मुझे कहा—''वर्मा **प्रभु-विश्वास प्रभु-प्राप्ति का अचूक उपाय है।**''

(v)

उनसे जो पाया

-कु० अनसूया पतंगे, हैदराबाद

विश्वास-पथ की साधिका हूं। जन-समाज में सत्‌चर्चा के लिए लोग बुलाते हैं तो जाती हूँ, किन्तु कभी-कभी भीतर से भय सा लगने लगता है—सुख-सुविधा, सम्मान में पड़कर कहीं मैं भटक न जाऊँ। अपनी इस स्थिति को मैंने पिछले वर्ष पूज्य स्वामी जी महाराज के सामने रखा।

सुनकर स्वामीजी कुछ देर चुप रहे और फिर गंभीर होकर कहा, 'बिटिया! विश्वास की बात सामने रखना, और एक रहस्य की बात तुम्हें बताता हूं—**भूलकर भी संसार का दिया हुआ सम्मान स्वीकार मत करना, उसका मजा मत लेना, तब भटकने का कोई भय नहीं रहेगा।** इतना कहकर वे स्वाभाविक दुलार-प्यार से मेरे सिर पर हाथ फेरने लगे। ऐसा लगा जैसे सिर का सारा बोझ हल्का सा हो गया हो।'

(vi)

अमोघ आशीर्वाद

सन् १९६१ में पूज्य स्वामीजी महाराज हैदराबाद आये थे। हमारे घर में ही उनको ठहराया गया था। न मैं उनसे पूर्व-परिचित थी और न ही वे मुझसे। उनके दर्शन पाने के सौभाग्य का यह प्रथम अवसर था। बहुत दिनों की बीमारी के कारण मैं उन दिनों बहुत दु:खी थी। जीवन से निराश हो गयी थी। स्वामी जी महाराज को प्रणाम करने गयी तो उनकी गोद में सिर रखकर फूट-फूट कर रोने लगी। सिर पर हाथ रखकर प्यार से पुचकारते हुये उन्होंने कहा, "बिटिया! तुम जीवनमुक्त हो, रोओ मत।" 'जीवनमुक्त' और मैं? बहुत भारी व्यंग सा लगा मुझे—जैसे कोई किसी भिखमंगे को कहे कि तुम सम्राट हो, या किसी कुरूपा से कहे कि तुम रूप-सुन्दरी हो। साधन-हीन असहाय, दु:खी बालिका जीवनमुक्त! कैसा व्यंग है यह!

किन्तु अब मुझे ऐसा लगने लगा है कि वह व्यंग नहीं, आशीर्वाद था।

(vii)

रक्षक ही भक्षक बन गए हैं

-डॉ० सुरेशचन्द सेठ

एक मर्तबा दिल्ली की एक सत्संग सभा में देश की दुर्दशा से पीड़ित

होकर स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज इतना तक कह बैठे कि, ''अब देश से सेवा-भावी नेता ही उठ गए हैं। जब राज्य, भोग करने वालों के हाथ में आ गया है, रक्षक ही भक्षक बन गए हैं, तो फिर जनता सुखी कैसे रह सकेगी?''

स्व० श्री लालबहादुर शास्त्री (भूतपूर्व प्रधान मंत्री) का नाम लेकर कहने लगे कि—'जब शास्त्रीजी रेलमंत्री थे, तो उस समय में एक भयंकर रेल दुर्घटना हो गई। शास्त्रीजी ने तत्काल अपने पद से त्याग-पत्र देना स्वीकार किया। एक आज के शासक हैं कि जिनकी आँखों के सामने जनता की कितनी ही दुर्गति होती रहे, वे उस ओर आंखें मूंद अपनी कुर्सी से ही चिपके रहना चाहते हैं।'

ऐसी थी स्वामी जी महाराज की व्यथा में से निकली स्पष्टवादिता।

(viii)

न जाने किस जन्म का वैर उगाहता है?

-श्री छजूरामजी, उकलाना मंडी, हरियाणा

विगत कुंभ (सन् १९७४) पर बटाला कैम्प में श्री महाराज प्रवचन कर रहे थे—''परमात्मा किसी परिस्थिति-विशेष में नहीं मिलता। यदि विद्वान को मिलता तो मेरा नम्बर तो आता ही नहीं। यदि धनवान को मिलता तो मेरा नम्बर कट जाता। यदि बलवान को मिलता या रूपवान को मिलता तो भी मेरा नम्बर नहीं आता। परमात्मा मिलता है उसको, जो उसे पसन्द करता है। **परमात्मा सबको मिल सकता है। परमात्मा कहते ही उसको हैं जो सभी को मिल सकता है।**''

अपने प्यारे सखा प्रभु के साथ उनकी कैसी प्रगाढ़ आत्मीयता थी, यह उन्हीं के उद्‌गारों में देखिये—''**भाई देखो! न तो हमने आश्रम में उनका कोई मंदिर ही बनवाया। न कभी उनकी लीला तथा रास का**

ही आयोजन करते हैं। और न संत-सेवा के रूपमें भंडारा आदि का कोई ऊपरी उपक्रम ही कर पाते हैं। फिर भी न जाने वह क्यों पीछे पड़ा रहता है, छाती पर सवार रहता है, पिंड नहीं छोड़ता। न जाने किस जन्म का वैर उगाहता है?''

(ix)

उनका अतिथि सत्कार

-श्री महेन्द्र कुमार कौल, मैनपुरी

एक बार मैं वृन्दावन आश्रम में न ठहर कर अन्य स्थान पर रुक गया। नया-नया ही, आश्रम में परिचय हुआ था। रात्रि में आश्रमवासियों को न जगाने के विचार से संकोचवश आश्रम का फाटक नहीं खुलवाया।

प्रात: ४ बजे की सत्संग-सभा में मेरे प्रश्न करने पर ही स्वामीजी महाराज पूछ बैठे—''कब आये? रुकने की व्यवस्था ठीक हो गई? मेरे यह कहने पर कि मैं अन्यत्र रुका हूँ, श्री महाराज बोले, ''यही हमसे तथा आश्रम से प्रेम है? यदि अपने घर रात्रि में देर से पहुँचते तो क्या अन्यत्र ठहरते? तुम्हे तो रात्रि में ही आ जाना था तथा हमारी छाती पर चढ़कर कहना था कि—हम आ गये, हमारी व्यवस्था करो। तुम्हारे इस व्यवहार से मुझे हार्दिक प्रसन्नता होती। फिर मैं तो वैसे भी रात्रि में जागता रहता हूँ।''

मैंने क्षमा याचना की और आगे ऐसी भूल न दुहराने का निश्चय कर लिया। **साथ ही स्वामी जी महाराज के अतिथि सत्कार की भावना से अभिभूत हो गया।**

(x)

मेरी खुश किस्मती है कि

-शिवस्वरूप माथुर

मेरे एक रिश्तेदार बीमार थे। दुख:सुख को सुनने वाला मेरे लिये तो ब्रह्मलीन प्रात: स्मरणीय पूज्य स्वामी श्री शरणानन्दजी महाराज ही थ। पत्र लिखा उन्हें और निवेदन किया कि आप उस बीमार दु:खी को

सान्त्वना प्रदान करें। विनती स्वीकार हुई। कुछ दिन पश्चात् रोगी को लेकर वृन्दावन आया। सोचा, साथ में सत्संग का लाभ भी ले लूंगा। स्वामी जी महाराज ने भरी सभा में कहा कि कुछ लोग बीमारों की बीमारी ठीक करवाने यहाँ आते हैं, और सत्संग का बहाना बनाते हैं। **यह सुनकर मैंने विचार किया कि रिश्तेदार की बीमारी दूर करना या न करना यह तो प्रभु की इच्छा, व स्वामीजी महाराज के आशीर्वाद पर निर्भर है, पर लक्ष्य तो सत्संग का ही होना चाहिय।** अर्थात् बीमारी दूर करने का जो विचार किया कि रिश्तेदार की बीमारी दूर करना या न करना, यह तो प्रभु की इच्छा, व स्वामीजी महाराज के आशीर्वाद पर निर्भर है, **पर मोह लेकर आया था, वह मुझसे छूट गया।** दूसरे दिन प्रातः काल वह युवा रोगी, स्वामी जी महाराज के समीप बैठा था। महाराज उससे कह रहे थे.....तुमसे हमें बड़ी उम्मीद थी...क्या तकलीफ है? इत्यादि।

करुणा सागर ने करुणा की, और वह स्वस्थ हो गया। स्थानान्तरण चाहता था, मिल गया, अपनों के समीप पहुँच गया और जैसा काम वह उस समय चाहता था, वह भी मिल गया। **क्या इस प्रकार की मूक सेवा से ऐसे रोगी को सदा के लिये मानव-मात्र की सेवा की दीक्षा स्वामी जी महाराज ने नहीं दे दी?** अब जब कभी उस रोगी से भेंट होती है, उसे स्वामी जी महाराज व मानव सेवा संघ की सेवा के लिए आतुर पाता हूँ। मैं ऐसे अन्य अनेक रोगियों को भी जानता हूँ जो लाइलाज बीमारियों से ग्रस्त थे, अथवा जिनके पास निदान व इलाज के लिये साधन नहीं था और जो स्वामी जी के सम्पर्क में आये। उन्हें महाराज ने कहा—शरीर संसार की जाति का है, इसलिये शरीर संसार को दे दो एवं प्रभु अपने हैं, सब कुछ प्रभु का है अतएव स्वयं को प्रभु के समर्पित करदो। यह व्रत दिलाकर उन्हें अपने पास रखा। वे दस-बीस वर्ष से मानव सेवा संघ की व मानव मात्र की सेवा कर रहे हैं। **मेरी खुश किस्मती है कि मुझे ऐसे महान संत के सम्पर्क में आकर बहुत कुछ सीखने को मिला।**

('संत स्मृति' अंक से साभार) □□

(xi)

महाराजजी! आपके साथ धोखा हो रहा है

–डॉ० भीकमचंद प्रजापति

(दिनांक 5,6,7 दिसम्बर 08 को प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर में त्रिदिवसीय सत्संग समारोह आयोजित किया गया था जिसके प्रमुख वक्ता थे स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के प्रेमी-भक्त डॉ० भीकमचंद प्रजापति। आपने अपने प्रवचनों में स्वामीजी महाराज के अत्यधिक प्रेरक प्रसंग सुनाए थे। उनमें से एक प्रसंग साधक महानुभावों की सेवा में यहां प्रस्तुत है।)

उच्च कोटि के एक महान् त्यागी, वैरागी संत ने श्रद्धेय स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज से कहा—महाराजजी! कभी-कभी मुझे भीतर-भीतर कुछ खिन्नता महसूस होती है, इसका क्या कारण है, मुझे पता नहीं चल रहा है। श्री स्वामीजी महाराज ने तपाक से विनोद की भाषा में उत्तर दिया—महाराजजी! आपके कलेजे में कहीं कोई कामना रानी बैठी होगी, वही आपको परेशान कर रही है। संत ने आश्चर्यचकित होकर कहा—मेरे कलेजे में कामना? कैसी, कौन सी कामना? आज तक रुपयों-पैसों को छुआ नहीं, एक इंच भी मेरे पास जमीन नहीं, शिष्य मैं बनाता नहीं, पैरों के हाथ लगाने देता नहीं, सम्मान से बड़ा भय लगता है कि—कहीं फंस नहीं जाऊं। कामना होनी तो नहीं चाहिए महाराज!

स्वामी जी बोले—

'कामना के बिना खिन्नता, चिंता, तनाव, अशांति, डिप्रेशन आदि हो ही नहीं सकते। खिन्नता का रहना इस बात का पक्का प्रमाण है कि कामना है।'

फिर आगे पूछा—

'आपके प्रवचनों में जब श्रोता कम आते हैं तो आपको कैसा लगता है?'

'अच्छा नहीं लगता।'

स्वामी जी महाराज ने हंसकर कहा—

'महाराज जी! आपकी यही कामना है कि मेरे प्रवचन में श्रोता अधिक से अधिक आवें।'

उन महान् संत ने बड़ी विनम्रता से निवेदन किया—

'महाराज जी! यह मेरी सद्भावना है कामना नहीं। कामना में अपना सुख और सद्भावना में परहित निहित होता है। मैं अधिक श्रोता इसलिए चाहता हूं कि उनको शांति, मुक्ति, भक्ति मिले, उनका कल्याण हो। मैं अपने किसी स्वार्थ या सुख के लिए अधिक श्रोता नहीं चाहता हूं। क्या ऐसी सद्भावना भी नहीं रखनी चाहिए?'

महाराज श्री ने फरमाया—

'महाराज जी! आपके साथ धोखा हो रहा है। 'कामना' ने 'सद्भावना' का रूप बना रखा है। कामना पूरी न होने पर खिन्नता होती है और पूरी हो जाने पर अस्थायी सुख मिलता है। जबकि सद्भावना पूरी न होने पर हृदय में अपार करुणा पैदा होती है जिसमें से स्वत: करुणाजनित प्रार्थना निकलती है कि 'हे प्रभु! आप अपनी कृपा शक्ति से श्रोताओं को सत्संग में आने की प्रेरणा

दीजिए, ताकि उनका कल्याण हो।' सद्भावना पूरी हो जाने पर स्थायी प्रसन्नता व अलौकिक आनंद का अनुभव होता है। सद्भावना बहुत बड़ी साधना है। कामना भूल व असाधना है।'

स्वामीजी के श्रीमुख से उपरोक्त बात सुनकर वह महान् संत गद्गद् हो गये और बोले—

'महाराज जी! अनेक वर्षों तक मैं ग्रंथों का अध्ययन करता रहा तब भी यह गुत्थी नहीं सुलझी जो आज आपके साथ अल्प समय के विचार-विनिमय से ही सुलझ गई।'

संत का रोम-रोम पुलकायमान था।

□□

संसार इतना उदार है कि
हम जितने बुरे हैं, वह हमें
उससे कम बुरा समझता है और
हम जितने अच्छे हैं उससे
अधिक अच्छा समझता है

-संतवाणी

(xii)

ऊँचाई नहीं बता सकता मेरी नीचाई जान लो

–शादीलाल वर्मा

भगवत्-कृपा से संत-मिलन होता है और संत-मिलन से भगवत्-कृपा का अनुभव होता है। सन्त-मिलन कभी वृथा नहीं जाता। यह साधक के अपने पुरुषार्थ की बात है कि वह संत-मिलन को सार्थक करके इसी वर्तमान जीवन में सत्य को पाकर कृत-कृत्य हो जाय।

सभी सच्चे साधकों ने श्री स्वामी जी महाराज के सम्पर्क में आने के पश्चात् अपने जीवन में अकस्मात् परिवर्तन का अनुभव अवश्य किया होगा। **अपने प्यारे मानव के प्रति प्रभु का प्रेम और करुणा कैसी होती है इसका मूर्तिमान चित्र था— स्वामीजी महाराज का व्यवहार।** क्योंकि प्रभु का स्वभाव ही सन्तों का जीवन होता है। सद्गुरु के जीवन को देख कर ही युग में क्रान्ति आती है। और यह विश्वास मिलता है कि रस-रूप अविनाशी जीवन मानव-मात्र को प्राप्त हो सकता है। मानव-सेवा-संघ मानव समाज को प्रभु की अनुपम भेंट है जिसका प्राकट्य स्वामीजी महाराज द्वारा हुआ है। मानव-सेवा-संघ स्वामीजी महाराज का जीवन था। मानव के अपने सत्य का नाम ही मानव-सेवा-संघ है, अर्थात् यह मानव की अपनी बात है। स्वामीजी महाराज के जीवन का प्रत्येक श्वास लोक-हित के लिए था। महाराज जी के सान्निध्य में बैठना मानो कल्पतरु के नीचे बैठना था। शंका का समाधान चाहने वालों को बिना पूछे भी उत्तर मिल जाता था। दुःखियों का दुःख महाराज जी के पास आकर भस्म हो जाता था और आपके हृदय की शान्ति दुःखी में प्रवेश कर जाती थी।

ऐसा अनेक बार प्रतीत होता था मानो महाराज जी किसी साधक की उपेक्षा कर रहे हैं। परन्तु वह हमारी भौतिक आंखों की भ्रमात्मक धारणा होती थी। वह तो उस समय अपनी सूक्ष्म शक्तियों द्वारा साधक में चेतना और उत्साह का नवीन संचार कर रहे होते थे। आपके मुखारविन्द से निकला हुआ वाक्य शास्त्र-वचन ही होता था। बातचीत प्रायः अति सरल और व्यावहारिक होती थी, आपका विनोद भी बहुत गम्भीर हुआ करता था। आपके रसरूप जीवन का प्रत्येक व्यवहार रसरूप ही होता था, जो साधकों को बरबस अपनी ओर खींच लेता था। जितने दिन महाराज जी के साथ रहने को मिलते थे लगता था कि केवल वे ही दिन सार्थक हैं। सभी साधकों के प्रति उनका आत्मीय, मधुरतायुक्त व्यवहार होता था – कभी प्यार, कभी झिड़कियाँ, कभी रूठने वालों को मनाना और कभी आत्मीयता से लाड़ लड़ाना आदि।

महाराज जी कहा करते थे कि मैं एक बड़ा गृहस्थ हूँ। मुझ पर सबका समान अधिकार है। मानव-समाज के प्रति इतनी आत्मीयता का दिग्दर्शन उनके जीवन में ही देखने को मिला था। **महाराज जी ने यह भ्रमात्मक, सामान्य धारणा मिटा दी कि ज्ञान केवल ग्रंथों में ही छिपा है। आप कहा करते थे कि ज्ञान का प्रकाश मानव मात्र में विद्यमान है, परन्तु मानव उसका आदर न करने के कारण उसे जान नहीं पाता।** आप कहा करते थे कि ग्रंथ और गुरु बाहर से कुछ नहीं देते, बल्कि हमारे ही ज्ञान का समर्थन करते हैं। हमारे ज्ञान और वेद के ज्ञान में लेशमात्र भी अन्तर नहीं है। कारण कि ज्ञान स्वरूप से एक है, उसमें अनेकता नहीं।

एक बार ऋषिकेश में गीता-भवन के पास वट-वृक्ष के नीचे सन्त-समाज में बैठ कर महाराज जी प्रश्नों के उत्तर दे रहे थे। एक सन्त महानुभाव ने कागज पर गीता का एक श्लोक लिख कर महाराज जी से व्याख्या करवानी चाही, तो महाराज जी ने कहा कि, ''भैया देखो, अर्जुन को सन्देह हुआ

और भगवान ने उसका समाधान कर दिया, तो वह गीता बन गई। आपका भी जो सन्देह और कठिनाई है वह हमारे सामने रखिये, वह भी गीता बन जायगी।''

महाराज जी कहा करते थे कि हम लोग ग्रंथ को अपना सन्देह मिटाने के लिए नहीं पढ़ते, वरन् उसे खूराक बनाकर मस्तिष्क की उन्नति के लिए पढ़ते है। आपने जब उस श्लोक का क्रम, अध्याय और संख्या-सहित व्याख्या की तो सारा सन्त-समाज आनन्द-विभोर हो उठा। आप कहा करते थे कि मैं कोई नई बात नहीं कहता, केवल उसी सत्य की ओर संकेत करता हूँ जो वेद एवं पुराणों में वर्णित है। परन्तु उनकी व्योरेवार व्याख्या करना मुझे अभिप्रेत नहीं है। तब एक सन्त ने पूछ लिया– महाराज! आपकी ऊँचाई कहाँ तक है? आपने कहा, ''भैया! **ऊँचाई नहीं बता सकता, मेरी नीचाई जान लो कि सृष्टि की छाती पर पाँव रख कर खड़ा हूँ, मरूँगा नही।**'' दिव्य मानव-जीवन कैसा होता है, इसका मूर्तिमान चित्र था श्री महाराज जी का अपना जीवन जो कि ज्वलन्त सितारे की तरह सदैव जगमगाता रहेगा।

□□

प्रश्न : महाराज! गुरु की आवश्यकता क्यों पड़ती है?

उत्तर : गुरु बनने के लिए।

(xiii)

देखा ! बताने वाला आ गया न !!

—पं. श्री देवदत्त चतुर्वेदी

ब्रजमंडल की परिक्रमा के अवसर पर, संभवतः 1946 के आश्विन मास शुक्ल पक्ष में, चरणाद्रि पर्वत पर यात्रियों की बहुत भीड़ हो गई। मन्दिर का प्लेटफार्म लगभग पाँच फुट ऊँचा था और उसके ठीक नीचे बहुत बड़ा ढ़ाल था। मंदिर में जाने और निकलने का एक ही द्वार था। भीड़ एकाएक अधिक बढ़ गई। जो मंदिर में प्रविष्ट हो गये वे बाहर नहीं निकल पा रहे थे और जो बाहर थे वे अन्दर नहीं जा पा रहे थे। स्थिति ऐसी हो गई थी कि मंदिर के प्लेटफार्म से नीचे गिरकर दर्शनार्थी चोट भी खा सकते थे और उनकी मृत्यु भी हो सकती थी।

मुझे लगा स्वामीजी महाराज स्वयं ही करा रहे हैं

पूज्यपाद स्वामीजी की आज्ञा हुई कि बच्चों, बूढ़ों और स्त्रियों को नीचे उतार कर सुरक्षित कर दो। लगभग दो घंटे यह कार्यक्रम जारी रहा। अपनी शारीरिक स्थिति के अनुसार मुझे अनुभव हो रहा था कि दस-बाहर व्यक्तियों से अधिक को नहीं उतार सकूंगा, परन्तु दो घंटे तक कार्य चलता रहा और दो-ढ़ाई सौ व्यक्ति नीचे उतारे जा सके। मुझे प्रत्यक्ष ऐसा लगा, मानो स्वामीजी महाराज स्वयं ही इस कार्य के लिए आवश्यक बल तथा उत्साह प्रदान कर अपने ही निरीक्षण में यह कार्य करा रहे हैं।

चरणाद्रि से आगे कई दिन बाद करहला में ठहरे थे।यह स्थान वही है जहाँ ब्रज के विश्वविश्रुत आचार्य स्वामी निम्बार्कजी प्रकट हुए थे। वहां पर मेरे मन में यह लालसा जगी कि कल शरद पूर्णिमा के दिन श्री वृन्दावन पहुंच जायें। करहला से वृन्दावन की दूरी चीरघाट माँडोर वन होते हुए

लगभग 36 मील बताई गई। दूसरे दिन प्रातः काल वृन्दावन के लिए प्रस्थान हुआ। चीरघाट पहुँच कर स्नान दर्शन के बाद भांडीर लगभग साढ़े-तीन चार बजे सायंकाल पहुँच गये।

पथ प्रदर्शक निश्चय ही मिलेगा

आगे चलने पर वन में रास्ता भटक गये। आगे रास्ता नहीं दीखता था, कंटकाकीर्ण मैदान था। एक ही साथ आठ-आठ, दस-दस काँटे पैर में चुभ जाते थे, पर पूज्यपाद स्वामीजी ने न एक बार काँटा ही निकाला और न उनकी गति में ही कोई अन्तर आया। इतना ही नहीं, मेरी शिथिलता को देखकर यहाँ से वे आगे हो लिये और मैं उनका डंडा पकड़ कर उनके पीछे-पीछे चलने लगा। उन्होंने मुझे सान्त्वना दी, धीरज रखो घबराओ नहीं, आवश्यकता होने पर पथ-प्रदर्शक निश्चय ही मिलेगा।

बाबा कितकू जायगो?

थोड़ी ही दूर चलने पर कुछ बालकों के शब्द सुनाई पड़े। सामने आने पर बालकों की अवस्था दस ग्यारह वर्ष से अधिक की नहीं मालूम पड़ी। उनके हाथों में छोटे-छोटे लकड़ी के डंडे थे। उनकी गायें कुछ दूर थीं। उनमें से एक बालक अपने साथियों से अलग होकर आगे आया और स्वामी को सम्बोधित करके अत्यन्त मधुर वाणी में ब्रज भाषा में पूछा, 'बाबा कितकू जायगो?' स्वामीजी ने कहा, 'लाला! वृन्दावन जायेंगे।' बालक ने कहा, 'बाबा बहुत थक गये हो, यहां ते नेक दूर श्यामतलाई है, मूं-हाथ धोकर जलपान कर लो, थकान दूर हो जायगी।' और यह भी बताया कि 'ह्यां ते पूरब नेंक दूर पर वृन्दावन को डगरौ है।' हम स्वामीजी के साथ श्यामतलाई घाट के नीचे उतरे, मुँह-हाथ धोया, जलपान किया। सारी थकान ऐसे दूर हो गई जैसे कोई महौषधि पान किया हो।

उनका डंड़ा पकड़े मैं पीछे-पीछे चल रहा था

इसके बाद स्वामीजी ने कहा, 'ऊपर जाकर देखो, बच्चों से कुछ

और पूछना है।' ऊपर आने पर कहीं न बच्चे ही दिखाई पड़े और न उनके पशु और न उनकी बातचीत की आवाज ही सुनाई दी। स्वामीजी ने मुझे केवल इतना ही संकेत किया कि, **'देखा! बतलाने वाला आ गया न!'** एक फर्लांग चलने के बाद डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की केशीघाट जाने वाली सड़क मिल गई। सूर्यास्त होते-होते आश्विन के महीने में बिना नौका के ही पांज यमुना पार कर वृन्दावन पहुँच गए। यमुना पार करते समय भी आगे-आगे स्वामीजी ही चलते थे—उनका डंड़ा पकड़े मैं पीछे-पीछे चल रहा था।

viv

पर दुःख कातरता

—श्री नारायण रेड्डी

पूज्यपाद श्री स्वामीजी महाराज बहुत ही दयालु एवं प्रेमी सन्त थे। उनका अधिकांश समय भ्रमण में ही बीतता था। वे जहाँ कहीं भी जाते स्वयं अपना तो नहीं, परन्तु साथियों का बहुत अधिक ध्यान रखते थे। मुझे अच्छी तरह याद है कि एक बार जब वे दिल्ली पधारे तो स्टेशन से उन्हें अपने यहाँ ले जाने के लिए सेठ श्री जयदयालजी डालमिया एक बड़ी कीमती मोटर लेकर स्टेशन पर पहुँचे। स्वामीजी महाराज पहले अपने साथियों को सेठजी की कोठी पर भेजते गये और वे स्वयं कार के लौटने की प्रतीक्षा में बड़ी देर तक वहीं ठहरे रहे। मैंने स्वामीजी से निवेदन किया, महाराज! आप कब तक यहाँ ठहरे रहेंगे। आप पहले सेठजी के स्थान पर चलिए, हम लोग थोड़ी देर में आ जायेंगे। उत्तर मिला—अगर मैं पहले चला जाऊं तो सेठजी भी मेरे साथ चले जायेंगे और आप लोगों की व्यवस्था ठीक तरह नहीं हो पायेगी।

शंकर जी की बारात

स्वामीजी के साथ हर यात्रा में दस-पंद्रह सत्संग-प्रेमी सज्जन रहते थे, जिन्हें लोग शंकरजी की बरात कहते थे। परन्तु इस बरात के स्वागत-सत्कार और आतिथ्य का ध्यान जितना स्वामीजी को रहता था, सामान्यतया किसी भी घराती को अपने यहाँ आई हुई बरात का शायद ही इतना ध्यान रहता हो। इस सुख-सुविधा की व्यवस्था को किसी दूसरे पर न छोड़कर स्वयं अपने निरीक्षण में करवाते थे।

तुम्हारा नया जन्म हुआ है

श्री महाराजजी परदुःखकातरता तथा सेवापरायणता की भी साक्षात् मूर्ति थे और मैं स्वयं अपने जीवन की घटनाओं के आधार पर कह सकता हूँ कि इन विशेषताओं को चरितार्थ करते हुए वे अपने प्राणों तक की परवाह नहीं करते थे। एक बार वृन्दावन में बिजली का शाक लगने पर जब मैं अचेत होकर मरणासन्न हो गया तब उन्हीं की कृपा, करुणा एवं स्नेह के परिणामस्वरूप मेरी प्राणरक्षा हो सकी और जब बच गया तब श्री महाराजजी ने मुझे कहा—देखो! तुम्हारा यह नया जन्म हुआ है, अब तुम अपने शेष जीवन को भगवान के समर्पण कर दो।

वे अपने आपको न किसी का गुरु मानते थे, और न ही किसी को अपना शिष्य। अपने प्रति श्रद्धा रखने वाले सभी प्रेमियों के प्रति उनका मित्र भाव था और उनके कल्याण के लिए वे अहर्निश आकुल-व्याकुल और सचेष्ट रहते थे।

उनकी स्थूल एवं सूक्ष्म लीला-प्रसंगों का वारापार नहीं है और न उनका वर्णन करना ही यहाँ संभव है। केवल अपने गंधहीन श्रद्धा-सुमन ही अर्पित कर रहा हूं। उनके श्री चरणों में शत-शत नमन।

□□

महापुरुषों के दोष नहीं देखने चाहिए
पहाड़ का गड्ढ़ा भी जमीन से ऊँचा होता है

VI

सुन्दर मानव सुन्दर समाज एवं नए लोक का निर्माण

सत्संग स्वधर्म है, शरीर धर्म नहीं

(1)
ब्रह्मलीन दिव्यज्योति–देवकी माताजी

जन्म

प्रज्ञाचक्षु, प्रातः स्मरणीय, महामानव, ब्रह्मनिष्ठ परमपूज्य स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज की प्रिय शिष्या दिव्य ज्योति देवकी माताजी का जन्म बिहार राज्य के मांझी ग्राम में 10 फरवरी 1917 को एक सुसंस्कृत कायस्थ परिवार में हुआ था। प्रारम्भ से ही आपका झुकाव आध्यात्मिकता की ओर रहा। कई प्रकार के अनेकानेक प्रश्न आपके मन को सदैव उद्वेलित करते रहते थे, और वे सदा ही स्वयं में एक रिक्तता सी अनुभव करती रहती थीं। अध्ययन एवं अध्यापन काल में भी इन अनुत्तरित प्रश्नों ने आपका पीछा नहीं छोड़ा, और न ही वह रिक्तता समाप्त हुई। एक सूनेपन की छाया सदैव बनी ही रही।

वर्ष 1952 में उच्च शिक्षा (एम0ए0 मनोविज्ञान) प्राप्त करने के पश्चात् आपने वीमेन्स कॉलेज, राँची में प्रोफेसर के रूप में कार्य प्रारम्भ किया।

स्वामीजी से साक्षात्कार

अपने सब पुरुषार्थ कर चुकने के बाद भी जब उनके जीवन का सूनापन नहीं मिटा तो वे मन ही मन सोचने लगीं कि भगवान के घर का दरवाजा देखा हुआ कोई संत मिल जाए तो शायद इन्हें भी राह दिखा देता। जैसे ही इस आवश्यकता की तीव्रता एवं व्याकुलता बढ़ी तो ऐसे संत के रूप में प्रज्ञाचक्षु स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज से आपका साक्षात्कार हुआ। स्वामीजी महाराज से प्रथम साक्षात्कार 1942 में तथा दूसरी बार भेंट वर्ष 1944 में हुई। बाद में 10 वर्ष तक आपका अध्ययन, अध्यापन का कार्य चलता रहा।

वर्ष 1954 के अंतिम दिन सत्संग की एक बैठक में आपने महाराज श्री के समक्ष अपना वह प्रश्न रखा जोकि आपके जीवन का सजीव चित्रण था–**जो चाहती हूँ सो होता नहीं, जो होता है सो भाता नहीं, जो भाता है सो रहता नहीं।**

सन् 1955 से सन् 1974 तक, आप सद्गुरु स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के निर्देशन में कार्य करती रहीं। स्वामी जी महाराज का समस्त साहित्य आपने लिपिबद्ध किया।

दीक्षा ग्रहण करने के तुरंत पश्चात् ही आपने अपना संपूर्ण जीवन मानव सेवा संघ की सेवा में समर्पित कर दिया और वे संघ की प्रथम आजीवन कार्यकर्ता बनीं। महाराज श्री ने तत्काल ही दिव्य ज्योतिजी को आजीवन कार्यकर्ता समिति का आजीवन अध्यक्ष घोषित कर दिया।

महाराजश्री के देवलोक गमन के पश्चात् संघ साहित्य का प्रकाशन, ग्रन्थों का पुनर्मुद्रण, संतवाणी का संकलन एवं कैसेट्स का निर्माण तथा स्वयं अपने प्रवचनों को टेपांकित कर आपने संत साहित्य की महती अभिवृद्धि की।

कैंसर रोग से ग्रसित

दैव योग से इसी बीच आप कैंसर की जानलेवा बीमारी से ग्रस्त हो गईं और सन् 1983 में शल्य चिकित्सा करानी पड़ी। किन्तु इस आपरेशन के बाद आपका शारीरिक स्वास्थ्य पहले जैसा न रह सका, और असह्य वेदना सताने लगी। किंतु असाध्य रोग, असाध्य पीड़ा एवं अतिशय दुर्बलता को जिस शांति से आप सहती रहीं, वह अकल्पनीय है। आपने सदैव ही प्रभु की कृपा, करुणा एवं मंगलकारिता में विश्वास रखा, कभी भी किसी को उपालम्भ नहीं दिया। आपका कथन सदैव यही रहा कि **''प्रभु का विधान मंगलमय है, और सब अच्छा होगा।''**

आपके व्यक्तित्व की आकर्षण शक्ति इतनी प्रबल थी, कि सेवा करने वाला व्यक्ति भी कभी थकता नहीं था।

मोरनी का बच्चा तो अंडे से रंगा हुआ ही निकलता है

साधना पथ पर तीव्र गति से बढ़ते हुए पूज्या माताजी ने आध्यात्मिक जगत् में अपना एक विशिष्ठ स्थान बना लिया था, और उसीसे अनुप्रेरित होकर स्वामी रामसुखदासजी महाराज ने एक बार स्वामी शरणानंदजी महाराज को कहा–"**स्वामीजी! आपने तो देवकीजी को पूरी तरह से अपने रंग में रंग लिया है।**" तो स्वामीजी हंसकर बोले—"**भाई! आपको पता नहीं है कि मोरनी का बच्चा तो अंड़े से रंगा हुआ ही निकलता है, इसमें मेरे रंगने जैसी कोई बात नहीं है।**"

अपने तीव्र विकास को लक्षित कर, पूज्या माताजी ने मानव सेवा संघ के साहित्य को परिष्कृत व संकलित कर जो अविस्मरणीय सेवा प्रदान की, उसके लिये स्वयं स्वामीजी महाराज ने एक पत्र में अपने उद्‌गार इस रूप में व्यक्त किये है। उसका कुछ अंश निम्नप्रकार है–

श्रीवृन्दावन

20-01-1959

प्रीतिस्वरूपा दिव्य ज्योति दुलारी बेटी

सर्वदा अनन्त को रस प्रदान करती रहो। तुम्हारे द्वारा जो सेवा हुई है उसके लिये तो मेरा हृदय ऋणी है। अस्वस्थ अवस्था में अथक प्रयास द्वारा तुमने मानव सेवा संघ को जो साहित्य दिया है, वह भूरी-भूरी सराहनीय है। उसके अतिरिक्त मेरी सर्वोत्कृष्ट सेवा यही है कि जो साधक वर्तमान कर्तव्य कर्म द्वारा प्यारे प्रभु की पूजा कर उन्हीं की मधुर-स्मृति होकर रहता है, वह मुझे अत्यंत प्रिय है। जिसने जाने हुये असत् के त्याग द्वारा असाधन का अन्त कर साधन परायणता प्राप्त की, उसने तो मेरी बड़ी ही सेवा की है।

पूज्या देवकी माताजी बहुत ही आरम्भ में पहली बार जब स्वामीजी से मिलीं, उस समय बहुत दुःखी थीं। स्वामीजी महाराज से उन्होंने अपने मन की सभी बातें कह डालीं। सारी बातें सुनने के पश्चात् स्वामीजी महाराज ने बहुत ही गम्भीर वाणी में कहा–

संसार से अपना मूल्य मत घटाना

''बेटी! एक बात याद रखना। पढ़ना-लिखना, यूनिवर्सिटी की डिग्री हासिल करना या नौकरी करना, ये सभी काम अपनी राग निवृत्ति के लिए करना, परन्तु कभी भी संसार से अपना मूल्य मत घटाना, अर्थात् संसार के पीछे मत भागना, उसे अपने पर हावी मत होने देना।''

पूज्या माताजी ने स्वामीजी महाराज की इस बात को गाँठ बांध लिया और वर्षों बाद जब दुबारा स्वामीजी से मिलीं तो कहा कि–**महाराजजी! मैंने अपना मूल्य नहीं घटाया है, संसार को अपने पर हावी नहीं होने दिया है। यह बात सुनकर महाराजजी अत्यंत ही प्रसन्न हुये और उन्हें पुष्प भेंट किये। बाद के जीवन से उन्होंने हम सभी को अपने आदर्श, एवं अनुकरणीय जीवन से दर्शा दिया कि मानव का मूल्य संसार से कहीं ज्यादा है।**

यह जीवन का सत्य है

पूज्या माताजी साधना के प्रारम्भिक काल में बहुत ही दुःखी होकर, निराश सी होकर श्री महाराजजी को इस प्रकार के वचन सुनाया करती थीं–

''महाराज जी! क्या बताऊँ, मेरी तो पूजा की थाली में पुष्प की पंखुड़ियां मुरझा गई हैं, मैं क्या अर्पण करु? पूजा के पात्र में अर्ध्य का जल सूख गया है, महाराज! क्या अर्पण करूं? है ही नहीं कुछ मेरे पास। तो बड़ी ही करुणा से मधुर-मधुर वाणी में महाराज जी ने उन्हें आश्वासन दिया और वही उनके साधन पथ का सम्बल बना।''

महाराज श्री ने कहा था–लाली! तुम्हारे पास रस घट गया है परमात्मा के पास तो नहीं घटा है। कुछ तुम्हीं को थोड़े ही करना है। लाली! जैसे तुम मुझे सुना रही हो, परमात्मा को भी कह दो। वे तो इतना भर देंगे कि जिसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकती हो। ऐसा वे करते हैं यह उनका स्वभाव ही है।

महाराज श्री ने कहा—जब साधक अपनी असमर्थता की पीड़ा से पीड़ित होता है तो करुणामय की करुणा का दरवाजा खुल जाता है और उसी स्तर पर साध्य उसके भीतर ही अभिव्यक्त होकर, अपने में मिला लेते है, यह जीवन का सत्य ह।

आप बहुत ही तीव्र गति से आगे बढ़ीं

दिव्य ज्योति माताजी के साथ भी यही हुआ। यह गुरु कृपा का ही फल था कि आप बहुत ही तीव्र गति से आगे बढ़ीं। जीवन के प्रारम्भिक काल में, परिस्थितियों की प्रतिकूलता, दुःसह वियोग, और चारों ओर से कठिनाईयों एवं विपत्तियों के कारण आपके कोमल हृदय की कोमल भावनाएं, चकनाचूर हो गई थीं, और उनके स्वयं के शब्दों में–

''घायल हृदय के विवश क्षोभ की आवाज मुझे सुनाई देती— 'कौन है सृष्टि का मालिक? कौन है मेरा निर्माता? क्या मजा आता है उसको सृष्टि बनाने में और व्यक्ति को इतना विवश और दुःखी करके रखने में? यह भी कोई लीला है, जिसमें कोई तड़प तड़प कर जीने के लिए बाध्य हो?

पर धन्य है उस करुणामय विधायक का मंगलमय विधान। मुझमें विद्रोह उठता रहा, उसमें प्यार उमड़ता रहा, जिसकी मिठास मैं आज अनुभव कर रही हूँ।''

स्वामी महाराज की दृढ़ अनुयायी

पूज्य दिव्य ज्योति माताजी का जीवन वास्तव में सेवा, त्याग और प्रेम का पर्याय ही था। आपने सदैव सभी के प्रति सद्भाव रखते हुए मानव कल्याण को ही अपना धर्म माना। आध्यात्मिक जगत् में जब-जब गुरु व शिष्य का उदाहरण रखा जायेगा तब सहज ही संघ के प्रणेता, प्रज्ञाचक्षु श्री स्वामीजी महाराज एवं उनकी दृढ़ अनुयायी एवं निष्ठावान् शिष्या दिव्य ज्योति देवकी माताजी का नाम भी अवश्य ही स्मरण किया जायेगा।

पूज्या माताजी आज सशरीर हमलोगों के बीच में उपस्थित नहीं है। शरीर से कोई भी सदा किसी के साथ रह भी नहीं सकता, परन्तु आपके विचार व साधनामय अनुकरणीय जीवन तथा वात्सल्य अभी भी हमारे समक्ष मूर्तिमान है। आपके विचारों को, स्नेह को और साधना शक्ति को अपने में अनुभव करके, साधन निष्ठ होकर हम सभी अमर जीवन की प्राप्ति के लिए अग्रसर हो सकते हैं, और सम्भवतः यही आपके प्रति हमारी वास्तविक श्रद्धांजलि भी होगी।

हमारी आस्था उतनी ही प्रगाढ़ हो जाय, हमारा प्रभु विश्वास उतना ही दृढ़ हो जाय—इसी विश्वास के साथ—

□□

हरि ओम्

आनन्द : आनन्दः आनन्दः

असत् की कामना ही
असत् को जीवित रखती है

(2)

स्वामी श्री रामशरणजी महाराज

मानव सेवा संघ दर्शन

कुछ न चाहो काम आजाओ—कोई और नहीं कोई गैर नहीं के

एक सच्चे व प्रामाणिक पुजारी

(मानव सेवा संघ के प्रवर्तक करुणापूरित वीतराग संत स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के विषय में प्रसिद्ध है कि—आप साधक के चित्त की गहराई में पैठकर उसके इष्ट-साधन को थमाकर उसे अपने मूल स्वभाव की धारा में प्रवाहित कर देते थे। इसीलिए कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति का साधन-निर्माण उसके स्वयं के जीवन में से होता है। सद्गुरु तो उसमें सहयोगी मात्र बनते है। इस रूपमें स्वामीजी महाराज अनेकों के सद्गुरु बने थे, परंतु सद्गुरु होने की घोषणा आपने कभी किसी के प्रति भी नहीं की। इसी प्रकार के एक सच्चे, सुंदर व प्रामाणिक साधक थे—स्वामी श्रीरामशरणजी महाराज—पूर्वनाम सरदारशहर (चूरू) निवासी श्री कन्हैयालाल जी दूगड़ ।

प्रस्तुत लेख में आपके जीवन-वृत्त का वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त रूपमें किया गया है। मानव सेवा संघ के सुंदर मानव सुंदर समाज सूत्र पर जिनका विश्वास है, ऐसे प्रत्येक साधक के लिए पठनीय है।)

कहते ह —

लीक-लीक गाड़ी चले, लीकही चले कपूत।
लीक छोड़ तीनों चले, शायर, सिंह, सपूत॥

शायर (कवि), सिंह (निर्भीक होकर अपना मार्ग स्वयं निर्धारित करने वाला), सपूत (व्यष्टि व समष्टि दोनों को रोशन करनेवाला)—ये तीनों गुण स्वामी श्री रामशरणजी महाराज में थे।

आपका जन्म वि.सं. 1978 माघ सुदी 14, तदनुसार दिनांक 12-2-1922 को सरदारशहर (चूरू: राजस्थान) के स्वनाम धन्य, पामाणिकप्रवर सेठ (श्रेष्ठ) श्री सुमेरमलजी दूगड के द्वितीय पुत्र के रूपमें हुआ। यह घराना पिछली दो पीढ़ियों से तत्कालीन बीकानेर राज्य तथा समाज में अपनी प्रामाणिकता, ईमानदारी, सचाई और उदारता आदि की दृष्टि से अद्वितीय रहा है। राजा तथा प्रजा-दोनों में ही इस कुटुम्ब की बड़ी प्रतिष्ठा रही है। सेठ सुमेरमलजी तक पहुँचते-पहुँचते वह पुरातन गरिमा उत्तरोत्तर वृद्धिंगत रही। बौद्धिक प्रखरता और अनवरत श्रमशीलता के कारण यह परिवार सम्पत्ति एवं वैभव में भी उन्नतिशील रहा। **विपुल सुख-समृद्धियुक्त होते हुए भी सरलता, सहृदयता, निरभिमानता और सद्व्यवहारशीलता के लिए इसकी अपनी पहचान रही है, जो दुर्लभ है।**

दूगड़ जी का शिक्षण वर्तमान प्रकार से चलने वाले विद्यालयों में न होकर उनके अपने ही भवन में बड़े सात्विक और सुन्दर गुरुकुलोचित शिक्षण व्यवस्था में विकसित हुआ। आचार, व्यवहार, सात्त्विक और शुद्ध बने रहें, सत्संस्कार संचित होते रहें, दूषित वातावरण से बचे रहें, अतः इस परिवार में बालकों की पढ़ाई घर पर ही करवाने की प्रवृत्ति थी। आपका अंग्रेजी व संस्कृत का समुचित शिक्षण उसी प्रकार के आश्रमतुल्य वातावरण में सम्पन्न हुआ था जैसे किसी समय में शास्त्रीय मर्यादानुसार अपना ब्रह्मचर्याश्रम का जीवन भलीभांति व्यतीत कर सुयोग्य बनकर ब्रह्मचारी-विद्यार्थी गुरु की आज्ञा से अपने घर आते थे।

विवाह एवं गार्हस्थ्य जीवन

श्री कन्हैयालाल जी दूगड़ का विवाह गंगाशहर (बीकानेर) निवासी श्रीमान् सेठ श्री राजकरणजी चोपड़ा की पुत्री कुमारी इचरजदेवी के साथ

सम्पन्न हुआ। आपका गार्हस्थ्य जीवन अनेक दृष्टियों से बड़ा ही महत्वपूर्ण रहा। परिवार में समरसता, काव्य, संगीत आदि के साथ-साथ सात्विक मनोरंजनप्रियता आदि के साथ-साथ आपमें आत्मोपासना या आध्यात्मिक साधना का विशिष्ट संस्कार था, जो विविध उपक्रमों के रूपमें प्रस्फुटित और विकसित होता रहा।

आपके चार पुत्र व एक पुत्री हैं। जिनके नाम हैं—श्री कनकबाबू, मिलाप बाबू, भरत बाबू, दिनेश बाबू एवं श्रीमती भारती सेठिया। पांचों संस्कारवान् व सेवा भावी हैं। श्री कनकबाबू गांधी विद्या मंदिर के अध्यक्ष है तथा श्री मिलाप बाबू ने स्वामी जी महाराज द्वारा आरम्भ किया गया विद्या प्रसार का सारा कार्य पूरी तरह से संभाल लिया है। **गौरव की बात है कि गांधी विद्या मंदिर विश्वविद्यालय बन चुका है। श्री मिलाप बाबू इसके संस्थापक कुलपति है।**

सनातन धर्म की ओर झुकाव

श्री दूगड़जी का जन्म एक जैन धर्मानुरागी परिवार में हुआ था। बाल्यकाल में तथा उसके पश्चात् पारिपार्श्विक रूपमें सनातन धर्म का भी वातावरण प्राप्त होता रहा, किन्तु मूलतः तो वे जैन-परम्परा से ही संबद्ध थे। आपने अपने संस्मरणों में बड़े ही विनयगर्भित शब्दों में लिखा है—

''स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज और गांधीजी के अलावा भाईजी श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दार का नाम लिए बगैर मैं नहीं रह सकता, जिन्होंने मुझे साकार भगवान् की उपासना में लगा दिया। बाला वाली सतीमाईजी ने, जिन्होंने 40 साल से अधिक अवधि तक अन्न-जल ग्रहण नहीं किया था, मुझे रामनाम जप की तुलसी-माला पहनाई और रामनाम जप की प्रेरणा दी। अतः मैं अपना ज्ञान-गुरु तो स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज को ही मानता हूँ तथा उक्त अन्य महानुभावों को भी गुरुवत् स्वीकार करता हूँ। **मानव-**

सेवा संघ, वृन्दावन वाले हनुमंतदादाजी तथा श्रद्धामाताजी भी मेरे प्रेरणा श्रोत रहे हैं।''

गांधी विद्या मंदिर की स्थापना द्वारा शिक्षण क्षेत्र में

महात्मा गांधी को 30 जनवरी 1948 को गोली लगी उस समय युवा दूगड़जी की उम्र मात्र 26 वर्ष की थी। इस घटना ने आपको झकझोर दिया तथा शिक्षण द्वारा राष्ट्रसेवा के लिए तीव्र रूपसे प्रेरित किया। **आपको प्रेरणा हुई कि गांधीजी के नामपर ही वे अपने शैक्षिक स्वप्न को साकार करें। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।**

तदनुसार 2 अक्टूबर 1950 (गांधी-जयंति) के दिन से ही आपने गांधी विद्या मंदिर—शिक्षण संस्थान का कार्य आरंभ करने का निश्चय कर लिया। अपने साथियों एवं गांधीवादी नेताओं व विचारकों से मार्गदर्शन लेकर आपने 7 अक्टूबर 1950 को भूमि समिति का विधिवत् गठन किया। **अपना विशाल महल छोड़कर अरण्य भूमि में एक घास-फूस की झोंपड़ी में निवास करते हुए संस्थान के स्वप्न को तन, मन, धन से पूर्ण करने का संकल्प किया। आज के 60 वर्ष पूर्व इस महनीय कार्य में आपने 5 लाख रूपए प्रदान किए, जिसका आज कोई मोल नहीं हो सकता। इस विद्या मंदिर के माध्यम से शिक्षण क्षेत्र में जो सेवा हुई है वह सर्वविदित है। आज तो सरदारशहर में आइ.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय की स्थापना भी हो चुकी है।**

अन्यान्य सेवा कार्य

आपके द्वारा अपने जीवन काल में जो सेवा कार्य सम्पन्न हुए उनका वर्णन संभव नहीं। **जहाँ भी गड्ढा देखा उसे भरने के लिए आप कूद पड़त**। गांवों में जिनके घर नहीं थे या जिनके घर बहुत ही टूटी-फूटी हालत में थे अथवा आग आदि से जलकर नष्ट हो गए थे, उनके रहने हेतु नये

घरों का निर्माण तथा पुराने घरों की मरम्मत आदि कार्य आपने करवाए। क्षतिग्रस्त मंदिरों का जीर्णोद्धार आपने करवाया तथा अनेक बस-स्टैंडों पर विश्रामस्थल व अनेक गांवों में प्रसाधन-गृह बनवाए। अतिथिशालाओं का निर्माण कराया।

स्वामीजी जो भी कार्य करते सूक्ष्म चिन्तन, उपयोगिता एवं योग्तापूर्वक करते। लोग सर्वथा सहायतापेशी बनकर पंगु न बन जाएं, उनमें कर्तव्य भावना और दायित्वबोध भी रहे, इस हेतु आपने विशेष विधिक्रम अपनाया। उदाहरणार्थ उन्हें जब कहा जाता कि आपके ग्राम की कन्या है, अतः आपका सहयोग वांछित है। तो कन्या के पिता व ग्रामवासियों के सहयोग के अनन्तर विवाह में जितनी राशि कम रहती उसकी व्यवस्था आप कर देते रहे। **इस प्रकार विविध सेवा कार्यों का जो सुन्दर-सुव्यवस्थित क्रम चला, उसका रहस्य यह है कि पूज्य स्वामीजी को अनेक प्रकार के सेवाकार्य सम्यक्, विधिवत् संपादित करने में बड़ी आनंदानुभूति होती थी।**

वानप्रस्थी दूगड़जी

आप गृहस्थवास के अन्तर्गत सांसारिक कार्यों की अपेक्षा आध्यात्मिक साधनामय जीवन की ओर अधिक आकृष्ट रहे। **आपके जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव वीतराग, ब्रह्मनिष्ठ, प्रज्ञाचक्षु, क्रान्तिकारी संत, मानव सेवा संघ के प्रवर्तक स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज का हुआ।** 20 वर्ष की अवस्था ई. सन् 1942 में स्वर्गाश्रम (ऋषीकेश) में आपको उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनकी वाणी में दूगड़ जी को सत्य का दर्शन अनुभूत हुआ। उनके द्वारा विभिन्न विषयों के चमत्कारिक विश्लेषण से आप इतने प्रभावित हुए कि मनही मन आपको गुरु रूपमें स्वीकार कर लिया।

सन्यास ग्रहण की उत्कंठा

श्री दूगड़जी की साधना, यश और वैराग्य उत्तरोत्तर संवर्धनशील रहा। आप सन्यास ग्रहण करना चाहते थे। सद्गुरु स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के समक्ष सन्यास-दीक्षा प्रदान करने हेतु आपने निवेदन किया। इस प्रसंग में आपको जो मार्गदर्शन मिला वह अत्यंत उद्बोधप्रद था—

''सेवा के माध्यम से ही सर्वेश्वर को पाने की चेष्टा करो। सेवा करने से वस्तु, व्यक्ति व परिस्थितियों का राग टूटता है। जब तक राग नहीं टूटेगा, तब तक वैराग्य की वास्तविक दशा प्राप्त नहीं होगी। राग टूटने पर ही प्रभु चरणों में असली अनुराग पैदा होगा।''

उपरोक्त उद्बोधन के आधार पर दूगड़जी महाराज सेवा के कामों में और तीव्रता से जुट गए। मनोविज्ञान की भाषा में यह आत्मपरिष्कृति का निश्चय ही एक विलक्षण क्रम सिद्ध हुआ। धीरे-धीरे आपकी सन्यास-ग्रहण करने की स्थिति परिपक्व होती गई।

इसी बीच 25 दिसंबर ई. सन् 1974 (ईसा जयंति, ईदमिलादुन्नबी, गीता जयंति व मोक्षदा एकादशी) के दिन स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज ने वृन्दावन में अपनी इहलीला समाप्त की। **इससे दूगड़जी महाराज की सन्यास ग्रहण की उत्कंठा और अधिक बलवती हो गई।**

सन्यास दीक्षा-ग्रहण

आपने स्वामी श्री रामसुखदास जी महाराज के समक्ष अपनी इस भावना को प्रकट किया तो आपने फरमाया—

मैं आपको प्रव्रजित नहीं कर सकता क्योंकि आप स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के शिष्य हैं, जो मेरे लिए भी परम श्रद्धेय व पूजनीय थे। आप शिष्य तो उनके हैं ही उन्हीं के नाम से सन्यास स्वीकार करें।

अंततः 22 दिसंबर सन् 1985 को स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज की पुण्य तिथि व गीता जयंति के पावन-पर्व पर मानव सेवा संघ, वृन्दावन में उनके समाधि स्थल पर आपने भव्य समारोह में सन्यास की दीक्षा ग्रहण की। **आपने अपने गुरुवर्य के तपः साधनामय दिव्य व्यक्तित्व की स्व में अवतारणा हेतु उनका उत्तरीय धारण किया।** सनातन धर्म के महान् शास्त्रज्ञ और प्रखर प्रवचनकार स्वामी श्री अखंडानंदजी महाराज द्वारा निर्देशित शास्त्रीय विधि-विधानपूर्वक एवं स्वामी श्री रामसुखदासजी महाराज के साक्ष्य में पूज्य शरणानंदजी महाराज के नाम से आपने दीक्षा ग्रहण की।

उस समय आपके श्रीमुख से प्रस्फुटित यह गीतिका जीवन के प्रति आपके दृष्टिकोण एवं भावी लक्ष्य को प्रकाशित करती है—

साधु दिया बनाय, विमल वेश को पहनाय।
रखूँ इसे संभाल, कहीं दाग न लग जाय ॥
मेरा शरीर विश्व हेतु, काम में आ जाय।
मेरा उर हरिप्रेम से, अशेष छका जाय ॥
मेरा अहं में रंच भी, गुमान न रह जाय।
मन-वचन-कर्म से, कोई अहित न हो जाय ॥
कोई न गैर हों, सबको बन्धु लूँ बनाय।
श्रीरामशरण सावधान, सतत बढ़े जाय ॥

रामशरण नाम की सार्थकता तथा जनहित आश्रम मझेवला की स्थापना

स्वामी श्री रामशरणजी महाराज ने अपने परमाराध्य भगवान् राम एवं पूज्य सद्गुरुदेव स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज—इन दोनों के नामों को जोड़कर अपने नाम को जो सार्थकता प्रदान की, वह उनकी प्रभु-भक्ति और गुरु-श्रद्धा

की प्रतीक थी। सन्यासोपरांत जन जीवन में सेवा, त्याग, प्रेम की लहरियां जागृत करने की उत्कंठा आपमें तीव्र रूपमें जागृत हो उठी। उस निमित्त आपने ई. सन् 1986 में पुष्कर में पहला चातुर्मास किया। चातुर्मास के दौरान आपको वहां के लोगों द्वारा जानकारी मिली कि पुष्कर से 10 किलोमीटर दूर सुरम्य पहाड़ियों से घिरा हुआ कड़ैल-मझेवला में एक ऐसा स्थान है जहाँ स्वामीश्री शरणानंदजी महाराज कभी बिराजे थे और उस स्थान के लिए फरमाया था कि—**यह मेरा अपना स्थान है**। उस स्थान पर जनहित आश्रम के नाम से आश्रम बनाने के आप निमित्त बने जहाँ आपने जीवन के अंतिम 21 वर्षों तक तीव्र साधना की। वह आश्रम आज भी अपनी भव्यता व दिव्यता लिए हुए मौजूद है।

आपकी धर्मपत्नि—एक गुप्त साधिका

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती श्यामाजी (पूर्व नाम इचरजदेवीजी) समय-समय पर सपरिवार मझेवला पधारकर आश्रम को चैतन्य व जागृत रखती हैं। आप भी एक उच्च कोटि की गुप्त साधिका हैं। पीहर पक्ष भी सादगीपूर्ण व समृद्ध है। स्वामीजी महाराज के जीवन काल में तो आपने उनके प्रति उनके प्रत्येक कार्य में शत-प्रतिशत सहयोग दिया ही, उनके धाम गमन के पश्चात भी आप अध्यात्म की ज्योति जलाए हुए हैं। आपके दर्शनों से ही एक विशेष प्रकार की आध्यात्मिक अनुभूति होती है।

इहलीला की समाप्ति

इस प्रकार स्वामी श्री रामशरणजी महाराज अपने को सुंदर बनाकर अनेक विध सुंदर समाज निर्माण के निमित्त बने। **मानव सेवा संघ के दर्शन के प्रकाश में आपको कुछ न चाहो काम आजाओ तथा कोई और नहीं कोई गैर नहीं के सच्चे व प्रामाणिक पुजारी कहें तो**

अत्युक्ति नहीं होगी। 1 अगस्त 2005 एकादशी के दिन ब्राह्ममुहूर्त में इन संत ने अपनी इहलीला समाप्त की। आपका अंतिम संस्कार सरदारशहर स्थित सेठ सम्पतराम जी दूगड़ विद्यालय के राममंच परिसर में किया गया। शव यात्रा में हजारों-हजार स्त्री-पुरुष सम्मिलत होकर इस महामानव के प्रति अपनी आत्मीयता का परिचय दिया।

□□

(आई ए एस ई विश्वविद्यालय, गांधीविद्या मंदिर, सरदारशहर(राज.) द्वारा प्रकाशित—**सर्वस्वदानी कर्मयोगी** प्रथम खण्ड से साभार)

जिसके जीवन में पर-पीड़ा होती है उसके जीवन में करुणा की धारा अविरल बहती है। करुणा के रस से भोग की रुचि का नाश स्वतः हो जाता है

-संतवाणी

(3)

स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज एवं श्री बालासती माता (रुपकंवरजी)

--स्वर्गीय ठाकुर केसरीसिंह बारहठ

(ग्राम रावणिया, जोधपुर जिला के राजपूत परिवार की बेटी रुपकंवर का विवाह ग्राम बाला जोधपुर के कुंवर जुझारसिंहजी के साथ ईस्वी सन् 1919 में हुआ था। विवाह के 15 दिवस पश्चात् ही जुझारसिंहजी का देहावसान हो गया। उस समय रुपकंवर की उम्र मात्र 16 वर्ष की थी। उन्होंने मृत्यु को अत्यंत सहज रूप से लिया तथा उस समय की परंपरा के अनुसार पति के शव के साथ अपने शरीर का दाह नहीं किया। परंतु खेतीबाड़ी, गोपालन, पीसना-पोना आदि घोर शारीरिक श्रम द्वारा आपने 23 वर्षों तक ससुराल के परिवार की खूब सेवा की।

एक अप्रत्याशित घटना ने आपके जीवन में आमूल-चूल क्रांति कर दी। पति जुझारसिंहजी के ज्येष्ठ भ्राता जालमसिंह के पुत्र श्री मानसिंह को वह अपना मानस पुत्र मानती थीं। दोनों का व्यवहार भी एक दूसरे के प्रति मां-बेटे जैसा ही था। दैवयोग से सन् 1942 में मानसिंह की अकालमृत्यु हो गई। इससे रुपकंवरजी को भयंकर धक्का लगा। उस समय आपकी उम्र 39 वर्ष की थी। आपने भी मानसिंह की चिता के साथ जलकर अपनी इहलीला समाप्त करने का निर्णय किया। परिवार जनों के समझाने-बुझाने पर आपने जलकर मरने का विचार तो त्याग दिया। परंतु आपका अन्न-जल ग्रहण करना पूरी तरह से छूट गया। 83 वर्ष की उम्र में आपका देवलोकगमन हुआ तबतक याने 44 वर्षों तक आपने मुंह से अन्न-जल कुछ भी ग्रहण नहीं किया।

फिर भी बाला ग्राम में आश्रम बनाकर रहीं व जनता-जनार्दन की खूब सेवा की। मृत्यु पर्यंत स्वस्थ व पूरी तरह से क्रियाशील रहीं। आपमें सत् जागृत हो गया था, इसीलिए सदैव आपको सती माता के नाम से पुकारते थे। बाला ग्राम की बहू होने के कारण ही आप जगत् में बाला सती माता के नाम से प्रसिद्ध हुई।

स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज का बाला सती माता के साथ बड़ा ही घनिष्ठ आध्यात्मिक संबंध रहा। वे उनके बाला ग्राम स्थित आश्रम भी पधारते रहते थे तथा उन्हें भी वृंदावन आदि आश्रमों में बुलाते रहते थे। ठाकुर केसरीसिंहजी ने आप दोनों के विषय में जो संस्मरण लिखा था वह जनता जनार्दन की सेवार्थ यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं।)

स्वामीजी एवम् सतीजी बापजी की परस्पर आत्मीयता

पूज्या सती मां एवं स्वामीजी में परस्पर बड़ी आत्मीयता थी। ईस्वी सन् 1941 या 1942 में स्वर्गाश्रम में लक्ष्मण झूला के निकट गंगा तट पर हुए इन दोनों संतों के प्रथम मिलन का मैं प्रत्यक्षदर्शी साक्षी रहा हूं। तत्पश्चात् तो सती मां अनेक बार स्वामीजी के यहां वृन्दावन के मानव सेवा संघ आश्रम पधारे और कई-कई दिन बल्कि, महीने-महीने, दो-दो महीने वहां बिराजे भी, और स्वामीजी भी कई बार सती मां के यहाँ बाला पधारे। दोनों ही संत एक दूसरे के प्रति कैसा आदर एवं आत्मीयतापूर्ण बरताव करते थे, इस संबंध में उदाहरणस्वरूप एकाध बात की चर्चा कर देना ही पर्याप्त होगा।

स्वामीजी के प्रति सतीजी बापजी का आदर भाव

1969 की बात है। स्वामीजी अपने भक्त मित्रों की एक मंडली सहित बाला पधारे हुए थे। कुमारी अर्पिताजी जो कि मानव सेवा संघ की वर्तमान महामंत्री हैं, ने अपने आंतरिक मनोभावों पर आधारित कुछ निवेदन लिपिबद्ध

कर नदी में स्थित मंदिर में भगवान् शंकर की मूर्ति के सामने रख दिया तथा यह पूज्य सती मां को भी बता दिया। इस पर सती मां ने फरमाया कि "मूर्तिवाला शंकर तो चुप्पा शंकर है" तथा स्वामीजी की तरफ इंगित करते हुए फरमाया, "पर यहाँ तो यह साक्षात् "बोलता" शंकर स्वयं ही मौजूद है। देखो जाणै साक्षात् शंकर ही है।" स्वामीजी के लिये ऐसा कहते हुए सती मां के मुख से मैंने स्वयं भी एकाधिक बार सुना है–यद्यपि कब कहा, कहाँ, किस अवसर पर कहा आदि अब ठीक-ठीक याद नहीं है। किन्तु मानव सेवा संघ की महामंत्री कुमारी अर्पिता जी को उक्त बात अच्छी तरह याद है, और उन्हीं के बताये अनुसार ही यहाँ इस घटना का उल्लेख किया गया है।

मानव सेवा संघ सत्संग हॉल का उद्घाटन

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सती मां कई बार वृन्दावन में स्वामीजी के यहाँ मानव सेवा संघ आश्रम पधारे थे और कई-कई दिन वहाँ बिराजे भी। मानव सेवा संघ आश्रम के बड़े सत्संग हॉल का उद्घाटन स्वामीजी ने सती मां के हाथों ही करवाया था।

श्रीमती कुसुम पर सतीजी बापजी की कृपा

1972 के होली के दिनों की बात है। कुसुम नामक एक कायस्थ कुलोत्पन्न 19 वर्षीय महिला वृन्दावन आश्रम आई हुई थीं। साल, डेढ़ साल पहले ही उसका विवाह हुआ था। उसका पति भारतीय सेना में एक अफसर था। सन् 71 के भारत-पाकिस्तान युद्ध में वह वीरगति को प्राप्त हुआ था। तभी से कुसुम बहुत दुःखी रहने लगी। प्रायः कमरा बन्द करके चुपचाप गुमसुम पड़ी रहती। पास में पति की तस्वीर तथा रामायण रखती। बहुत ही दुःखी एवं विक्षिप्तवत् रहती थी। स्वामीजी का हृदय उसके दुःख से अत्यन्त द्रवित हुआ, और एक दिन सत्संग समाप्त होते ही उन्होंने सती मां को आवाज लगाई। जब उन्हें यह बताया गया कि

सती मां अपने कमरे में पधार गये हैं तो उन्होंने कुछ लोगों को भेज कर (जिनमें पूज्या देवकी माताजी तथा झालामंड ठाकुर साहब जगतसिंहजी की माता तथा धर्म पत्नी भी थीं) सती मां को कहलाया कि लड़की के दुःख से हमें भी बड़ी पीड़ा हो रही है। सती मां से निवेदन करो कि वे कृपापूर्वक पधार कर कुसुम के सिर पर हाथ फेर दें। **'बाबा ने फरमाया है तो क्युं नहीं चाल'** कहते हुए सती मां कुसुम के कमरे में पधारे। कुसुम पूर्ववत गुमसुम लेटी रही। सती मां ने कृपापूर्वक उसके सिर पर हाथ फेरा, और यह भी कहा कि इसके पति की आत्मा भटक गई है। उसके लिए गया में इसके हाथ से पिंड़दान करवा दिया जाय। सती मां के फरमाने के अनुसार ऐसा करा दिया गया। कुसुम पूर्णतया स्वस्थ हो गई। लखनऊ में वह अपने भाई के साथ रहते हुए एक अध्यापिका के पद पर काम करने लगी। वृन्दावन में देवकी माताजी के नाम कुसुम के पत्र आते रहते थे। सन् 1980-81 में ऐसे कुछ पत्र स्वयं जगत सिंहजी ने भी पढ़े थे।

सतीजी बापजी के प्रति स्वामीजी का आदर भाव

एक बार सत्संग समाप्त होने पर एक श्रोता ने उठ कर कहा कि सती मां से वह कुछ पूछना चाहता है। इस पर स्वामीजी ने कुछ सख्ती से कहा सती मां से क्या पूछना चाहते हो? उनसे जो पूछना चाहते हो वह मुझ से पूछो, मैं उत्तर दूंगा। **सती मां विश्व की एक अलौकिक विभूति है।** प्रश्न करना चाहने वाला आगे कुछ न बोला।

सती मां के निराहार जीवन के संबंध में स्वामीजी को कभी लेश मात्र भी कोई संदेह नहीं हुआ। गंगा तट पर सती मां से हुए उनके प्रथम मिलन के पश्चात् ही उन्होंने मुझ से कहा था कि **सती होने के निश्चयोपरान्त उनमें जीने की सभी वासनाएँ तो बिल्कुल समाप्त ही हो गई थी जिसके फलस्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म हुई उनकी इन्द्रियों**

द्वारा प्रकृति के सूक्ष्म तत्वों से ही उनका शरीर आवश्यक खुराक ग्रहण कर सकता है। सती मां के लिए स्वच्छ वायु, मिट्टी तथा जल स्नान से ही शरीर की सभी आवश्यकताएँ पूरी हो जाती है। इसके लिए उन्होंने कोई साधना नहीं की। भगवन्तकृपा से ही यह हुआ।

कई वर्षों बाद एक दिन फिर सती मां के संबंध में चर्चा करते हुए यही बात स्वामीजी ने कही थी, जिसे ठाकुर साहब जगत सिंहजी ने अपने टेपरिकार्डर पर रेकार्ड कर ली थी। आज भी वह टेप उनके पास है, अभी कुछ ही समय पहले मैंने उसको सुना था, और बाला ले जाकर चैन कँवर बाईसा को भी सुनाया था।

□□

(श्री बाला सती माता—लीलामृत पुस्तक से साभार)

ग्राम - रुपावास
(पाली-मारवाड़)

सेवा-सामग्री को अपने सुख में
व्यय करना अपने ही द्वारा अपना
सर्वनाश-करना है। मानव का अपना
हित तो त्याग में है। त्याग के अपनाते
ही परम शांति, स्वाधीनता, सेवा और
प्रीति स्वतः जागृत होती है। शांति और
स्वाधीनता अपने लिए, सेवा जगत् के लिये
और प्रीति उसके लिये, जो जगत् का प्रकाशक
तथा आश्रय है

-संतवाणी

(4)

मानव सेवा संघ की समर्पित साधिका कृष्णप्रिया मुक्तेश्वरी (ब्रह्मलीन) की कहानी उन्हीं की लेखनी से

(कु. मुक्तेश्वरीजी ने यह कहानी अपनी लेखनी से लिखी बताई। उन्हें ब्रह्मलीन होने के पश्चात् हमें प्रकाशनार्थ भेजी गई है। सं.)

पज्ञाचक्षु स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज का सान्निध्य मुझे मेरी बाल्यावस्था में ही मिल गया था—यह मेरा सौभाग्य कहूं या क्या कहूं—समझ में नहीं आता। मेरा पैतृक निवास बलरामपुर (यू.पी.) में है। मेरे पूज्य पिताश्री के आग्रह पर स्वामीजी महाराज प्रतिवर्ष बलरामपुर पधारते थे। उनकी पावन निश्रा में सत्संग समारोह आयोजित किया जाता था। आपका आवास हमारे ही घर पर रहता। मैं अक्सर उनकी गोद में बैठ जाया करती थी। आप मुझे खूब दुलारते व पुचकारते।

स्वामी जी महाराज की वेदना तथा मानव सेवा संघ की स्थापना

मैं बड़ी हो गई थी। मुझे याद है —स्वामीजी महाराज मानव सेवा संघ की स्थापना की चर्चा मेरे पूज्य पिताजी से किया करते थे। आपका विचार था कि—सुंदर समाज के निर्माण के लिए मानव का सुंदर बनना अति आवश्यक है। भारत की राजनैतिक स्वाधीनता (सन् 1947) के पश्चात् देश में बने वातावरण से वह अत्यंत व्यथित थे। विशेष रूप से बालिकाओं व नारी जाति की सेवा करके वे उन्हें सेवा का माध्यम बनाना चाहते थे। इसीलिए आपने मानव सेवा संघ की स्थापना

की तथा सर्वप्रथम पूज्या देवकी दीदी को इसकी आजीवन अध्यक्षा बनाया।

बलरामपुर में वृहद् सभा का आयोजन

जवानों की जवानी तथा वृद्धजनों की वृद्धावस्था की याचना

स्वामीजी महाराज ने बलरामपुर में एक वृहद् सभा का आयोजन करवाया जिसमें जवानों की जवानी तथा वृद्धजनों की वृद्धावस्था, भिक्षा में मांगी। मैं भी उस सभा में उपस्थित थी। आपने मुझे भी मेरे पिताश्री से मांग लिया तथा मेरे सारे भावी जीवन का भार अपने ऊपर ले लिया। मुझे याद है—उनकी इस मांग पर मैं जरा भी विचलित नहीं हुई, पूरी तरह से सहज रही। बल्कि भीतर से मुझे एक प्रकार से निश्चितता का बोध हुआ।

श्रीधाम वृंदावन में आगमन

सन् 1958 में मैं स्वामीजी महाराज की सन्निधि में वृंदावनधाम आ गई थी। परंतु आपने मेरी आगे की शिक्षा हेतु मुझे रांची पूज्या देवकी दीदी के पास भेज दिया। वर्ष 1962 में मैंने एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की व वापस वृन्दावन आ गई।

बाल मंदिर की अधिष्ठात्री

मैंने अपना लक्ष्य पूरी तरह से स्वामीजी महाराज (जिन्हें मैं पिताजी कहने लग गई थी) के आदेशानुसार काम करना तथा उनके परिकरों की सेवा करने का बना लिया था। एक दिन पिताजी ने मुझे पूछा—'बेटी! बोलो, तुम नौकरी करोगी या सेवा?' मेरे मुंह से बिना कुछ सोचे समझे निकल पड़ा—सेवा। उस समय स्वामीजी महाराज के सान्निध्य में आश्रम द्वारा संचालित बाल मंदिर में लगभग 25 बालिकाएं जीवन के मूल सिद्धान्तों की शिक्षा ग्रहण कर रही थीं। स्वामीजी महाराज ने मुझे बाल मंदिर की अधिष्ठात्री बना दिया। मुझे उन बाल-ब्रह्मचारियों की सेवा करने का आदेश

मिला ताकि मातृ शक्ति को सजीवता प्राप्त होने के साथ-साथ सुंदर समाज का निर्माण हो सके।

आगे की दिशा

कुछ वर्षों पश्चात् पिताजी ने मानव सेवा संघ की प्रधान मंत्री जैसे गरिमापूर्ण व गुरुतर पद का भार मेरे कंधों पर डाल दिया। आप मुझे देश के विभिन्न प्रांतों में होने वाले अधिकांश सत्संग-समारोहों में अपने साथ ले जाने लगे। इससे मुझे इस देश की जनता-जनार्दन के दर्शन करने व उनको समझने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

राधाष्टमी व हमारे ठाकुरजी

पिताजी जिसे नहीं भूलते थे वह था — **राधाष्टमी महोत्सव**। एक बार की बात है, स्वामीजी महाराज के साथ मैं रेलयात्रा कर रही थी। बीच में ही राधाष्टमी पर्व आ गया। सुबह 5 बजे ही आपने मुझे राधाजी के जन्म के उपलक्ष्य में बधाई दी। मैं जबसे वृंदावन में आई तबसे राधाष्टमी का पर्व बड़े ही उत्साह के साथ मनाती चली आ रही हूँ। सभी सत्संगी साधक भाई-बहिन व बाल मंदिर की बालिकाएं इस पर्व को बड़े ही मनोयोग से मनाते हैं। **इस नाशवान् शरीर के न रहने पर सभी सहयोगी साधक भाई-बहिन व बालमंदिर की कन्याएँ पूरे उत्साह के साथ राधाष्टमी का पर्व मनाते रहें ऐसी मेरी भावना है। किशोरी जी व स्वामीजी की कृपा सभी पर बरसती रहेगी।**

एक बार की बात है—आश्रम के खेतों की जुताई-बुवाई हेतु महाराजजी ने अपनी निजी सेवा की राशि से एक ट्रैक्टर खरीदा। मैं जिन ठाकुरजी की नित्य सेवा करती हूँ, आपने उन्हें उस नये ट्रैक्टर में पधराकर पूरे आश्रम में भ्रमण करवाया। तत्पश्चात् कृषि कार्य हेतु टैक्ट्रर जगदीश भैया को संभला दिया।

स्वामीजी महाराज की संत कुटी में

कुछ वर्षों पश्चात् कार्य की अधिकता के कारण मैंने संघ के प्रधानमंत्री पद से त्याग पत्र दे दिया तथा पूज्या देवकी दीदी के समर्थन से कु. अर्पिताजी को वह पद भार सौंप दिया।

पूज्य दीदी के गोलोकधाम गमन के पश्चात् सन् 1992 में आश्रम के प्रबंधक का कार्य मुझे सौंप दिया गया जिसे मैं पूरी शक्ति लगाकर सन् 2002 तक करती रही। दुर्भाग्य से आश्रम की अशांति व वैमनस्यता के कारण मुझे उस सेवा से मुक्त होना पड़ा। तत्पश्चात् मैं पूज्य पिताजी (स्वामीजी महाराज) द्वारा मुझे प्रदान की गई संतकुटी में रहने लगी। जगदीश भैय्या आश्रम में आये तभी से उस कुटी में रह रहे थे। पिताजी ने जाते-जाते मुझे संभालने का वचन जगदीश भैय्या से ले लिया था।

जब मैं संत कुटी में आकर रहने लगी तब आश्रम प्रबंधन के द्वारा मुझे किसी भी प्रकार का सहयोग करने से इंकार कर दिया गया। परंतु पिताजी व किशोरीजी की कृपा से मेरा सब काम सुचारू रूपसे चल रहा है। जनता-जनार्दन के सहयोग के कारण मुझे जीवन यापन में कोई कठिनाई नहीं आ रही है।मेरा पूरा समय स्वामीजी महाराज की मधुर स्मृतियों व किशोरीजी की सेवा में व्यतीत हो रहा है। पिताजी की कृपा मेरे ऊपर सदैव रही है और आज भी है जिसका अनुभव मैं सतत कर रही हूँ।

स्वामीजी महाराज का अंतिम संदेश

स्वामीजी महाराज ने अपने भौतिक शरीर का त्याग करने से पूर्व सभी परिकरों को आदेशित किा था कि—मेरी मृत्यु के पश्चात् कोई चिन्ह नहीं बनेगा, कोई समाधि नहीं बनेगी और न ही कोई स्मारक बनेगा। शोक सभाएं नहीं होंगी—होंगी तो केवल प्रार्थना या सत्संग सभाएं होंगी। आपने अपने शरीर का त्याग 25 दिसंबर 1974 को कर दिया लेकिन आज भी वह हम सबके बीच मौजूद हैं।

समय-समय पर सभी सत्संगी भाई बहिनों को इसकी अनुभूति होती रहती है।

उनके अंति वचन थे—

कोई और नहीं, कोई गैर नहीं

-हरिः शरणम्

मैं भी दर्शन करने नहीं जाऊंगा

विनोबाजी की पदयात्रा महाराष्ट्र में चल रही थी। सोलापुर जिले में मैं भी इस पदयात्रा में उनके साथ था। पदयात्रा टोली में फातिमा नामक एक मुस्लिम महिला थीं। हमारी पदयात्रा पंढ़रपुर पहुंची। पंढ़रपुर में सर्वोदय सम्मेलन था। बाबा की फातिमा सहित विठोबा के दर्शनों के लिए जाने की बात मंदिर के अधिकारियों ने अमान्य की। विनोबाजी ने भरी सभा में कहा कि ठीक है, फातिमा अगर मंदिर में नहीं जा सकती तो—**मैं भी दर्शन करने नहीं जाऊँगा।**

बाबा का गला भर आया। जहाँ तक मैं देखपाया उन्हें अश्रुपात होने लगा। विनोबाजी विठोबा के दर्शन करने नहीं जायेंगे, यह असाधारण घटना थी। सारा वातावरण इस चर्चा से भर गया। अन्ततः मंदिर के अधिकारियों ने फातिमा सहित विठोबा के दर्शनों के लिए जाने की विनोबाजी की बात मान्य की। विनोबाजी ने फातिमा सहित ही विठोबा के दर्शन किए।

-जगदेवसिंह ठाकुर

('शांति सेवक' से साभार)

(5)

एक नए लोक का निर्माण हो रहा है

हरियाणा

नव वृन्दावनधाम की ओर अग्रसर

हर्ष की बात है कि कृष्ण-अर्जुन संवाद का पावन व गरिमामयधाम हरियाणा, नववृंदावनधाम में परिणत होता जा रहा है। वर्तमान में उस धाम के दो प्रमुख चैतन्यघाट हैं -

1. करनाल मानव सेवा संघ, करनाल
2. जन सेवा संस्थान, रोहतक (पूर्व मानव सेवा संघ, रोहतक)

इन दोनों चैतन्यघाटों की विशेषता यह है कि
यहां प्यारे दुःखी की पूजा की जाती है

इनके उद्देश्य हैं —

1. मानव सेवा संघ के प्रवर्तक स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज द्वारा प्रदत्त दर्शन का व्यापक प्रचार-प्रसार।
2. निकटवर्ती जन-समाज की यथाशक्ति क्रियात्मकरूप से सेवा करना तथा प्राप्त धन व बल निर्धनों व निर्बलों की सेवा में लगाना। क्योंकि संग्रहित सम्पत्ति निर्धनों की धरोहर है तथा प्राप्त बल निर्बलों की धरोहर है।
3. पारिवारिक तथा जातीय संबंध न होते हुए भी पारिवारिक भावना के अनुरूप ही पारस्परिक संबोधन तथा सद्भाव अर्थात् कर्म की भिन्नता होते हुए भी स्नेह की एकता।
4. सत्संग

(1) करनाल मानव सेवा संघ, करनाल

यहाँ के प्रमुख सेवा माध्यम हैं—

(i) करनाल रेलवे-स्टेशन पर पूरे वर्ष जल सेवा।

(ii) प्रतिदिन मीठे जल की छबील।

(iii) ग्राम-ग्राम वस्त्र-वितरण सेवा

(iv) प्रतिदिन मध्यान्ह 12.30 बजे भोजन भंडारा

(v) व्यक्तिगत, पारिवारिक व सामूहिक सत्संग

(vi) **सदस्यता अभियान** —जन साधारण को उपरोक्त दर्शन व सेवाओं से जोड़ने हेतु **सम्मानीय पारिवारिक सदस्यता अभियान** चलाया गया है जिसके अबतक 1211 सदस्य बन चुके हैं। ये सभी सदस्य करनाल मानव सेवा संघ के हाथ (Hands) हैं जो सदा सेवा के लिए तत्पर रहते हैं। इन सदस्यों से टेलीफोन, एस.एम.एस., पत्रों व साहित्य के माध्यम से नियमित संपर्क किया जाता रहता है। सबसे आकर्षक व अनुकरणीय बात यह है कि करनाल मानव सेवा संघ के कार्यकर्ता व सदस्यगण करनाल व निकटवर्ती क्षेत्रों से संपर्क करके साधन जुटाते हैं तथा जनता-जनार्दन की सेवा में उनका विनियोग करते हैं

करनाल मानव सेवा संघ, करनाल के प्राण करुणामूर्ति स्वामी श्री प्रेममूर्ति महाराज

जन्म एवं भीष्म प्रतिज्ञा

दानवीर कर्ण की पावन-स्थली करनाल में 9 जून 1933 को एक स्वतंत्रता सेनानी एवं सेवाभावी परिवार में हरिराम बालक का जन्म हुआ। पूर्व जन्म के प्रभाव से इस बालक में बाल अवस्था में ही प्रभु-चिन्तन, सत्संग, दीन-दरिद्रों की व प्राणी मात्र की निःस्वार्थ भाव से सेवा करने की भावना उदित हो गई थी। सन् 1953 में पहली बार आप वीतराग संत स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज के संपर्क में आए। प्रथम भेंट में ही आप पर ऐसा प्रभाव

पड़ा कि आपने स्वामी जी महाराज की पावन निश्रा में आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करने एवं मानव सेवा संघ का कार्य करने में सारा-जीवन उत्सर्ग करने की भीष्म प्रतिज्ञा कर डाली।

शिक्षण एवं सेवा कार्य

वर्ष 1953 के पश्चात् आप निरंतर स्वामी शरणानंदजी महाराज के निकट संपर्क में रहने, उनके साहित्य का अध्ययन व प्रचार-प्रसार करने, उनके विचारों के अनुरूप अपना जीवन निर्माण करने, एवं मानव सेवा संघ के विभिन्न स्थानों पर चलने वाले सत्संग समारोहों व सेवा प्रवृत्तियों में भाग लेते रहे। आपने अध्ययन नहीं छोड़ा, उसे भी जारी रखा। 1956 में बी0ए0, बी0एड0 की शिक्षा पूरी करके आप सरकारी स्कूल में शिक्षक बन गए। स्कूल से छुट्टी होने के पश्चात् करनाल नगर के खुले चौक पर लोगों को जल पिलाने का कार्य आपने प्रारंभ कर दिया। स्कूल के अनेक विद्यार्थी भी आपकी सेवा भावना से प्रभावित होकर नगर के रेलवे स्टेशन, बस स्टैंड़ व स्थान-स्थान पर होने वाले जन-समारोहों में जल पिलाने का कार्य करने लगे।

हरिराम से प्रेममूर्त्ति बने

सन् 1959 में स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज करनाल पधारे। यहाँ आपका भव्य स्वागत हुआ। उसी वर्ष आपकी ही सन्निधि में करनाल में मानव सेवा संघ की शाखा सभा स्थापित हुई। वर्ष 1959 से 1974 तक प्रतिवर्ष स्वामी जी महाराज करनाल पधारते रहे। हरिरामजी ने वर्ष 1962 से 1972 तक मानव सेवा संघ विद्या मंदिर का संचालन किया। उसके माध्यम से होनेवाली आमदनी को आप सेवा कार्यों में लगा देते रहे। सेवा कार्यों में पूरा समय देने के लिए आपने सन् 1979 में सरकारी स्कूल से त्याग पत्र दे दिया। अनंत की अहैतुकी कृपा से आपमें सन्यास की भावना जागृत हुई। 20 दिसंबर 1996 को गीता जयंति के पावन पर्व पर भरतपुर (राजस्थान) के सत्संग समारोह के अवसर पर मानव सेवा संघ के स्वामी श्री अद्वैत चैतन्य महाराज ने सेवा, त्याग, प्रेम की प्रतिमूर्त्ति श्री हरिराम का नाम प्रेममूर्त्ति कर दिया।

आपका पुत्र ही मेरा सुपुत्र है

स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज ने दिनांक 26-04-1973 को स्वर्ग आश्रम, ऋषिकेश से लिखे अपने पत्र में हरिराम को ''मेरे निजस्वरूप, प्रभु विश्वासी, सेवा परायण, मानव सेवा संघ के प्राणस्वरूप प्रिय वत्स— सप्रेम हरि स्मरण तथा बहुत-बहुत प्यार'' से सम्बोधित किया। मानव सेवा संघ के विधान व नियमावली में चार आजीवन कार्यकताओं (प्रभु विश्वासी श्री हनुमंतसिंहजी, सेवा परायण बाल ब्रह्मचारिणी कु0 मुक्तेश्वरीजी, प्रभु विश्वासी सत्यपरायण श्री नारायणदासजी राठी तथा बाल ब्रह्मचारी सेवा परायण श्री हरिराम गुप्ता एम0ए0(अब प्रेममूर्ति)—को अंकित किया गया है। स्वामीजी महाराज जब करनाल पधारते और हरिरामजी के पिताश्री उनके दर्शन करते तो स्वामीजी महाराज उनसे कहते कि - मैंने तो संतान पैदा नहीं की, आपका पुत्र ही मेरा सुपुत्र है।)

सारा साधक समाज गौरवान्वित

स्वामी प्रेममूर्ति जी महाराज अत्यंत निष्ठावान्, सेवाभावी व अहंशून्य व्यक्तित्व है। आपका हृदय दुःखियों को देख करुणित व सुखियों को देख प्रसन्न हो जाता है जो मानव सेवा संघ की भाषा में सुंदर मानव होने का प्रमाण है। आज 78 वर्ष की आयु में भी आप विभिन्न सेवा प्रवृत्तियों में निरहंकार भाव के साथ, उसी उत्साह से निरंतर जुटे रहते हैं। सबसे महत्त्पूर्ण काम जो आपके माध्यम से करनाल में हुआ वह यह कि—आपने सैंकड़ों सेवाभावी सुदर-साधकों की एक विशाल जमात खड़ी की है जो सेवा भावना के साथ, कामना-शून्य होकर, पर दुःख कातरता के साथ अहर्निश जनता-जनार्दन की सेवा में रत रहती है।

ऐसी सेवा, त्याग, प्रेम की प्रतिमूर्ति स्वामी श्री प्रेममूर्ति जी महाराज के ऊपर करनाल ही नहीं, सारा हरियाणा क्षेत्र ही नहीं, सारा साधक समाज गौरवान्वित है।

डॉ. बालकृष्ण कौशिक
मंत्री
करनाल मानव सेवा संघ
करनाल - 132001(हरियाणा)

(2) जन सेवा संस्थान, रोहतक
(पूर्व मानव सेवा संघ, रोहतक)

पिछले लगभग 25 वर्षों से रोहतक में एक नये लोक निर्माण की प्रक्रिया चालू है। यहां कोई भी निःसाधन या अभावग्रस्त व्यक्ति आवे—उसके दुःख और अभाव को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया जाता है।

सेवा के प्रमुख साधन

- सेवा के प्रमुख साधनों में वृद्ध आश्रम, अपंग आश्रम, पुरुष अनाथ आश्रम, महिला वृद्ध एवं अनाथ आश्रम, गरीब विधवाओं के बच्चों की निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था, रोगी सेवा, रोहतक शहर में व्यापक जल सेवा, रक्तदान शिविर, नेत्र शिविर, वाटर कूलर प्याऊओं का निर्माण व संचालन, रोजगार हेतु सिलाई केन्द्र, साप्ताहिक सत्संग व अन्य सत्संग समारोह आदि अनेकोंनेक सेवा प्रकल्प हैं।
- प्राकृतिक आपदाओं में भोजन, वस्त्र, चिकित्सा आदि की व्यवस्था करना जैसे— गुजरात में आए भूकम्प, उड़ीसा में आए समुद्री तूफान, बिहार में आई भीषण बाढ़ व तमिलनाडु में आई सुनामी लहरों में टीम के साथ जाकर सहायता करना। बाड़मेर (राजस्थान) में पड़े सूखे के समय 17400 गायों के लिए 49 गौ सेवा शिविरों का संचालन।

एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सेवा
लावारिस रोगी सेवा

रोहतक में हरियाणा का एक मात्र पी.जी.आई. मेडिकल हॉस्पिटल (हेल्थ यूनिवर्सिटी) है। प्रान्त में जहाँ कहीं भी बड़ी सड़क दुर्घटना हो जाती है उसके रोगियों को यहां लाया जाता है। ऐसे रोगी अधिकांश रूपमें लावारिस होते हैं। जब तक उनके वारिस या परिवारजन नहीं आ जाते उनकी देख-भाल व सभी प्रकार की सेवा-सुश्रुषा यथा—दवा, खून, ऑपरेशन का सामान आदि की व्यवस्था जन सेवा संस्थान द्वारा की जाती है।

पिछले 25 वर्षों से संस्थान ने इस महत्वपूर्ण सेवा का भार उठा रखा है। इसके लगभग 10-15 कार्यकर्ता सदा हॉस्पिटल में सेवा-सुश्रुषा हेतु रहते है। इस सेवा पर संस्थान द्वारा लगभग रु. 15 लाख प्रतिवर्ष खर्च किये जाते है।

◆◆

जन सेवा संस्थान रोहतक की बहादुरगढ़ व धरोंड़ा शाखाओं द्वारा भी उपरोक्त आधार पर सेवाएं दी जा रही हैं

जन सेवा संस्थान के संस्थापक एवं अध्यक्ष

सेवा, त्याग, प्रेम की प्रतिमूर्ति

स्वामी श्री परम चैतन्य महाराज

स्वामी परम चैतन्य जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन उपेक्षित, पीड़ित, लावारिस, शोषित, विक्षिप्त, संक्रमित, वृद्ध, परित्यक्त एवं असहाय मानव की सेवा के लिए समर्पित कर दिया। पिछले लगभग 25 वर्षों से जन सेवा की अनेक सेवा प्रवृत्तियों के द्वारा आप दिन-रात समाज की सेवा में लगे रहते हैं। जन सेवा को अपने जीवन का उद्देश्य बनाने के कारण आपन अपना व्यक्तिगत परिवार नहीं बनाया एवं सेवाभावी कार्यकत्ताओं की टीम के साथ सेवा कार्यों से जुड़े रहे। पिछले 25 वर्षों से आप वृद्ध-आश्रम, अनाथ आश्रम, महिला आश्रम व अन्य सेवा प्रवृत्तियों का संचालन करते आ रहे हैं। वर्ष 1977 में आपने बी.काम. व 1979 में एम.बी.ए. परोक्षा पास की। बैंक में सर्विस की। ओसवाल एग्रो कम्पनी में उच्च पद पर रहे। स्वयं का कारोबार एवं समृद्ध आर्थिक स्थिति होते हुए भी सेवा कार्यों में रुचि होने के कारण सब कुछ त्याग कर सम्पूर्ण जीवन मानवता की सेवा को समर्पित कर दिया। समय-समय

पर विभिन्न सामाजिक संस्थाओं तथा राज्य सरकार द्वारा मानवता की सेवा के लिए आपको सम्मानित किया जा चुका है।

आरंभ में स्वामी जी स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज प्रणीत मानव सेवा संघ के माध्यम से सेवा करते रहे। आप इस संघ के आजीवन सदस्य, आजीवन कार्यकर्त्ता, वृन्दावन आश्रम के प्रबन्धक, संघ की केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति के सदस्य तथा रोहतक वृद्धाश्रम शाखा के अध्यक्ष रहे। परंतु संघ के केन्द्र वृन्दावन के उच्च पदाधिकारियों द्वारा किये गये अवांछित व्यवहार के कारण आपने 2 वर्ष पूर्व मानव सेवा संघ से त्याग पत्र दे दिया व स्वतंत्र रूप से जन सेवा संस्थान रोहतक की स्थापना की।

जन सेवा संस्थान रोहतक की बहादुरगढ़ व घरोंड़ा (करनाल) में भी शाखाएं खुल गई हैं। पिछले डेढ़ वर्षों में इस संस्थान द्वारा लगभग रु. 3 करोड़ की जनसेवा हुई है।

□□

नीरसता का अत्यन्त अभाव एकमात्र प्रियता में ही निहित है और प्रियता आत्मीयता से ही साध्य है। आत्मीयता आस्था, श्रद्धा, विश्वास से ही होती है। इस दृष्टि से आस्था सर्वतोमुखी विकास में समर्थ है

-संतवाणी

(6)

मानव सेवा संघ का दर्शन साकार हुआ

अण्णा हजारेजी की साधना ने सारी समष्टि को ऊर्जा प्रदान की

मानव सेवा संघ दर्शन के तीन सूत्र हैं —

1. *वर्तमान की वेदना ही भविष्य की उपलब्धि होती है।*
2. *व्यक्तिगत जीवन की साधना सारी समष्टि में विभु हो जाती है।*
3. *जिसको अपने लिए कुछ नहीं चाहिए, जगत् को उसकी चाह हो जाती है।*

दिनांक 16 अगस्त 1911 से दिनांक 29 अगस्त 2011 तक चलनेवाले अण्णाजी के '**भ्रष्टाचार भारत छोडा**' आन्दोलन एवं संसद व राज्यसभा में '**जन लोकपाल बिल**' प्रस्तुत करने हेतु उनके अनशन में उपरोक्त तीनों सूत्रों का दर्शन साकार हुआ है।

वर्तमान की वेदना — अण्णाजी को इस बात की तीव्र वेदना थी कि 1947 की राजनैतिक स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में पिछले 64 वर्षों में निरंतर चारित्रिक ह्रास हुआ है व भ्रष्टाचार चरम सीमा पर है। उनकी इस वेदना से ही '**भ्रष्टाचार भारत छोड़ो**' आन्दोलन व संसद व राज्य सभा में '**जन लोकपाल बिल**' प्रस्तुत कराने का विचार प्रकट हुआ— सफल भी हुआ।

व्यक्तिगत जीवन की साधना — अण्णाजी ने अपना सारा जीवन विश्व रूपी वाटिका की खाद बन जाने में किया। इसीलिए उनकी साधना ने सारे जगत् को प्रकाशित किया व ऊर्जा प्रदान की।

अण्णा सारे जगत् की चाह बन गए — 10' X 10' की कोठरी में रहने वाले अण्णाजी को अपने लिए कुछ नहीं चाहिए। उन्होंने बार-बार कहा भी है कि—**भ्रष्टाचार से वे अत्यंत व्यथित हैं।** इसीलिए उनके '**भ्रष्टाचार भारत छोड़ा**' आन्दोलन को सारी जनता का समर्थन मिला—किसी ने आन्दोलन में प्रत्यक्ष में भाग लिया, अधिकांश ने उनकी आत्मा से एकरूप होकर अपना समर्थन दिया। इस प्रकार वे सारी जनता की चाह बन गये।

सच्चे जीवन की आभा — 120 करोड़ की आबादी वाले भारत की लोकसभा व राज्यसभा में 545+250=795 सदस्य हैं—बड़े-बड़े दिमागवाले दिग्गज—बुद्धिजीवी, वकील, धनपति, नेता आदि—जिन्होंने '**भ्रष्टाचार भारत छोडो**' आन्दोलन की हवा निकालकर उसे फुस्स करने के अथक प्रयास किये। कोई कमी नहीं रखी गई। अण्णा पर अनेकों अनर्गल आरोप लगाये गये। परन्तु उनके निष्कलंक जीवन की आभा ने सभी आरोपों को बेअसर कर दिया।

भारतीय संविधान के मूल पर अण्णाजी की पकड़

अण्णा जी ने कहा –

1. जनता राजा है, मालिक है। दिल्ली की संसद से जन-संसद बड़ी है।
2. लोक-सभा व राज्य-सभा में जनता सदस्यों को चुनकर इसलिए भेजती है कि वे ट्रस्टी बनकर राष्ट्रीय संपत्ति की सुरक्षा व सदुपयोग करें तथा ऐसे कानून बनावें जिनसे भ्रष्टाचार पर अंकुश लगे।

3. अफसर व नौकरशाह जनता के सेवक हैं। उन्हें जनता के काम को सम्पन्न करने में भ्रष्ट आचरण नहीं अपनाना चाहिए। अण्णाजी अपनी इस सही समझ के कारण ही आखिर तक टिके रहे और जनता ने उनको सहयोग दिया।

अण्णाजी का आंदोलन अभूतपूर्व — लाखों लाख लोग अण्णाजी के आंदोलन के साथ जुड़े रहे परन्तु कहीं किसी प्रकार की हिंसा नहीं हुई। इस माने में यह आंदोलन अभूतपूर्व था। सन् 1942 के '**अंग्रेजों भारत छोड़ा**' व '**करो या मरा**' के आंदोलन में तोड़फोड़ व हिंसा हुई थी। 1974 के **जे.पी. आंदोलन** में से इमर्जेन्सी का प्रादुर्भाव हुआ। परंतु अण्णाजी के आंदोलन ने तो निरंतर जनता की शक्ति को बढ़ाया तथा सारी सृष्टि को ऊर्जा प्रदान की। सारे दिग्गजों को भी समझ में आ गया कि अण्णाजी का आंदोलन सर्व-जन-हिताय सर्व-जन-सुखाय है। लोकतंत्र का पोषक है।

इसीलिए भारत के प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह जी ने भी संसद में अण्णाजी को 'सेल्यूट' प्रदान किया

वीतराग वाणी की फलश्रुति

जयप्रकाश नारायणजी (जे.पी.) व स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज दोनों इस बात से घोर व्यथित थे कि —

कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जहां भ्रष्टाचार न हो। यह इतना फैल गया है कि इसका इलाज न हो तो न जाने क्या हो जाय?

इस समस्या पर दोनों महापुरुषों के बीच चर्चा चल रही थी तो स्वामीजी महाराज ने फरमाया था —

हमें ठीक मालूम है, 1930 से 1935 तक हमने नौकरशाही, टैक्स, मशीन आदि का विरोध किया था। परंतु उन्हीं चीजों को हमने, आजादी

के बाद, कस कर पकड़ लिया। परंतु निराश नहीं होना चाहिए। शरीर का नाश भले ही जाए, विचारों का नाश नहीं होगा। वे काम करेंगे। क्रांति आयेगी, चाहे हमारा शरीर रहे या न रहे। क्रांति आएगी, जरूर आएगी।

हमारा मानना है कि अण्णा हजारेजी का आन्दोलन संत की इसी वीतराग वाणी की फलश्रुति है। यह काम गोवर्द्धन पर्वत उठाने जैसा भीमकाय है। इसे सफल बनाने के लिए जनता रूपी हम बाल-गोपालों की लाठियों के सहयोग की भी अत्यन्त आवश्यकता है।

अण्णाजी की संक्षिप्त जीवनी

अण्णा हजारेजी का पूरा नाम किसन बापट बाबूराव हजारे है। प्यार से लोग आपको अण्णा कहते हैं। आपका जन्म 15 जनवरी 1940 को महाराष्ट्र के अहमदनगर जिले के पैतृक गांव भीनगर में हुआ। दादा की मृत्यु के 7 वर्ष पश्चात् सारा परिवार रालेगन सिद्धि गांव में आकर रहने लगा।

शिक्षण व व्यवसाय — आपके 6 भाई हैं। आपका बचपन बहुत ही गरीबी में गुजरा। पिता मजदूरी करते थे, दादा फौज में थे। आर्थिक तंगी के कारण आपकी बुआ आपको मुम्बई ले गई। यहां आपने सातवीं कक्षा तक पढ़ाई की। कठिन हालतों में परिवार को देखकर आर्थिक बोझ कुछ कम करने की ठानी। दादर (मुम्बई) स्टेशन के बाहर एक फूल बेचनेवाले की दुकान पर रु. 40 प्रति माह पगार पर काम करने लग गये। कुछ समय पश्चात् स्वयं ने ही फूलो का धंधा शुरू कर दिया। अपने दो भाइयों को भी रालेगन सिद्धि से बुला लिया।

सेना में नौकरी — 1962 के भारत-चीन युद्ध के दौरान युवाओं को सेना में शामिल होने की सरकारी अपील पर आप मराठा-रेजीमेंट में बतौर ड्राईवर नियुक्त हुए। 1965 के भारत-पाकिस्तान युद्ध के दौरान आपकी

पूरी यूनिट शहीद हो गई। जिस ट्रक को अण्णा चला रहे थे, उस पर भी गोलाबारी हुई थी। आपको भी गोली लगी, पर बच गए।

इस घटना के 13 वर्ष बाद वर्ष 1978 में अण्णा सेना से रिटायर हुए पर अपने पैतृक गांव भीनगर नहीं गये, स्थायी रूप से रालेगन सिद्धि में रहने लगे। आपको स्वामी विवेकानन्द जी की एक पुस्तक मिली जिसे पढ़ने पर आपने अपने आपको समाज सेवा के लिए समर्पित कर दिया।

एक सच्चे साधक

मानव सेवा संघ की भाषा में कहें तो अण्णाजी के जीवन में एक सच्चे साधक की तीनों बातें हैं -

1. अकिंचन - जिसके पास अपना करके कुछ न हो।
2. अचाह - जिसे अपने व्यक्तिगत सुख के लिए कुछ नहीं चाहिए।
3. अप्रयत्न - जिसका हरि चरणों में पूर्णरूपेण समर्पण हो गया हो अर्थात् जो हरि के हाथों का खिलौना बन गया हो।

एक ऐतिहासिक भाषण

यह जनसंसद की जीत है

[दिनांक 28-08-2011 को रामलीला मैदान, नई दिल्ली में अनशन तोड़ने के बाद दिया गया अण्णाजी का भाषण]

यह गौरवशाली बात हुई है कि तेरह दिन तक देश में इतना बड़ा आन्दोलन हुआ, लेकिन वह अहिंसक मार्ग से हुआ। पूरी दुनियां के लिए आप लोगों ने एक मिसाल दी है।

युवा शक्ति ही राष्ट्र शक्ति है

मेरे देशवासियों! भाई-बहनों!! बच्चो!!! मैं सभी को धन्यवाद देता हूं। जनलोकपाल के तीन महत्वपूर्ण मुद्दों को लेकर आज जो जीत हुई है, वो सभी देशवासियों की जीत है। यहां खड़े सभी लोगों की जीत है। आप सबने पिछले तेरह दिनों से जो सहयोग दिया है, उसी का फल हमारे देश को मिल रहा है। मेरे सामने मीडिया है, जो तेरह दिन से लगातार रात-दिन पूरे देशवासियों को जगा रहा है। यह उस मीडिया की भी जीत है। मैं उन्हें धन्यवाद देता हूं। चिकित्सकों की टीम, जिन्होंने रात-दिन मेरे स्वास्थ्य की चिंता करते हुए इस लड़ाई के लिए मेरा स्वास्थ्य ठीक रखा, मैं उन्हें धन्यवाद देता हूं। सिविल सोसायटी के साथियों को जनलोकपाल बिल का ड्राफ्ट बनाने से लेकर आज तक उनके परिश्रम के लिए मैं उन्हें भी धन्यवाद देता हूं। कंधों पर तिरंगा लेकर भारत माता की जय, वंदे मातरम, इंकलाब जिंदाबाद की घोषणा करते हुए,नारे लगाते हुए पूरे देश में जिस युवा शक्ति ने प्रदर्शन किया और हमें हौसला दिया, उसे भी मैं धन्यवाद देता हूँ, क्योंकि युवा शक्ति ही राष्ट्र शक्ति है।

दिल्ली की संसद से बड़ी जनसंसद है

हमारे देश के लिए यह एक गौरवशाली बात हुई है कि तेरह दिन तक पूरे देश में इतना बड़ा आन्दोलन हुआ, लेकिन वह अहिंसक मार्ग से हुआ। पूरी दुनिया के लिए आप लोगों ने यह एक मिसाल खड़ी की है। यह बात मुझे बहुत महत्वपूर्ण लगती है। पूरी दुनिया को इससे यह सबक सीखना चाहिए कि आंदोलन कैसे किया जाता है। देश की जनता के आंदोलन से यह बात भी साफ हो गई है कि दिल्ली की संसद से भी बड़ी जनसंसद है। जनसंसद की इच्छा के ही कारण दिल्ली की संसद को यह निर्णय लेना पड़ा है। दिल्ली की संसद ने देखा कि जनसंसद कैसे खड़ी होती है।

इस आंदोलन ने हमें यह विश्वास दिलाया है कि भ्रष्टाचार मुक्त भारत का निर्माण हम कर सकते हैं। बाबासाहब अंबेडकर ने जो संविधान बनाया है, उस पर अमल करने के लिए आगे के प्रयासों की प्रेरणा भी इस आंदोलन से हमें मिली है। इस देश में जो परिवर्तन हमें करना है, वह संविधान के मुताबिक करना है। अमीर-गरीब के बीच का फासला कम करना है। यह बाबासाहब अंबेडकर की ही सोच थी कि गरीब और अमीर के बीच फासले को कम करना है। इन बातों पर हमें सोचना होगा।

केंद्रीकृत व्यवस्था के कारण देश में आज भ्रष्टाचार बढ़ गया है। पूरी सत्ता मंत्रालय में इकट्ठी हो गइ है और इसे हम लोकशाही कह रहे हैं। यह सही नहीं है। सही लोकशाही तब आएगी, जब सत्ता का विकेंद्रीकरण होगा। सत्ता जनताके हाथ में आएगी, तभीसही जनतंत्र का निर्माण होगा।

ग्राम सभा इनसे ऊँची है

लोकसभा व विधानसभा की तरह ग्रामसभा को भीहमें मजबूत बनाना होगा। ग्राम सभा इनसे ऊँची है। गांव में कोई भी पैसा आता है तो ग्राम सभा को उसकी जानकारी होनी चाहिए। ग्राम सभा तय करे कि कितना पैसा कहां खर्च करना है। ग्राम पंचायत ने ग्राम सभा से बिना पूछे खर्चा किया तो ग्राम सभा को यह अधिकार होना चाहिए कि वह ग्राम पंचायत को भंग कर दे। यह परिवर्तन हमें लाना होगा।

हमें चुनाव प्रणाली को भी बदलना होगा। हमारे पास 'राइट टू रिजेक्ट' होना चाहिए। दस प्रत्याशियों के बाद ग्यारहवां विकल्प नापसंदगी का होना चाहिए। जब जनता देखेगी कि उसे कोई उम्मीदवारों से ज्यादा वोट नापसंदगी को मिले तो चुना रद्द। कहां तक पैसे खर्च करेंगे। एक चुनाव में दस करोड रुपया पानी में जाएगा तो चुनाव लड़ने वालों का दिमाग जगह पर आ जाएगा।

हमारा आन्दोलन जारी रहेगा

आज देश में किसानों की अवस्था 'माल खाए मदारी, नाच करे बंदर' जैसी है जबकि हम देश को कृषि प्रधान कहते हैं। किसानों को न्याय दिलाना होगा। मजदूरों के प्रश्न हैं। शिक्षा के क्षेत्र में कई लोग पैसे कमाने के लिए अपनी दुकान लगाकर बैठे हैं, इसे बदलना होगा। गरीबों को भी अच्छी शिक्षा मिलनी चाहिए। लड़ाई की शुरूआत हो चुकी है। जनलोकपाल के कारण इसकी शुरूआत हुई है। मैंने आज अपना अनशन खत्म नहीं किया, केवल स्थागित किया है।ज ब तक लड़ाई पूरी नहीं हो जाती, हमारा आंदोलन जारी रहेगा।

आज हम देख रहे हैं धरती के संसाधनों का शोषण हो रहा है। महात्मा गांधी कहते थे कि शोषण करके किया गया विकास विकास नहीं होगा, विनाश होगा। देश में कई राज्यों में पानी की समस्या है, पेट्रोल-डीजल खत्म हो रहे हैं, कोयला खत्म होने वाला है। हमें अपनी आने वाली पीढ़ी, अपनी संतानों के बारे में भी सोचना होगा।क ुर्सी पर बैठने वालों के पास सोचने की शक्ति नहीं है। पर्यावरण प्रदूषण हमारे देश के लिए बहुत बड़ा प्रश्न है।

कुछ भी असंभव नहीं है

देश की जनता के तेरह दिन के इस आंदोलन से आशा का एक चित्र निर्माण हुआ है। कुछ भी असंभव नहीं है। हमें जनलोकपाल के लिए चुप नहीं बैठना है। जब तक परिवर्तन नहीं आता, मशाल जलती रहनी चाहिए। परिवर्तन की लड़ाई शुरू हो गई है। मुझे लग रहा है कि संसद अब हमारी मांगों पर इंकार नहीं करेगी, लेकिन यदि इंकार कर दिया तो फिर से जनसंसद को खड़ा होना होगा।

तो यह देश महान बन जायेगा

देशवासियों के इस आंदोलन से मुझे भी प्रेरणा मिली है। जब तक लड़ाई पूरी नहीं होगी, मैं चुप नहीं बैठूंगा। पूरे देश में घूमूंगा। लोग अब संगठित हो गए हैं। एक बात आप सबसे कहना चाहता हूं कि आप लोगों ने अण्णा की टोपी लगा रखी है, लेकिन यदि सही मायने में अण्णा बनाना है तो कथनी और करनी एक जैसी होनी चाहिए। शुद्ध आचरण, शुद्ध विचारऔर निष्कलंक जीवन होना चाहिए। त्याग होना चाहिए। यह त्याग की भूमि है। और अपमान सहने की शक्ति होनी चाहिए। ऐसा हुआ तो अण्णा बनोगे और सब अण्णा बन गए तो यह देश महान बन जाएगा। भारत माता की जय, वंदे मातरम्, इंकलाब जिंदाबाद। जय हिंद।

□□

रालेगण सिद्धि

जहां पर जीवंत हो उठे हैं अण्णा के आदर्श

—दिलनवाज पाशा

एक विचार ने एक व्यक्ति को बदला, व्यक्ति ने व्यवस्था को, व्यवस्था ने वातावरण को और एक छोटा-सा गांव आदर्श ग्राम बन गया। मैंने इस आदर्श ग्राम में पांच दिन बिताए और अब मैं भी खुद को बदला-बदला सा महसूस कर रहा हूँ।

जिंदगी घुटघुट कर दम तोड़ रही थी

अण्णा हजारे का गांव रालेगण सिद्धी अहमदनगर जिला मुख्यालय से 43 किलोमीटर दूर है। पारनेर-शिरूर मार्ग पर रालेगण सिद्धी ठीक मध्य में स्थित है। छोटी-छोटी पहाड़ियों के बीच बसे रालेगण सिद्धी के कण-कण

में अण्णा हजारे की मेहनत झलकती है। यहां हरियाली लहलहाते हुए और खुशहाली मुस्कुराते हुए दिखाई देती है। लेकिन 1975 में जब अण्णा अपने साथ स्वामी विवेकानंद के विचार, गांव और देश के लिए कुछ करने का जज्बा और सेना से रिटायटरमेंट के बाद मिला पैसा लेकर यहां पहुंचे तो यह गांव सूख रहा था। इसकी पहाड़ियों पर शराब की भट्टियां पनप रही थीं और जिंदगी घुट-घुटकर दम तोड़ रही थी।

अण्णा को लोगों ने शुरू में पागल कहा

अण्णा ने अपनी जमा पूँजी से गांव में संत यादव बाबा का मंदिर बनवाया और घर से संन्यास लेकर मंदिर में ही रहना शुरू कर दिया। गांव को बदलने की जिद पर अड़े अण्णा को लोगों ने शुरू में पागल कहा। लेकिन अण्णा के इसी पागलपन ने रालेगण सिद्धी को अब ऐसा आदर्श गांव बना दिया है कि यदि देश के अन्य गांव खुद को ऐसा कर पाएं तो पूरा भारत स्वर्ग हो जाएगा। मैंने जानने की कोशिश की कि अण्णा ने आखिर ये चमत्कार कैसे कर दिया। रालेगण सिद्धी को देखकर, वहां के लोगों के साथ वक्त बिताकर और यहां के वातावरण को महसूस कर यह समझ आया कि नैतिक शिक्षा के जो सबक लोग पढ़कर भूल जाते हैं, अण्णा ने उन्हें अपने व्यक्तित्व में उतार लिया है। ग्रामीण विकास के जो नारे सरकार दीवारों पर लिखवाकर अपनी जिम्मेदारी पूरी मान लेती है, अण्णा ने उन नारों को लोगों के सामूहिक प्रयास से सार्थक कर दिया।

अण्णा का व्यक्तित्व रालेगण सिद्धी के लोगों में भी झलकता है। सेवा यहां जिम्मेदारी है, राष्ट्रप्रेम यहां की संस्कृति हैं, मेहनत आदत है, आदर-सत्कार परंपरा है और प्रेम यहां के लोगों का स्वभाव है

मैं इनका सेवा-भाव देखकर चकित था

समूह में काम करना रालेगण सिद्धी के लोगों की सबसे बड़ी ताकत

है। बड़ी मुश्किलों को भी वे एकजुट होकर छोटा कर देते हैं। दिल्ली के रामलीला मैदान में विजय पताका लहराने के बाद जबसे अण्णा यहां पहुँचे हैं, रोजाना हजारों लोग यहां आ रहे हैं। गणपति उत्सव के दिन यहां मेहमानों के लिए भोज रखा गया। सार्वजनिक भोज के लिए पुरुषों ने सामग्री की व्यवस्था का बीड़ा उठाया, महिलाओं ने भोजन पकाने का और बच्चों ने लोगों को परोसने का। मैंने हजारों लोगों को भोजन करते देखा, लेकिन न सामग्री कम हुई, न महिलाओं का खाना पकाने का उत्साह और न ही बच्चों की खाना परोसने की ललक। मेहमानों की सेवा कर ये लोग प्रसन्न हो रहे थे और मैं इनका सेवाभाव देख कर चकित था।

महिलाओं की भागीदारी बराबर है

रालेगण सिद्धी में एक खास बात यह भी है कि यहां हर घर के बाहर स्वामी के नाम की पट्टी लगी है, जिसमें घर की महिला का नाम पहले और पुरुष का नाम बाद में है। महिलाओं को बराबरी का अधिकार और सम्मान मिला तो उन्होंने भी विकास में योगदान की जिम्मेदारी संभाल ली और रालेगण सिद्धी को धरती पर स्वर्ग बना दिया। ग्राम सभा हो, श्रमदान, खेती का काम या व्यवसाय, यहां की महिलाओं की भागीदारी सबमें बराबर है।

यह अण्णा का जादू है

रालेगण से रालेगण सिद्धी हुए इस गांव ने यह सिद्ध कर दिया है कि यदि सच्चा नेता मिल जाए तो बदलाव लाया जा सकता है। रालेगण को देखकर ईमानदारी और मेहनत में मेरा भरोसा बढ़ गया है। देश के लिए कुछ करने की भावना जागी है। यह अण्णा का जादू है। यह रालेगण सिद्धी का असर है। यह सच्चाई और ईमानदारी की ताकत है।

□□

जिसका होना असह्य होता है
वह मिट जाता है, तथा
जिसका न होना असह्य होता है
वह प्राप्त हो जाता है

VII

विविध

यदि भिखारी ही बनना पसंद है तो
दाता को ही भिक्षा में ले लो
जिससे बार-बार मांगना शेष न रहे

(1)

मानव सेवा संघ का दर्शन

मुझे लगा यह अतिशय नीका

—स्वामी श्री रामशरणजी महाराज

सौजन्य : भरत दूगड़, कोलकाता

गुरु मुख सुन कर लीना मान, एक तुम्हीं मेरे भगवान्।

तूं सर्वत्र इसीसे यहां है, तूं सर्वदा तभी अधुना है।
तू सब में इससे मुझ में है, तब मिलने में क्या व्यवधान? गुरु मख.....

तूं विश्वेश्वर तेरा सब कुछ, तेरे सिवा ना मेरा है कुछ।
तूं अपना, तब नहीं चहिये कुछ, बड़ा बेधड़क यह गुरु ग्यान॥ गुरु सुख.....

निर्ममता से मल हट जाता, चाह मुक्ति विक्षेप मिटाता ।
प्रभु अपना आवर्ण नसाता, कैसा अनुपम यह विज्ञान॥ गुरु मख.....

प्रथम विवेक करो सन्मान, दूजा निर्ममता सोपान ।
तीजा है होना निष्काम, पावोगे पद पूरण काम॥ गुरु मख.....

वेद पाठ का नया तरीका, मौन पाठ शून्यालय धीता।
मुझे लगा यह अतिशय नीका, मानव सेवा संघ का ज्ञान॥ गुरु मख.....

गीता भवन क्षेत्र स्वर्गाश्रम, कृष्णाषाढ़ मेघ बरसावण।
गुरु सन्मुख यह पद मन भावन, प्रस्तुत करत "कन्हैया" गान॥गुरु मख.....

□□

(2)

यही मेरा संदेश है

–शिताजी साहीं

बात ई. सन 1944 की है। स्वामी सनातन देव जी महाराज (पूर्व नाम मुन्नीलाल) गीता प्रेस के संस्थापक श्री जयदयालजी गोयन्का के ऋषिकेश में चल रहे सत्संग समारोह में सम्मिलित हुए। तब तक आप मुन्नीलाल ही थे। **वहाँ स्वामी श्री शरणानन्दजी महाराज के आप निकट संपर्क में आए व उनके प्रवचनों से अत्यधिक प्रभावित हुए।** आप सन्यास लेना या न-लेना, ऐसी उहापोह की स्थिति में चल रहे थे। स्वामी शरणानंदजी महाराज से परामर्श लिया तो स्वामीजी महाराज ने फरमाया —

भैय्या! ईश्वर, धर्म तथा समाज किसी के ऋणी नहीं रहते। इनके लिए त्याग करने वाला कभी घाटे में नहीं रहता।

जैसे डूबते को तिनके का सहारा मिल गया। मुन्नीलालजी ने सोचा–ये महाराज तो नेत्रहीन हैं जिन्हें सदा बाहरी सहारे की आवश्यकता होती है। ऐसी दशा में जब इनका निर्वाह हो जाता है तो मैं तो इनसे अच्छी स्थिति में हूँ। फिर मेरा निर्वाह क्यों नहीं होगा? धीरे-धीरे उनसे संबंध बहुत अधिक बढ़ गया। अन्य किसी भी संत से उनकी इतनी अधिक घनिष्ठता नहीं हुई। आपने संन्यास ले लिया। आप मुन्नीलाल से स्वामी सनातन हो गए। सन्यासोपरांत जब आप श्री स्वामी जी से दिल्ली में मिले और कुछ उपदेश देने के लिए कहा तो स्वामी जी ने आपसे कहा–**पत्र लिख देता हूँ, यही मेरा सन्देश है। वह पत्र इस प्रकार ह**-

॥ ॐ॥

दिल्ली

दिनांक 26-11-1945

वीतराग आत्म-संतुष्ट महात्मन्

सप्रेम यथा योग्य

आत्म सम्मान परम धन है। राग-रहित हो जाना परम निर्दोषता है। आत्म-समर्पण परम बल है। सर्व अवस्थाओं से अतीत हो जाना परम त्याग है। प्रतिकूलता का भय तथा अनुकूलता की आशा न रहना ही परम तप है। अपने में ही अपने परम प्रेमास्पद की स्थापना कर सब प्रकार से अचिंत्य तथा अभय हो जाना ही परम भक्ति है। अपने लिये अपने से भिन्न की खोज न करना ही परम प्रयत्न है। एक निष्ठता ही सफलता की कुञ्जी है। विकल्प रहित सद्भाव ही कल्पतरु के समान है। निज-ज्ञान का आदर वास्तविक स्वाध्याय है। अपने में अपना कुछ न रखना ही अपरिग्रह है। जिन साधनों से संयोग की दासता तथा वियोग का भय निवृत्त हो वे ही आध्यात्मिक साधन है। **शरीर विश्व के काम आ जावे, हृदय प्रीति से छका रहे और अपने आपका बोध हो यही पूर्ण जीवन है।** उन सभी प्रवृत्तियों का अन्त हो जाय जो दूसरों के अहित तथा अप्रसन्नता का साधन हो – यही वास्तव में सदाचार है। अपूर्ति की पूर्ति हो जाना ही तत्त्व ज्ञान है। सहज सनेह ही सुगम साधन है। साधक, साधन तथा साध्य की अभिन्नता ही सफलता है।

कृपा दृष्टि बनी रहे। ॐ आनन्द, आनन्द, आनन्द।

स्वामी सनातन देव जी का कहना था कि जितना आध्यात्मिक लाभ मुझे स्वामी शरणानंदजी से हुआ, उतना गुरुदेव को छोड़कर अन्य किसी से नहीं हुआ।

□□

सी-81ए चन्द्रनगर, गोविन्दपुरा, जयपुर

उदारता एवं करुणा

एक बार की घटना है। मैं ट्रेन में बैठा था। उस समय अकेले रहने पर मैं मार्ग-व्यय के लिए पैसे रखता था। ऐसा गुरुदेव का आदेश था कि कभी बिना टिकट मत चलना। पुराने संतों में दिखावा होता ही नहीं था। ऐसा नियम था कि यदि जाना जरूरी है, तो पैसा ले लो और टिकट खरीद लो। पैसे का काम तो करें और पैसा न रखें। यह भी त्याग का एक अनोखा ढंग है कि काम तो करें हजारों रुपये का और कहें कि महाराज जी तो पैसे रखते ही नहीं। मैं उनमें से पहले नम्बर का आदमी हूँ। एक दिन हमारे भाई जी कह रहे थे कि स्वामी जी का खर्च कम से कम एक हजार रुपये महीने का है। वे ठीक ही कहते हैं। इससे ज्यादा ही हो सकता है, कम नहीं। और नाम के लिए एक पैसा भी नहीं रखते। यानी हजार रुपये महीना खर्च करे और पैसा रखे नहीं। इस तरह का ढोंग पुराने संतों में नहीं होता था।

तो उस दिन महाराज, टिकट कलेक्टर एक आदमी को टिकट न होने की वजह से तंग कर रहा था। जब वह तंग करता था, तो मेरे मन में बार-बार यह बात आती थी कि पैसे देकर उसका टिकट बनवा दूँ। फिर मैं सोचता था कि अगर मैं इसको पैसे दे दूंगा तो मुझे फिर किसी से पैसे मांगने पड़ेंगे। पुराने सन्त लोग कभी इस बात को पसन्द नहीं करते थे। मैंने सोचा कि इतनी तकलीफ मुझे क्यों हो रही है? तो मुझे मालूम हुआ कि मुझे इसलिए तकलीफ हो रही है कि मेरे पास पैसे हैं। अगर मेरे पास पैसे न होते, तो मुझको कभी तकलीफ न होती।

आप लोग अपने दिल को टटोलें कि जिनके पास संग्रह है, क्या उन्हें सचमुच दुखियों का दर्शन नहीं होता? दिन-रात होता है महाराज! **अपनी**

अयोग्य संतान के लिए रखे रहते हैं, योग्य अधिकारी को नहीं देते। यह क्या है? उदारता नाश हो गई। उदारता का तो अर्थ यह है कि जब दुखी पर दृष्टि पड़े, तो आपका हृदय करुणित हो जाए। करुणा का अर्थ यह है कि आप अपना सुख बाँटने के लिए विवश हो जाएँ, और जब सुखी पर दृष्टि पड़े तो चित्त प्रसन्न हो जाए। प्रसन्नता का फल यह है कि काम का नाश हो जाए।

यह बात बतायी जाती है कि योग करने से पहले चित्त प्रसन्न होना चाहिए। जो सुखियों को देखकर प्रसन्न नहीं होता, उसे प्रसन्नता कहाँ से मिलेगी? तो कहने का मेरा तात्पर्य यह था कि **संग्रह की रुचि ने उदारता का अपहरण कर लिया।** उदारता का अपहरण होने से चित्त को जो द्रवीभूत रहना चाहिए था, उसमें सख्ती आ गई। सख्ती माने, दुनिया के दुःख को देखकर सहते रहते हैं।

कोई कहे कि हम सबका दुःख तो मिटा नहीं सकते। यह बात ठीक है। लेकिन जितने अंश में मिटा सकते हो, उतना भी नहीं मिटाते और बुद्धिपूर्वक यह निर्णय कर लेते हैं कि हमारे पास जो धन है, उसका अच्छे से अच्छा उपयोग करना भी हमें आता है।

संग्रह की रुचि एवं उसका सदुपयोग

मैं निवेदन कर दूँ कि भाई, जिसके पास धन होता है, उसको धन का सदुपयोग करना नहीं आता। आप कहेंगे कि यह बात बिल्कुल झूठी है। लेकिन यह बात सेन्ट-पर-सेन्ट सच्ची है। धन के संग्रह करने की सामर्थ्य जिसमें होती है, उसमें धन के सदुपयोग करने की योग्यता नहीं होती। ऐसा नियम ही है।

यदि सदुपयोग करना आ जाए, तो वह संग्रह कर ही नहीं सकता। इसलिए उपयोग हमेशा दूसरों के द्वारा ठीक होता है। **हाँ, एक बात है कि यदि संग्रह करते समय भावना यह है कि यह जो हम संग्रह**

कर रहे हैं, वह भगवत्-सेवा के लिए कर रहे हैं, विश्व सेवा के लिए कर रहे हैं, दुखियों की सेवा के लिए कर रहे हैं, तब तो संग्रह करना भजन हो सकता है। लेकिन संग्रह करने के बाद उपयोग करना भी हमको ही आता है, दूसरों को नहीं आता, ऐसा मानना भारी भूल की बात है। इसमें बहुत से लोग धोखा खा जाते हैं और वस्तु से मनुष्य का मूल्य कम कर देते हैं। वस्तु से श्रम का मूल्य तो कम कर ही देते हैं। जिसका परिणाम यह होता है कि सही काम करने वाले व्यक्ति आपको नहीं मिल पाते।

मधुर स्मृति

तो कहने का मरा तात्पर्य यह था कि जब हमारे जीवन में से उदारता चली जाती है, तब हमारा हृदय द्रवीभूत नही रहता, करुणित नहीं रहता, सख्त हो जाता है। विचार-शक्ति तो बनी रहती है, योग्यता बनी रहती है, विवेचन-शक्ति बनी रहती है, लेकिन हृदय द्रवीभूत नहीं रहता। जब हृदय द्रवीभूत नहीं रहता, तो मधुर स्मृति उदित नहीं होती। विचार-शक्ति जा है, तर्कशक्ति जो है, वह निषेधात्मक साधना में सहायक होती है। विचार-शक्ति से हम वस्तुओं के सम्बन्ध को तोड़ सकते हैं। **किन्तु हृदय के द्रवीभूत हुए बिना मधुर स्मृति उदित नहीं होती और उसके बिना प्रीति का जो भावात्मक रूप विरह है, उसकी वृद्धि नहीं होती।**

साधन में बाधक

तात्पर्य यह है कि भाई, वस्तु का सदुपयोग और व्यक्ति की सेवा साधन में बाधक नहीं हैं। वस्तुओं का उत्पादन भी साधन में बाधक नहीं है। **तो साधन में जो बाधक है, वह है वस्तु से सम्बन्ध और वस्तु का संग्रह। दिन-रात उत्पादन करो, कोई बाधा नहीं पड़ेगी। उसका सदुपयोग करते जाओ। वस्तु का उत्पादन करते जाओ और उसका सदुपयोग करते जाओ।**

यह नियम है कि वस्तु की प्राप्ति किसी विधान से होती है। और यह निश्चित बात है कि उस विधान में उदार नीति होती है। जो उदार व्यक्ति होते हैं, उनके पास आवश्यक वस्तुएँ अपने आप आती हैं। यदि वस्तुएँ अपने आप नहीं आतीं, तो उन्हें वस्तुओं का चिन्तन भी बिल्कुल नहीं होता। **जहाँ वस्तु-चिन्तन नहीं होता, वहाँ क्या होगा बताओ? या तो वहाँ चिन्तरहित शान्ति होगी या प्रिय का विरह होगा या तत्त्व की जिज्ञासा होगी, तीव्र जिज्ञासा होगी।** तीव्र जिज्ञासा का अर्थ क्या है? तीव्र जिज्ञासा सभी वस्तुओं की, सभी अवस्थाओं की, सभी परिस्थितियों की कामना को खा लेती है।

जिज्ञासा की जागृति एवं कामना का नाश

एक बात ध्यान देने की है कि जिज्ञासा वर्तमान जीवन की वस्तु है। यह नहीं कि आज जिज्ञासा होगी और कल उसकी पूर्ति होगी। ऐसा नहीं है। जिज्ञासा की पूर्ण जागृति, उसकी पूर्ति ओर कामनाओं की निवृत्ति, यह तीनों एक साथ होती हैं। यदि जिज्ञासा की पूर्ति नहीं हुई, तो समझना चाहिए कि कामना नाश नहीं हुई और यदि कामना नाश नहीं हुई, तो समझना चाहिए कि जिज्ञासा की जागृति ही नहीं हुई।

तो साधन की दृष्टि से वस्तु के सदुपयोग का, वस्तु के उत्पादन का बहुत बड़ा स्थान है। इससे हानि नहीं है। आप चाहे मिल के द्वारा, चाहे किसी प्रकार से वस्तु का उत्पादन करें, इससे साधन में कोई क्षति नहीं होगी। किन्तु उत्पादन करते समय जो उत्पादन का तरीका हो, जो उपाय हो, वह ऐसा होना चाहिए कि जिससे आप कह सकें कि हमने ऐसा काम नहीं किया, जो नहीं करना चाहिए था। यानी उसके उत्पादन का तरीका ईमानदारी का होना चाहिए और उत्पादित वस्तुओं का उदारतापूर्वक उपयोग होना चाहिए। तब आवश्यक वस्तुएँ आपके पास अपने आप आती रहेंगी।

भगवत दृष्टि का अर्थ

वस्तुएँ आती रहें और आप उनका सदुपयोग करते रहें, यह प्रभु की सेवा होगी। तो वस्तु के सदुपयोग द्वारा प्रभु की सेवा व्यक्ति के स्वरूप में होगी। जब आप व्यक्ति के स्वरूप में प्रभु की सेवा करेंगे, तब व्यक्ति-बुद्धि नाश हो जाएगी और भगवत्-बुद्धि उदय हो जाएगी। वस्तु-बुद्धि के नाश होने से ममता के लिए कोई स्थान ही नहीं रहेगा। ऐसा मालूम होगा कि यह जो वस्तु हैं, यह तो सेवा-सामग्री है, प्रभु की सेवा की सामग्री है। वस्तु और प्रभु जो हैं, वे व्यक्ति के रूप में अभिव्यक्त हुए हैं। किसलिए अभिव्यक्त हुए हैं? आपमें सेवा करने की जो रुचि थी, उसकी पूर्ति के लिए वे अभिव्यक्त हुए हैं।

यह असाधन है

यह किसका दृष्टिकोण है? यह साधक का दृष्टिकोण है। और व्यक्तिगत रूप से वस्तु मैंने सम्पादित की है अपने सुख भोगने के लिए और जगत् जो है वह सुख-सामग्री है, इनसे सुख लिया जाए, इनका भोग किया जाए। यह क्या है? यह असाधन है।

साधन की दृष्टि से वस्तु का अर्थ केवल उन वस्तुओं से लेना चाहिए कि जिनका उपयोग किया जा सके। जैसे बोलने की शक्ति भी एक वस्तु है, सुनने की शकित भी एक वस्तु है, सोचने की शक्ति एक भी वस्तु है, समझने की शक्ति भी एक वस्तु है। तो इन सभी वस्तुओं का सदुपयोग है प्रभु की सेवा में। और प्रभु की अभिव्यक्ति है जगत् के स्वरूप में।

आस्तिक दर्शन व नास्तिक दर्शन

देखिये, आस्तिकवाद और नास्तिकवाद में अन्तर क्या है? आस्तिकवाद जगत् में प्रभु का दर्शन कराता है और नास्तिकवाद प्रभु में जगत् का दर्शन कराता है। यह बड़ा भारी अन्तर है आस्तिक दर्शन में और नास्तिक दर्शन

में। प्रभु में जगत् का दर्शन—यह नास्तिक दर्शन की बात है। यह भी एक दर्शन है। और जगत् में प्रभु का दर्शन—यह आस्तिक दर्शन की बात है।

आस्तिक दर्शन की दृष्टि से जगत् का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। और जब जगत् का अस्तित्व ही नहीं है, तो बताइये, सम्बन्ध किससे रहेगा? जिसका स्वतंत्र अस्तित्व है, उसी से सम्बन्ध रहेगा। क्या ऐसा हो सकता है कि सम्बन्ध-कर्त्ता में उसकी स्मृति उदय न हो कि जिससे उसने सम्बन्ध किया है? ऐसा कभी नहीं हो सकता। सम्बन्ध-कर्त्ता उसकी स्मृति है, जिससे उसका सम्बन्ध है।

साधन की सिद्धि

जब हमारा प्रभु से सम्बन्ध है, तो हमारा अस्तित्व क्या हुआ? प्रभु की स्मृति। अब आप सोचो कि जहाँ हम अपने में और प्रभु की स्मृति में भेद करते हैं, दूरी मानते हैं कि हम अलग हैं और प्रभु की स्मृति अलग है, तो भाई, साधन सिद्ध नहीं हुआ। साधन सिद्ध तभी होगा, जब हमारा अस्तित्व और प्रभु की स्मृति एक हो।

कर्तव्य का अभिमान अकर्त्तव्य से भी अधिक निन्दनीय है, कारण कि अकर्तव्य से पीड़ित प्राणी तो कभी न कभी कर्तव्य की राह पर चल सकता है, किन्तु कर्तव्य का अभिमानी तो अकर्तव्य को ही जन्म देता है। इस दृष्टि से कर्तव्य-परायणता का अभिमान करना भारी भूल है

-संतवाणी

(4)
संत पत्रावली
(1)

20-03-1966

मेरे निजस्वरूप परम प्रिय.....

प्रत्येक कर्तव्य कर्म के द्वारा प्रेमास्पद की पूजा करती हुई उन्हीं की प्रीति होकर रहो। यही मेरी सद्भावना है। तुम सहज भाव से अपनी सखियों के साथ प्रिय-चर्चा तथा उनका गुण-गान किया करो, जिससे तुम्हारी सभी सखियाँ प्रेमास्पद की महिमा को अपनाकर उनकी प्रीति की अधिकारिणी हो जाय। तुम्हारे गुरु ने तुम्हें निर्मल प्यार दिया है। तुम अपने गुरु की सेवा के भाव से निज सखियों को प्यारे की महिमा श्रवण कराती हुई सेवा करो। ऐसा करने से तुम पर सदा गुरु की कृपा बरसती रहेगी। गुरु की कृपा मात्र से लक्ष्य की प्राप्ति होती है, ऐसा मेरा अनुभव तथा विश्वास है। जो सेवा तुम्हें मिली है, उसे प्रीति जगाने के भाव से करती रहो। **सेवा का अन्त प्रीति में ही होता है। यह अनन्त का मंगलमय विधान है।**

प्यारी बेटी! इतना ही नहीं, प्रीति का क्रियात्मक रूप सेवा और सेवा का अन्त प्रीति ही है। प्रीति ने प्रियतम से भिन्न को देखा ही नहीं। **प्रीति और प्रियतम के नित्य विहार में ही रसरूप जीवन है। प्रीति का दान वे ही साधक दे पाते हैं, जिन्हें कभी भी कुछ नहीं चाहिये, इतना ही नहीं जिनके पास अपना करके कुछ है ही नहीं।** प्रेमास्पद और प्रीति का पान एकमात्र सर्व-समर्थ ही कर पाते हैं। तुम प्रीति होकर प्रेमास्पद को रस-प्रदान करो और गुरुदेव की आज्ञानुसार सब प्रकार से अपने प्रेमास्पद की होकर ही रहो। तन-मन-प्राण आदि सभी पर प्यारे की मोहर लग जाय। तुम्हें सब कुछ उन्हीं का दिखाई दे। इतना ही नहीं,

सभी में उन्हीं की झाँकी हो। उनसे भिन्न कुछ है ही नहीं। यही तुम्हारे गुरुदेव का महावाक्य है। गुरुदेव के अपने इस महावाक्य में अविचल आस्था करो। सफलता अवश्यम्भावी है। प्रत्येक दशा में शान्त तथा प्रसन्न रहकर गुरु-आज्ञा का पालन करती हुई सेवा तथा प्रियता में रत रहो। सहजोबाई ने कितनी सुन्दर बात कही है:-

मत मन हरि सों प्रीत कर, हरि-जन सों कर हेत।
माल मुल्क हरि देत हैं, हरि-जन हरि ही देत॥

हरि की प्रीति के लिये गुरु-भक्ति के सिवाय और कोई अचूक उपाय नहीं है। तत्त्व दृष्टि से तो सर्वत्र सर्वदा श्रीहरि ही हैं। उनसे दूरी, भेद, भिन्नता की गंध भी नहीं है। परन्तु गुरु-वाक्य को अपनाकर ही साधक विद्यमान हरि की प्रीति होकर उन्हें रस प्रदान करता है, जो मानव-जीवन का परम लक्ष्य है। अन्तर्यामी-रूप से तुम्हारी गुरु-प्रेरणा ही इस पत्र में लिखाई गई है। जहाँ रहो प्रसन्न रहो, जो करो ठीक करो।

तुम्हारा अभेदस्वरूप
शरणानंद

(II)

2-11-1947

मेरे निजस्वरूप,

उन्नतशील मन की तीन प्रकार की अवस्थाएं होती हैं – जिनमें से प्रथम व द्वितीय से गुणों का विकास और तीसरी से आध्यात्मिक उन्नति होती है। प्रथम अशुद्ध संकल्पों को त्याग, शुद्ध संकल्पों का स्वाभाविक उत्पन्न होना, अर्थात सहज भाव से उत्पन्न हुई सद्भावनाओं का स्थायी हो, निवास करना। द्वितीय, सहज भाव से उत्पन्न हुई सद्भावनाओं का स्थायी हो जाना अर्थात् विकल्प-रहित होकर शुद्ध संकल्पों का दृढ़ हो जाना। तीसरा, शुद्ध संकल्पों का अभिमान गल जाने पर निःसंकल्पता को प्राप्त करने के लिए

अपने में से सभी संबन्धों को, सब प्रकार के चिन्तन का विचारपूर्वक त्याग करना परम अनिवार्य है। यह भली प्रकार समझ लीजिये कि प्राणी भलाई करने से भला नहीं होता, प्रत्युत भला होने पर भलाई स्वतः होने लगती है — जिस प्रकार सूर्य के उदय होने से प्रकाश अपने-आप फैलता है। अतः भक्त होने पर भक्ति, पवित्र होने पर पवित्रता, अभिमान-शून्य होने पर निःसंकल्पता, स्वार्थ-भाव के अन्त होने पर उदारता, राग-द्वेष रहित होने पर त्याग-प्रेम आदि आवश्यक शक्तियाँ, अपने आप आ जाती हैं। निर्वासना आध्यात्मिक उन्नति का प्राण है, शुद्ध संकल्प गुणों के विकास का साधन है। दृढ़ संकल्प निर्बलता हटाने का महामंत्र है। अतः उपरोक्त तीन प्रकार की अवस्थाओं में ही मन को विचरना चाहिए। यदि आपका मन आपकी बात न माने तो उसे अपना मत समझो। यह भली प्रकार समझलो कि आपके सहयोग के बिना आप का मन कुछ नहीं कर सकता। मन प्रेमपात्र के रहने का मन्दिर है, तन विश्व की सेवा का साधन है।

□□

आपका अभेदस्वरूप

शरणानंद

यदि दुःख का प्रादुर्भाव न होता, तो
सुख की दासता-जनित पराधीनता,
जड़ता एवं अभाव का अभाव न होता।
इस दृष्टि से दुःख के प्रादुर्भाव में
मानव-मात्र के प्रति किसी की कितनी
करुणा निहित है!

-संतवाणी

(5)

अमन

अ-मन[1] से अमन[2] मिलता है।
अहं का अणु पिघलता है॥
साधना-शरण मधुवन में, अपनपन चमन खिलता है।
राध्यरस[3] सरस सुमनों में, मधुर मकरंद मिलता है॥१॥
भाव भागीरथी का सलिल सींचो, मूल पलता है।
हटालो मुहर अपनी तो, अमर फल-फूल फलता है॥२॥
सहज सत्कर्म लगता है, असत् पर चित्त न चलता है।
असल जो चाहिये साँचा, वो अपने आप ढ़लता है॥३॥
नहीं अघझाड़[4] पलता है, नहीं रहती विफलता है।
स्व अन्तःकरण उपवन में कन्हैया राम मिलता है॥४॥

-स्वामी श्री रामशरणजी महाराज
(पूर्व नाम कन्हैयालाल दूगड़)

बे-मन[1]	चैन[2]	प्रीति या भक्ति[3]	दुःख-विपत्ति[4]

टिप्पणी :स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज फरमाते थे कि अ-मन (बेमन) होने पर ही अमन (चैन) मिलता है। अ-मन होने से मानव का अहंरूपी अणु पिघलता है और उसे होती है अपने इष्ट-स्वरूप की प्राप्ति। स्वामीजी महाराज के शब्दों में—राधाजी बेमन के हो गई थीं तभी उन्हें कृष्ण की स्वरूपभूता शक्ति के रूप में माना व जाना गया।

कवि ने इस कविता में दर्शाया है कि बे-मन होने पर अपने ही अंतःकरण रूपी उपवन में राम का साक्षात्कार हो जाता है, सारे दुःखों व विषमताओं की निवृत्ति हो जाती है और मानव को होती है—कृतकृत्य जीवन की प्राप्ति, अमर जीवन की प्राप्ति।

□□

(6)

गौ सेवा का अनंत महत्व

—स्वामी श्री शरणानंदजी महाराज

1. हम गाय की सेवा करेंगे तो गाय से हमारी सेवा होगी।
2. शुद्ध संकल्प में ही सिद्धि रहती है। शुद्ध संकल्प का अर्थ क्या है? जिसकी पूर्ति में लोगों का हित हो और प्रभु की प्रसन्नता हो, उसको शुद्ध संकल्प कहते हैं। **जब संकल्प शुद्ध होता है, तो सिद्ध होता ही है, ऐसा प्रभु का मंगलमय विधान है।**
3. सेवक कैसा होना चाहिये, इस पर विचार करने से लगता है कि सेवक के हृदय में एक मधुर-मधुर पीड़ा रहनी चाहिये। उत्साह रहना चाहिए तथा निर्भयता रहनी चाहिए एवं असफलता देखकर कभी भी निराश नहीं होना चाहिए। **सेवक से सेवा होती है, सेवा से कोई सेवक नहीं बना करता।**
4. इस देश में ही नहीं समस्त विश्व में मानव और गाय का इतना सम्बन्ध है कि जैसे मानव शरीर में प्राण का। अन्य देशों में गाय का सम्बन्ध आत्मीय नहीं रहा—कहीं आर्थिक बना दिया, कहीं कुछ बना दिया। **मेरे ख्याल में गाय का सम्बन्ध आत्मीय सम्बन्ध है। गाय मनुष्य-मात्र की माता है।**
5. लोग गाय की आर्थिक बात सामने रखकर सोचते हैं। गाय की सेवा तन से और मन से होनी चाहिए। आज हम लोगों की ऐसी स्थूल दृष्टि हो गई है कि धन की सेवा को बहुत बड़ी सेवा समझते हैं। **बहुत बड़ी सेवा है, मन की सेवा, जिसे हर भाई-बहन कर सकता है।**

6. **हमारा मन और गाय, एक होना चाहिए।** हमारे मन में गाय बस जाय, किसलिए? इसलिए नहीं कि हमको कोई लाभ होगा, पर इसलिए कि **अगर विश्व में गाय है, तो सात्विक प्राण, सात्विक बुद्धि और दीर्घ आयु वाली बात पूरी हो सक्ती है।**

7. केवल इसी बात को लेकर कि हमारी संस्कृति में गाय है, हमारे मज़हब में गाय है, यह सब तो है ही। लेकिन मेरा विश्वास है कि गाय का और मनुष्य के प्राणों का बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। **गाय मानवीय प्रकृति से जितनी मिलजुल जाती है, उतना और कोई पशु नहीं मिल पायेगा।**

8. बच्चे के मरने का जितना शोक होता है और उसके पैदा होने पर जितना हर्ष और उत्सव होता है, वैसे ही गाय के मरने और पैदा होने पर शोक और हर्ष होता था, **यह हमने बचपन में देखा था।**

9. जिस गाय का बच्चा मर जाय, उसका दूध नहीं पीते थे। **आज तो बच्चा मार कर ही दूध निकालते हैं।**

10. **गाय जितनी प्रसन्न होती है, उतने ही उसके दूध में विटामिन्स उत्पन्न होते हैं और जितनी ही गाय दुःखी होती है उतना ही दूध कमजोर होता है।**

11. मेरे दिल में दर्द है कि कोई घर ऐसा न हो जिसमें गाय न हो, गाय का दूध न हो। हर घर में गाय और गाय का दूध पीने को मिलना चाहिए। **गाय ने मानव-बुद्धि की रक्षा की है।**

12. बेईमानी का समर्थन करना और एक-दूसरे पर अधिकार जमाना यह बढ़ता जा रहा है। **इसका कारण है कि बुद्धि सात्विक नहीं है, बुद्धि सात्विक क्यों नहीं?** कारण, मन सात्विक नहीं है। मन सात्विक क्यों नहीं? कारण, शरीर सात्विक नहीं है। शरीर सात्विक नहीं है तो इसका कारण? आहार सात्विक नहीं है।

13. मैं आपसे निवेदन करना चाहता था कि सचमुच जितना आप लोग गाय के सम्बन्ध में जानते हैं, उसका हजारवाँ हिस्सा भी मैं नहीं जानता हूँ। लेकिन क्या सचमुच आप लोग गाय के साथ मातृ सम्बन्ध जोड़ने के लिए राजी हैं? **अगर हैं तो हमारा बेड़ा पार हो जायेगा।**

14. जो लोग सेवा करना चाहते हैं, वे कैसे हैं, इस बात पर जोर डालिए। समाज क्या करता है, राज्य क्या करता है, लोग कुछ देते हैं कि नहीं, यह गौण है। **मुख्य बात यह है कि अपने दिल में गाय के प्रति पीड़ा होती है कि नहीं?**

15. गाय हमारी ही नहीं मानव समाज की मां है, सारे राष्ट्र की और सारे विश्व की माँ है। **गाय की रक्षा होती है, तभी प्रकृति भी अनुकूल होती है भूमि भी अनुकूल होती है।** गाय की सेवा से भूमि की सेवा होती है और भूमि स्वयं रत्न देने लगती है।

16. **जैसे-जैसे गो सेवा करते जायेंगे वैसे-वैसे आपको यह मालूम होता जाएगा कि गाय आपकी सेवा कर रही है।** स्वास्थ्य की दृष्टि से, बौद्धिक दृष्टि से आपको यह लगेगा कि आप गाय सेवा कर रहे हैं, तो गाय आपकी हर तरह से सेवा कर रही है।

17. हम सच्चे सेवक होंगे तो हमारी सेवा होगी, हमारी सेवा का मतलब मानव-जाति की सेवा होगी। **मानव जब सुधरता है, तो सब कुछ सुधरता है और मानव जब बिगड़ता है तो सब कुछ बिगड़ जाता है।**

(दिनांक 23-11-1967 को प्रेम निकेतन आश्रम, दुर्गापुरा जयपुर में दिए गए प्रवचन से)

□□

प्राप्त सुख दुखियों की धरोहर है

प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर
सोसायटी फॉर साइन्टिफिक एण्ड एथिकल लिविंग
13ए, गुरुनानक पथ, मेन मालवीय नगर, जयपुर

ISBN No. 978-81-89698-40-9